व्रजभाषा सूर-कोश

(प्रथम खंड)

निर्देशक

डॉ० दीनदयालु गुप्त, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिंदी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

संपादक

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०
रिसर्च एवं मोदी स्कॉलर, लखनऊ विश्वविद्यालय



प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक—
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण
संवत् २००७

शब्द-संख्या—४२१६

मूल्य
एक प्रति ३)
डाकव्यय सहित ३॥)

मुद्रक
पृष्ठ १ से ८८ तक—नवज्योति प्रेस, लखनऊ
शेषांश—नवभारत प्रेस, नादानमहल रोड, लखनऊ

'ब्रजभाषा सूर-कोश' के दानदाता-



सेठ श्री गूजरमल मोदी, मोदीनगर

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ गूजरमल मोदी, मोदी-नगर, ने ६०००) नकद और ६०००) का वचन देकर इ हिंदी-विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिंदी-अनुराग का द्योतक इस धन का उपयोग 'ब्रजभाषा सूर-कोश' के निर्माण और प्रकाशन में किया जा रहा है। इसकी वृद्धि से प्रकार के और कोश भी प्रकाशित होंगे जिनसे हिंदी-साहित्य का यह अंग समृद्ध होगा। सेठ श्री मोदी जी की अनुकरणीय उदारता के लिए हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त
अध्यक्ष हिंदी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

निवेदन

सन् १९४६ के अंतिम चतुर्थांश में 'सूर-कोश' के निर्माण का कार्य आरंभ हुआ था। चार वर्ष के निरंतर परिश्रम के उपरांत इस कोश का इतना भाग तैयार हो गया है कि उसका प्रकाशन किया जा सके। खंड-रूप में अब यह कोश प्रकाशित हो रहा है और ऐसा प्रबंध किया गया है कि प्रति तीसरे मास एक खंड पाठकों की सेवा मे पहुँचता रहे। इस प्रकार लगभग दो वर्ष मे ही यह संपूर्ण कोश प्रकाश में आ जाने की संभावना है।

आरंभ में विचार था कि केवल महाकवि सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्दों का ही कोश प्रस्तुत किया जाय। लगभग दो वर्ष तक इसी के अनुसार कार्य भी किया गया, परंतु बाद में अन्य प्रतिष्ठित कवियो के विशिष्ट ब्रजभाषा-प्रयोग भी इस उद्देश्य से इसमें सम्मिलित कर लिये गये कि इस प्रकार उस बृहत् ब्रजभाषा-कोश की विस्तृत रूप-रेखा तैयार हो जाय जिसका अभाव लगभग पिछली दो शताब्दियों से खटक रहा है और जिसके लिए अनेक प्रयत्न होने पर भी सफलता अभी तक किसी को नहीं मिली है। सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों के प्रयोग अपना लेने से एक लाभ यह भी सोचा गया कि कोश का व्यावहारिक मूल्य बहुत बढ़ जायगा और हिंदी-साहित्य के सभी प्रेमियो के लिए यह उपयोगी संदर्भ-ग्रंथ का काम देगा। महँगी के इस युग में ४०) या ५०) के मूल्य का एकांगी उपयोगी ग्रंथ खरीदने में सबको असुविधा ही होगी, यह बात भी सामने थी। जायसी और तुलसी के आवश्यक अवधी-प्रयोग भी इसी उद्देश्य से इस कोश में दिये गये हैं। अंतर केवल इतना है कि सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्द के साथ, अर्थ की पुष्टि और स्पष्टता के लिए, अपेक्षित उद्धरण भी दिये गये हैं, पर अन्य कवियों के नहीं। इस प्रकार कोश का नाम भी सार्थक हो जाता है।

प्रस्तुत कोश में शब्दों के विभिन्न रूपों को प्रायः उसी रूप में दिया गया है जिसमें वे सूरदास तथा अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। ब्रजभाषा की प्रवृत्ति और उसके व्याकरण से जिनका परिचय नहीं है उन्हे एक शब्द के लिंग, वचन और काल के अनुसार परिवर्तित विभिन्न रूपों को पहचानने में कठिनाई होती है। दूसरी बात यह कि मूल शब्द, मुख्यतः क्रिया, के अनेक अर्थों में से किसमें उसके रूप-विशेष का प्रयोग किया गया है, यह जानना भी साधारण पाठक के लिए सरल नहीं होता। तीसरे, हिंदी के राष्ट्रभाषा-रूप में स्वीकृत हो जाने पर उसके साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की रुचि जिस द्रुत गति से बढ़ रही है उसको उत्साहित करने मे सहयोग देने के लिए भी एक शब्द के प्रायः सभी प्रचलित रूपों को कोश में सम्मिलित करना आवश्यक समझा गया है। इस प्रकार कई सौ शब्द इस कोश में ऐसे आये हैं जिनका समावेश हिंदी के अन्य प्रामाणिक कोशों मे भी नहीं है।

ब्रजभाषा में जो शब्द अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव रूप में प्रयुक्त हुए हैं उनके तत्सम रूप भी यथास्थान देने का प्रयत्न किया गया है। मूल तत्सम, अर्द्धतत्सम अथवा तद्भव शब्द के साथ उसके वे सभी अर्थ दिये गये

हैं जिनमे वह साहित्य मे प्रयुक्त हुआ है, परंतु लिंग, वचन और काल के अनुसार उसके परिवर्तित रूप के साथ केवल वही अर्थ दिया गया है जिसमें उद्धृत अवतरण मे वह आया है। इससे विशेष अध्ययन करनेवालों के साथ-साथ सामान्य जानकारी प्राप्त करनेवालों को भी सुविधा होगी।

भाषा के रूप अथवा कवि-विशेष-सम्बन्धी कोश के लिए शब्दार्थ के साथ आवश्यक अवतरण देना स्पष्टता और रोचकता, दोनों की वृद्धि के लिए वाछनीय होता है। प्रस्तुत कोश मे भी अपेक्षित उदाहरण यथावसर दिये गये हैं। इनकी संख्या जहाँ एक से अधिक है वहाँ प्रयत्न यह किया गया है कि सभी अवतरण न एक ही स्कंध के हों और न एक ही प्रसग के। विस्तार-भय से अधिक लबे अंश या पूरे पद उदाहरण-रूप में कहीं नहीं दिये गये हैं; हाँ, यह प्रयत्न अवश्य रहा है कि संदर्भ की दृष्टि से ये पूर्ण हों। यत्र-तत्र आयी हुई अन्तर्कथाएँ भी प्रायः पूर्ण ही दी गयी हैं। आशा है, इनसे पाठकों का पर्यात मनोरंजन भी होगा।

कोश का निर्माण-कार्य आरंभ करने के पूर्व से ही 'सूरसागर' के एक प्रामाणिक सस्करण का अभाव खटकता रहा है। सभा का जो संस्करण कई वर्ष पूर्व निकला था, वह तो अधूरा है ही, जो नया संस्करण इधर प्रकाशित हुआ है उसका पाठ भी बंबई, लखनऊ और कलकत्ते के संस्करणों से भिन्न है। इंडियन प्रेस तथा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के संक्षिप्त संस्करणों और विभिन्न स्थानों से प्रकाशित स्फुट सकलनों के पाठों मे भी बहुत अंतर है। इन सबका पाठ मिलाने का प्रयत्न यद्यपि कहीं कहीं किया है, तथापि न यही प्रधान लक्ष्य था और न पाठ-शुद्धि ही। सभा की प्रति में जो पुराने पाठ छूटे हैं, कोश मे कहीं कही वे भी कोष्ठक में दे दिये गये हैं और उनके अर्थ भी देने का प्रयत्न किया गया है, यद्यपि संख्या इनके साथ नये पदों की ही दी गयी है। इससे अनु-शीलन की दृष्टि से पाठ का मिलान करने में विशेष सुविधा होगी। लखनऊ, बंबई और कलकत्ते की पुरानी प्रतियों मे जो शब्द तत्सम रूप मे आये हैं, उनके सर्वमान्य व्रजभाषा-रूप ही, सभा-संस्करण के ढंग पर, इस कोश मे दिये गये हैं। सूर-साहित्य का संपूर्ण सस्करण सामने न आने तक यही ढंग उपयोगी जान पड़ा है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा के प्रथम संस्करण में १४३२ पद हैं। इनके उद्धरण देते समय इसी क्रम-संख्या से काम चलाया गया है और शेष के लिए वेंकटेश्वर प्रेस के प्रथम संस्करण की पद-संख्या से। पदों की संख्या इस संस्करण मे भी सर्वत्र ठीक नहीं है; अतएव निश्चित संकेत के लिए कोश में कहीं-कहीं पृष्ट-संख्या का भी उल्लेख करना पड़ा है। सभा-संस्करण के प्रथम स्कंध में ३४३ पद हैं। दो से नौ तथा ग्यारहवे स्कंधों की पद-सख्या इससे कम है; केवल दसवाँ स्कंध पहले से बहुत बड़ा है। इसलिए ३४३ पदो तक तो दसवें स्कंध की १०वीं संख्या उद्धरणों में दी गयी है, उसके बाद नहीं। उद्धृत अवतरणों के पद-संकेत देखते समय पाठक इसका ध्यान रखने की कृपा करें।

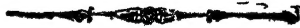
शब्दो की व्युत्पत्ति के लिए अन्य कोशों से अधिक सहायता 'हिंदी शब्द-सागर' से ली गयी है। इस वृहत् संदर्भ-ग्रंथ मे कुछ भूलें भले ही रह गयी हो, तथापि इसमें संदेह नहीं कि हिंदी-कोश-संबंधी कोई भी कार्य इसकी सहायता लिये बिना पूर्ण नहीं हो सकता। प्रस्तुत कोश में जो मूल शब्द हैं उनके साथ तो संस्कृत, पाली, प्राकृत,

अपभ्रंश और पुरानी हिंदी के प्राप्त प्राचीन रूप देने का प्रयत्न किया गया है जिससे उनके विकास का क्रम जानने मे सरलता हो, परंतु परिवर्तित रूपो के साथ व्युत्पत्ति बताने के लिए केवल मूल शब्द का उल्लेख है। इससे अनेक स्थलों पर अनावश्यक विस्तार से छुटकारा मिल गया है। शब्द-विशेष का अर्थ 'अन्यत्र' देखने का उल्लेख इस कोश मे कहीं नहीं है। इससे उस असुविधा-जन्य झुँझलाहट से मुक्ति मिल जायगी जो कोश के एक भाग मे प्रयुक्त शब्द का अर्थ दूसरे या तीसरे में देखने पर अथवा कभी-कभी वहाँ भी ऐसा ही उल्लेख पाकर होती है।

कोश के समाप्त हो जाने पर परिशिष्ट रूप में एक खंड और जोड़ा जायगा। इसमे सूर-साहित्य के समस्त छूटे हुए शब्द और अर्थ दिये जायँगे। यद्यपि इस कोश का निर्माण करते समय प्रयत्न सर्वत्र यह रहा है कि कम से कम सूर-साहित्य का कोई शब्द या शब्द-रूप छूटने न पाये, तथापि प्रामाणिक पाठ के अभाव में अथवा कहीं-कहीं संगत अर्थ न बैठने के कारण कुछ शब्द रोकने पड़े हैं। इतने बड़े कोश के शब्दों की कुछ स्लिपें भी, संभव है,इधर-उधर हो गयी हों, जिससे कुछ शब्द इसमें सम्मिलित होने से कदाचित् छूट गये हो। इसके लिए अपने साहित्य-प्रेमी विद्वानों और पाठको से हमारा नम्र निवेदन है कि ऐसे जिन शब्दों का उन्हे पता लगे, अथवा जिन शब्दो की उन्हें इस कोश में मिलने की आशा हो, पर मिले नहीं, उनकी सूचना समय-समय पर देते रहने की कृपा करें। उनके इस अमूल्य सहयोग से कोश का नया संस्करण पूर्ण करने में विशेष सहायता मिलेगी।

अंत मे हम विभिन्न कोशो और व्रजभाषा—विशेषतया सूर-साहित्य—के स्फुट संकलनों के उन संपादकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिनके ग्रंथों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग इस कोश के निर्माण में किया गया है।

दीनदयालु गुप्त
प्रेमनारायण टंडन



संकेत-सूची

अ. = अरबी भाषा
अनु. = अनुकरण शब्द
अप. = अपभ्रंश
अर्द्धमा. = अर्द्धमागधी
अल्पा. = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य. = अव्यय
उ. = उदाहरण
उप. = उपसर्ग
उभ. = उभयलिंग
क्रि. = क्रिया
क्रि. अ. = क्रिया, अकर्मक
क्रि. प्र. = क्रिया प्रयोग
क्रि. वि. = क्रिया विशेषण
क्रि. स. = क्रिया, सकर्मक
गुज. = गुजराती भाषा
तु. = तुरकी भाषा
देश. = देशज
पं. = पंजाबी भाषा
पर्या. = पर्याय
पा. = पाली भाषा
पु. = पुल्लिंग
पु. हि = पुरानी हिंदी
पू. हि = पूर्वी हिंदी
प्रत्य. = प्रत्यय
प्रा. = प्राकृत भाषा
प्रे. = प्रेरणार्थक क्रिया
फा. = फ़ारसी भाषा
बँग. = बँगला भाषा
बहु. = बहुवचन
बुं. खं. = बुंदेलखंडी बोली
भाव. = भाववाचक
मुहा. = मुहावरा
यू. = यूनानी भाषा
यौ. = यौगिक या एक से अधिक शब्दो के पद
वा. = वाक्य
वि. = विशेषण
सं. = संस्कृत
संयो. = संयोजक अव्यय
संयो. क्रि. = संयोजक क्रिया
स. = सकर्मक
सर्व. = सर्वनाम
सवि. = सविभक्ति
सा. = साहित्यलहरी
सारा. = सूरसारावली
सा.उ. = साहित्यलहरी उत्तरार्द्ध
स्त्रि. = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री. = स्त्रीलिंग
हि. = हिंदी भाषा

विशेष—(१) उद्धरणों के साथ जहाँ ३४३ से अधिक पद-संख्या है, वहाँ दसवाँ स्कंध समझिए।

(२) जिन उद्धरणों के साथ पद-संख्या नहीं है वे कवि के पदों के विभिन्न संकलनो से दिये गये हैं।



व्रजभाषा सूर-कोश

प्रथम खंड

अ

अ—देवनागरी वर्णमाला का प्रथम अक्षर। कंठ्य वर्ण। मूल व्यंजनों का स्वतंत्र उच्चारण इस अक्षर की सहायता से होता है।

निषेधात्मक उपसर्ग; जैसे—अरूप, असुदर।

अंक—संज्ञा पु [स०] (१) **चिह्न, छाप**। (२) **लेख, अक्षर, लिखावट**। उ०—प्रद्भुत राम-नाम के अंक—१-९० (३) **लेखा, लेखन**। उ०—जोग जुगुति, जप-, तप, तीरथ-ब्रत इनमे एकौ अक न भाल—१-१२७। (४) **गोद, अँकवार, क्रोड़**।

मुहा.—अक भरि लीन्हो, लीन्हो अंक भरी—**हृदय से लगा लिया, गोद में ले लिया**। उ०—(क) पुत्र-कबन्ध अंक भरि लीन्हो धरति न इक छिन धीर—१-२९। (ख) धन्य-धन्य बडभागिनि जसुमति निगमनि सही परी। ऐसे सूरदास के प्रभु कौ लीन्हो अंक भरी—१०-६९। अंक भरि लेत—**छाती से लगा लेते हैं, गोद में लेते हैं**। उ०—छिरकत हरद दही हिय हरषत, गिरत अंक भरि लेत उठाई—१०-१९। अंक भरै—**गोद में लेती है, दुलार करती है**। उ०—जैसे जननि जठर-अन्तरगत सुत अपराध करै। तौऊ जतन करै अरु पोषै निकसै अंक भरै—१-११७।

(५) **बार, मर्तबा**। (६) **संख्या का चिह्न**।

अंकम—संज्ञा पु० [स० अंक] **गोद, अँकवार, क्रोड़**। उ०—आनंदित ग्वाल-बाल, करत बिनोद ख्याल, भरि-भरि धरि अंकम महर के—१०-३०।

मुहा.—अकम भरि—**छाती से लगाकर**। उ०—हँसि हँसि दौरे मिले अकम भरि हम-तुम एकै ज्ञाति—१०-३६। अकम भर्यौ—[भूत.] **(स्नेहवश) छाती से लगाया, गले लगाया**। उ०—(क) माता ध्रुव कौं अंकम भर्यौ—४-९। (ख) कबहुँक मुरछित ह्वै नृप पर्यौ। कबहुँक सुत कौ अंकम भर्यौ—९-५। अंकम भरि लेइ—**अपने में लीन करती है**। उ०—पत दरस कबहूँ जौ होइ। जग सुख मिथ्या जानै सोइ। पै कुबुद्धि ठहरान न देइ। राजा को अंकम भरि लेइ—४-१२। अंकम लैहै—[भवि०] **गोद में लेगा**। उ०—अब उहि मेरे कुँअर कान्ह को छिन-छिन अंकम लैहै-२७०५।

अंकमाल, अंकमाल—सज्ञा पु. [स. अंक] **आलिंगन, परिरंभण, गोद, गले लगाना**। उ०—सूर स्याम बन ते ब्रज आए जननि लिए अँकमाल—२३७१।

मुहा.—दै अंकमाल—**आलिंगन करके, गले लगाकर, गोद लेकर**। उ०—जुवति अति भई बिहाल, भुज भरि दै अकमाल, सूरदास प्रभु कृपाल, डार्यो तन फेरी—१०-२७५।

अँकवार—संज्ञा पु० [सं० अंकपालि, अंकमाल] **गोद, छाती**।

मुहा.—अंकवार भरत—**आलिंगन करते हैं, गले या छाती से लगाते हैं**। उ०—(सखा) बनमाला पहिरावत स्यामहिं, बार-बार अँकवार भरत धरि—४२९।

अंकवारि—संज्ञा स्त्री० [हि० अँकवार] **गोद, छाती**।

मुहा.—भरि धरौं अँकवारि—**छाती से लगा लूँ, आलिंगन कर लूँ**। उ०—कोउ कहति, मै देखि

पाऊँ, भरि धरौं अँकवारि—१०-२७३। भरि दीन्ही (लीन्ही) अँकवारि—**छाती से लगा लिया।** उ०—(क) झूठेहि मोहिं लगावति ग्वारि। खेलत ते मोहिं बोलि लियौ इहि, दोउ भुज भरि दीन्ही अँकवारि—१०-३०४। (ख) बाहँ पकरि चोली गहि फारी भरि लीन्ही अँकवारि—१०-३०६। (ग) सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हो तब जननीं भरि लए अँकवारि—४३०।

(२) **आलिंगन**। उ०—नैन मूँदति दरस कारन स्रवन सब्द बिचारि। भुजा जोरति अक भरि हरि ध्यान उर अँकवारि—७८१।

अंकित—वि [स अक] (१) **चिह्नित**। उ०—कनक कलस मधुपान मनौ कर भुज निज उलटि धसी। ता पर सु दरि अचर झाँप्यो अकित दस तसी—सा. उ. २५। (२) **लिखित, खिचित**। (३) **वर्णित**।

अंकुर, अँकुर—सज्ञा पु [स.] **अँखुआ, गाभ**। उ—(क) ग्वालनि देखि मनहिं रिस काँपै। पुनि मन मै भय अकुर थापै—५८५। (ख) अदभुत रामनाम के अक। धर्म अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-बधू ताटक—१-९०

अँकुरनो, अँकुरानो—क्रि अ [स अकुर] **अंकुर फोड़ना, उगना, उत्पन्न होना**।

अंकुरित—वि [स० अकुर] (१) **अँखुवाया हुआ, जिसमें अंकुर हो गया हो**। (२) **उत्पन्न हुए, उगे, प्रकटे**। उ—(क) अकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन-बेली प्रफुलित कलिनि कहर के—१०-३०। (ख) फूले फिरै जादौकुल आनँद समूल मूल, अकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के—१०-३४।

अंकुस—सज्ञा पु [सं अकुश] (१) **हाथी को हाँकने का टेढ़ा काँटा, अंकुश**। उ०—न्यारो करि गयंद तू अजहूँ, जान देहि का अकुस मारी—२५८६। (२) **प्रतिबन्ध, दबाव, रोक**। उ—मन बस होत नाहिनै मेरैं। ··· ·· । कहा कहौ, यह चरचौ बहुत दिन, अकुस बिना मुकेरैं—१-२०६। (३) **ईश्वर के अवतार राम, कृष्ण, आदि के चरणों का एक चिह्न जो अंकुश के आकार का माना जाता है**। उ—व्रज जुवती हरि चरन मनावै। ... । अकुस-कुलिस-बज्र-ध्वज परगट तरुनी-मन भरमाए—६३१।

अंकूर—सज्ञा पु [स अकुर] **अँखुआ, अंकुर**।

अँकोर—सज्ञा पु [हि. अँकवार] **अंक, गोद, छाती**। उ (क) खेलत कहूँ रहौ मै बाहिर, चितै रहहि सब मेरी ओर। बोलि लेहिं भीतर घर अपने, मुख चूमति, भरि लेति अँकोर—३९८। (ख) झूठे नर कौं लेहि अँकोर। लावहिं साँचे नर को खोर-१२-३। (२) **भेंट, घूस, रिश्वत, उत्कोच**। उ—(क) सूरदास प्रभु के जो मिलन को कुच श्री फल सो करति अँकोर। (ख) गए छँडाय तोरि सब बन्धन दै गए हँसनि अँकोर— ३१५३।

अँकोरी—सज्ञा स्त्री. [हि अकोर (अल्प प्र.) + ई] (१) **गोद**। (२) **आलिंगन**।

अँकोरे—सज्ञा पु. सवि [हि. अँकवार, अँकोर] **अंक, गोद, छाती**। उ.—तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे। फूँकति बदन रोहिनी ठाढी, लिए लगाए अँकोरे—१०-२२४।

अंक्रित—वि० [स० अकित] **चिह्नित, अंकित**। उ०—तापर सुन्दर अचर झाँप्यौ अकित दस तसी—२३०३।

अँखड़ी—सज्ञा स्त्री० [प० अँक्ख + हि० डी] (१) **आँख**। (२) **चितवन**।

अँखियन—सज्ञा पु० बहु० [हिं० आँख] **आँखों (में)** उ०—कीनी प्रीति प्रगट मिलिबे की अँखियन सर्म गनाए—८३२।

अँखियाँ—सज्ञा स्त्री० बहु० [हिं० आँख] **आँखें, नेत्र**। उ०—अँखियाँ हरि दरसन की भूखी—३०२९।

अँखियानि—सज्ञा स्त्री० [हिं० आँख] **नयनों के (को)** उ०—अपने ही अँखियानि दोष तै रबिहिं उलूक न मानत—१-२०१।

अंग, अँग—सज्ञा पु० [सं०] (१) **शरीर, तन, गात्र**। उ० (क) आमिष, रुधिर, अस्थि अँग जौलो तौलों कोमल चाम—१-७६। (ख) प्रकृति जो जाके अग परी। स्वान पूछ को कौटिक लागे सूधी कहूँ न करी—३०१०। (२) **अवयव, शरीर के भाग**। उ०—(क) गर्भबास अति त्रास मैं (रे) जहाँ न एकौ अग—१-३२५। (ख) अग-अग-प्रति-छबि-तरग-गति 'सूरदास क्यौ कहि आवै—१-६९। (ग) सकल भूषन मनिनि के बने

सकल अँग, बसन बर अरुन सुन्दर सुहायौ—८-८। (३) **भेद, प्रकार, भाँति** उ०—दधिसुत-धर-रिपु सहे सिलीमुख सुष सब अंग नसाये—सा० ४६। (४) **सहायक, स्वपक्ष का**। (५) **गोद**।

मुहा०—अंग छुअत हौं—**शपथ खाता हूँ**। उ०—सूर हृदय ते टरत न गोकुल अग छ्वत हौ तेरौ—१०-उ०-१२४। अंग करै—**अपना ले, अंगीकार कर ले**। उ०—जाको मनमोहन अग करै। ताको केस खसै नहिं सिरतै जौ जग बैर परै—१-३७। अंग भरै—**गोद में लेती है**। उ०—मुख के रेनु भारि अचल सौ जसुमति अग भरै—२८०३।

अंगज—वि० [स० अग+ज=उत्पन्न] **शरीर से उत्पन्न**।

सज्ञा पु०—(१) **पुत्र।**(२)**बाल,रोम**। (३) **कामदेव**।

अंगजा,अंगजाई—सज्ञा स्त्री० [स०] **कन्या, पुत्री**।

अंगद—सज्ञा पु० [स०] (१) **किष्किंधा के राजा बालि का पुत्र जो श्रीराम की सेना में था**। (२) **बाहु में पहनने का एक गहना, बाजूबंद**। उ०—उर पर पदिक कुसुम बनमाला, अंगद खरे बिराजै। चित्रित बाँह पहुँचिया पहुँचै, हाथ मुरलिया छाजै—४५१।

अंगदान—संज्ञा पु० [सं०] (१) **युद्ध से भागना, पीठ दिखाना**। (२) **तन-समर्पण, सुरति**। (३) **पीठ, पीढ़ा, आसन**। उ०—अगदान बल को दै बैठी। मदिर आजु आपने राधा अतर प्रेम उमेठी—सा० १००।

अंगन—सज्ञा पुं [स० अंगण, हिं० आँगन] **आँगन, सहन, चौक**। उ०—(क) बिरह भयौ घर अगन कोने। दिन दिन बाढत जात सखी री ज्यौ कुरखेत के डारे सोने—२८६६। (ख) एक कहत अगन दधि माड्यौ—१०५१।

सज्ञा पु० बहु० [स० अग] **शरीर के अंग, इंद्रियाँ**। उ०—जब ब्रजचद चद-मुख लषिहै। तब यह बान मान की तेरी अगन आपु न रषिहै—सा०६७।

अँगना—सज्ञा पुं [हिं० आँगन] **आँगन, सहन, चौक**। उ०—ललिता बिसाषा अँगना लिपावो चौक पुरावो तुम रोरी—२३६५।

अंगना—सज्ञा स्त्री० [स०] **अच्छे अंगवाली स्त्री, कामिनी**।

अंगनाइ,अँगनाई—सज्ञा स्त्री० [हिं पुं० आँगन] **आँगन,चौक, अजिर**। उ०—(माई) बिहरत गोपाल राइ मनिमन रचे अँगनाइ लरकत पररिगनाइ, घुटरूनि डोलै—१०-१०१।

अंगभंग—सज्ञा पु० [स०] **अंग का भंग या खंडित होना**।

वि०—**अपाहिज, लूला, लुंज**।

अंगभंगी—सज्ञा स्त्री० [स] (१) **मोहित करने की स्त्रियों की क्रिया। अंगों को मोड़ना, मरोड़ना**। (२) **आकृति**

अंगराग—संज्ञा पु. [सं.] (१) **शरीर में लगाने का सुगंधित लेप**। (२) **वस्त्राभूषण**। (३) **महावर आदि स्त्रियों के लेप**।

अँगवना—क्रि स [स अग] (१) **अंगीकार करना**। (२) **सहना**।

अँगवान्यो—क्रि. स. [सं. अंग] **अंग में लगाया, शरीर में मला**। उ.—चदन और अरगजा आन्यो। अपने कर बल के अँगवान्यो—२३२१।

अंगहीन—वि [सं अग+हीन=रहित] **खंडित अंग का, लँगड़ा-लूला**।

सज्ञा पु०—**कामदेव**

अंगा—वि० [स अग] **अंगोंवाली**। उ- मनौ गिरिवर तै आवति गगा। राजति अति रमनीक राधिका यहि बिधि अधिक अनूपम अगा - १०-१६०५।

सज्ञा पु –(१) **अँगरखा, चपकन**। (२) **अंग**। **उ०** नखसिख लौं मीन जाल जड्यो अंग-अगा-६-६७। (३) **मोटी रोटी या रोट (अंगाकरी) बड़ी लीटी**।

अँगार, अंगार—सज्ञा पु [स] (१) **दहकता हुआ कोयला**। उ - पद-नख-चन्द-चकोर बिमुख मन, खात अँगार मई-१-२६६। (२) **चिनगारी**। उ.-(क) उचटत भरि अगार गगन लौ, सूर निरखि ब्रज-जन बेहाल—५६४। (ख) अति अगिनि-भार, भंभार धुधार करि, उचटि अगार भंभार छायौ—५६६।

अँगिया—सज्ञा स्त्री. [स. अगिका, प्रा. अँगिआ] **चोली, अधपेटी**।

अँगिरा, अंगिरा—सज्ञा पु [सं अंगिरस] **एक प्राचीन**

ऋषि जिनकी गणना दस प्रजापतियों में है और जो अथर्ववेद के कर्त्ता माने जाते हैं। इनके पिता का नाम उरु और माता का आग्नेयी था। इनकी चार स्त्रियाँ थीं—स्मृति, स्वधा, सती और श्रद्धा। इनकी कन्या का नाम अर्चस् और पुत्र का मनस् था।

अंगीकार—सज्ञा पु [स] स्वीकार, ग्रहण।

अँगुठा—सज्ञा पु [स अगुष्ठ, प्रा अगुट्ठ, हिं अँगूठा] अँगूठा। उ -कर गहे चरन अँगुठा चचोरे-१०-६२।

अंगुर—सज्ञा पु [स. अगुल] (१) एक नाप जो आठ जौ के पेट की लंबाई के बराबर होती है। उ०—अगुरि द्वै घटि होति सबनि सौ पुनि पुनि और मँगायौ—१०-३४२। (२) एक अँगुली की मोटाई भर की नाप।

अंगुरिनि—सज्ञा स्त्री० बहु० [स० अँगुरी, हिं० उँगली] उँगलियों में। उ—प्रग अभुषन अँगुरिनि गोल—१०-६४।

अँगुरियनि—सज्ञा स्त्री, बहु. सवि. [हि, उँगली] उँगलियों से। उ.—दुहत अँगुरियनि भाव बतायौ—६६७।

अँगुरिया—सज्ञा स्त्री [स अँगुरी-अल्प.] छोटी उँगली उ०—गहे अँगुरिया ललन की, नँद चलन सिखावत—१०-१२२।

अँगुरी—सज्ञा स्त्री. [स अँगुरी] उँगली। उ.—चौथ मास कर-अँगुरी सोइ—३-१३।

अँगुरीनि—सज्ञा स्त्री० बहु० [स० अँगुली] उँगली, उँगलियों (को) (से)।

मुहा०—अँगुरीनि दत दै रह्यौ- चकित हुआ, अचंभे में आ गया। उ०—ये तो जे हरे है, ते तौ सोवत परे है, ये करे है कौनै आन, अँगुरीनि दत दै रह्यौ-—१०-४८४।

अँगुसा- सज्ञा पु० [स० अकुश=टेढी नोक] अंकुर, अँखुआ, गाभ। (२) अँगुसी।

अँगूठी—सज्ञा स्त्री० [हि० अँगूठा+ई] उँगली में पहनने का छल्ला, मुँदरी, मुद्रिका।

अंगूर—सज्ञा पु० [स० अकुर] अंकुर, (१) अँखुवा। (२) एक फल जिसको सुखा कर किशमिश या दाख बनती है।

अँगेजना—क्रि० स० [स० अग=शरीर+एज=हिलना, काँपना] (१) सहन करना। (२) स्वीकार करना, अपनाना।

अँगेरना—क्रि० सं० [स० अग+ईर=जाना] (१) अंगीकार करना। (२) सहना।

अँगोछि—क्रि० अ० [हिं० अँगोछना] अँगोछे या कपड़े से पोंछ कर। उ०—उत्तम बिधि सौ मुख पखरायौ ओदे बसन अँगोछि—१०-६०९।

अँगोछे—क्रि० अ० [हि० अँगोछना] गीले कपड़े से पोछ दिये। उ०—अति सरस बसन तन पोछ। लै कर-मुख-कमल अँगोछे—१०-१८३।

सज्ञा पु बहु०—अनेक अँगोछे या देह पोछने के कपड़े।

अँचयो, अँचयौ—क्रि० स० भूत० [स० आचमन, हि० अचवना] पिया, पान किया। उ०—(क) कछु कछु खाइ दूध अँचयौ तब जम्हात जननी जाने—१०-२३०। (ख) ग्वाल सखा सबही पय अँचयौ—३९६। (२) भोजन के पश्चात हाथ-मुँह धोकर कुल्ली की।

अंचर—सज्ञा पु० [स० अचल] अचल, आँचल, साड़ी का छोर, पल्ला। उ०— निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अचर लेत बलाइ—९-८३।

अँचरा—सज्ञा पु० [स० अचल] आँचल, पल्ला। उ०—(क) जसुमति मन अभिलाष करै। कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौ झगरै—१० ७६। (ख) अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पिलावति—१०-११०।

अंचल, अँचल—सज्ञा पु० [स०] (१) साड़ी का छोर, आँचल, पल्ला। उ०—(क) इतनी कहत, सुकाग उहाँ ते हरी डार उड़ि बैठयौ। अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठयौ—९-१६४। (ख) तेजु बदन झाँप्यौ झुकि अंचल इहै न दुष मेरे मन मान—सा० उ० १५। (२) दुपट्टा, दुशाला। उ०—लोचन सजल, प्रेम पुलकित तन, गर अंचल, कर-माल—१-१८९।

मुहा०—(लियौ) अचल—अंचल डाल कर थोड़ा मुँह ढक लिया। उ०—रुद्र कौ देखि के मोहिनी लाज करि, लियो अचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ—८-१०। अचल जोरे—दीनता दिखाकर। उ०—

अचल जोरे करत बीनती, मिलिबे को सब दासी—३४२२'। अचल दै—**आँचल की ओट करके, घूँघट काढ़ कर**। उ०—पीताम्बर वह सिर तें ओढ़त अचल दै मुसुकात—१०-३३८।

अँचवत—क्रि० स० [हि० अचवना] **पीते (हुए) पान करते (ही)**। उ०—अँचवत पय तातौ जब लाग्यौ, रोवत जीभ डढै—१०-१७४।

अँचवति—क्रि० स० स्त्री. [हि० अचवना] **आचमन करती है, पीती है**। उ०—माधौ, नैकु हटकौ गाइ। ......अष्टदस घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाति—१-५६।

अँचवन—सज्ञा पु [हि० अचवना] **भोजन के पीछे हाथ-मुँह धोना, कुल्ली करना, और आचमन का जल या आचमन किया हुआ जल**। उ०—अँचवन ले तब धोए कर-मुख—३९६। (ख) सूरस्याम अब कहत अघाने, अँचवन माँगत पानी—४४२।

अँचवौ—क्रि० स० [हि० अँचवना, अचवना] **आचमन करूँगा, पान करूँगा, पिऊँगा**। उ०—आजु अजोध्या जल नहिं अँचवौ, मुख नहिं देखौ माई—९-४७।

अँचै—क्रि० स० [हि० अचवना] **आचमन करके, पीकर**। उ०—(क) सुत-दारा कौ मोह अँचै बिष, हरि-अमृत-फल डारचौ—३९६। (ख) दवानल अँचै व्रजजन बचायौ—५९७।

अंजत—क्रि० स० [हि० अँजना, आँजना] **अंजन या सुरमा लगाता है**। उ०— प्यारी नैननि को अजन लै अपने लोचन अजत है—पृ० ३११।

अंजन—सज्ञा पु० [स०] (१) **सुरमा, काजल**। उ०—अजन आड तिलक आभूषन सचि आयुध बड छोट—सा० उ० १६। (२) **रात**। उ.—उदित अजन पै अनोषी देव अगिन जराय—सा. ३२। (३) **स्याही**।

वि०—**काला, सुरमई**। उ.—रवि-ससि-ज्योति जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी। उडत फूल उडगन नभ अतर, अजन घटा घनी—२-२८।

अजनि—सज्ञा स्त्री. [स. अजनी] **हनुमान की माता अंजना जो कुंजर नामक बानर की पुत्री और केशरी की स्त्री थी**।

अंजल—सज्ञा पु. [सं. अन्न+जल] **अन्नजल**।

अंजलि, अंजली—सज्ञा स्त्री. [स.] (१) **दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया गया संपुट, अंजुली**। (२) **अजुली में भरा हुआ जल आदि द्रव अथवा अन्य वस्तु**। उ.—प्यारी स्याम अजली डारै। वा छबि कौ चित लाइ निहारै। मनो जलद-जल डारत ढारै—१८४४।

अँजवाना—क्रि. स. [स. अंजन] **अँजन या सुरमा लगवाना**।

अँजाइ—क्रि. स. [हिं. अजन, अँजाना] **अंजन, सुरमा या काजल लगवाकर**। उ.—दोऊ अलबेले बनं जु आए आँखि अँजाइ—२४४२।

अँजाय—क्रि. स. [हिं. अजन,] **काजल या सुरमा लगवाकर**। उ.—आपुन हँसत पीत-पट मुख दै आए हो आँखि अँजाय—२४४६ (३)।

अंजुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. अँजली] **दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट**।

मुहा.—अँजुरी को पानी—**शीघ्र ही चू जाने या समाप्त होनेवाली वस्तु**। उ.—जोबन रूप दिवस दस ही को ज्यो अँजुरी को पानी—२०४४।

अंजुलि—संज्ञा स्त्री. [सं. अंजली] **हथेलियों को मिलाने से बना हुआ संपुट**। उ.—सिर पर मीच, नीच नहिं चितवत, आयु घटति ज्यौ अंजुलि पानी—१-१४९।

अँजोर—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल, हि. उजाला, उजेरा] **उजाला, प्रकाश, चाँदनी**।

अँजोरना—क्रि. स. [हिं. अँजुरी] **छीनना, हरना, लेना, मूसना**।

क्रि. स. [सं. उज्ज्वल] **जलाना, प्रकाशित करना**।

अँजोरा—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] **प्रकाश**।

अँजोरि—क्रि. स. [हिं. अँजुरी, अँजोरना] **छीनकर, हरण करके, मूसकर**। उ.—(क) सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि—१०-२७०। (ख) मारग तौ कोउ चलन न पावत, धावत गोरस लेत अँजोरि—१०-३२७। (ग) सूर स्याम चितवत गए मो तन, तन मन लियौ अँजोरि—६७०।

अँजोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. अँजोर+ई] (१) **प्रकाश, चमक** । (२) **चाँदनी** ।

वि. स्त्री.—**उजेली, प्रकाशमयी, उज्ज्वल** ।

अँटकाए—क्रि. स. [हिं. अटकाना] **फँसाए या उलझाए (हुए)** । उ.—मनि आभरन डार डारनि प्रति, देखत छबि मनही अँटकाए—७८४ ।

अँटकावत—क्रि. स. [हिं. अटकाना] **रुकता है, बाधक होता है** । उ.—भीतर तै बाहर लो आवत। घर-आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत—१०-१२५ ।

अँटक्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. अटकना] **फँस गया, उलझा, लगा रहा** । उ.—सूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यौ अतर प्रीति जाति नहि तोरी—१०-३०५ । (ख) पद-रिपु पट अँटक्यौ न सम्हारति, उलट-पलट उबरी—६५६ ।

अँटना—क्रि. अ. [सं. अट्=चलना] (१) **समा जाना** । (२) **पूरा होना, खप जाना** ।

अंड—संज्ञा पु० [सं०] (१) **ब्रह्मांड, लोकपिंड, विश्व** । उ०—(क) सब्दादिक तै पंचभूत सुदर प्रगटाए । पुनि सबकौ रुचि अड, आपु मै आपु समाए—२-३६ । (ख) तिनतै पंचतत्व उपजायौ। इन सबकौ इक अंड बनायो—३-१३ । (ग) एक अंड कौ भार बहत है, गरब धरयौ जिय सेष—५७० । (२) **कामदेव** । उ०—अति प्रचड यह अड महा भट जाहि सबै जग जानत। सो मदहीन दीन ह्वै बपुरो कोपि धनुष सर तानत—३३९२ । (३) **अंडा** ।

अंडा—सज्ञा पु० [स० अड] (१) **मादा जीव जन्तुओं से उत्पन्न गोल पिंड जिसमें से बाद को बच्चा निकलता है** । उ०—यह अडा चेतन नहिं होइ। करहु कृपा सो चेतन होइ—३-१३ । (२) **शरीर** ।

अंत—सज्ञा पु० [स०] (१) **समाप्ति, इति, अवसान** । उ०—लाज के साज मै हुती ज्यों द्रोपदी, बढयौ तन-चीन नहिं अत पायौ—१-५ । (२) **शेष भाग, अंतिम अंश** । उ०—सूरदास भगवत भजन करि अंत बार कछु लहियै—१-६२ । (३) **सीमा, अवधि, पराकाष्ठा** । उ०—भुजा बाम पर कर छवि लागति उपमा अत न पार—६८७ । (ख) सोभा सिन्धु न अत रही री—१०-२६ । (४) **अंतकाल, मरण, मृत्यु** । उ०—(क) छनभगुर यह सबै स्याम बिनु अत नहिं सँग जाइ—१-३१७ । (ख) पर्यौ जु काज अत की बिरियाँ तिनहुँ न आनि छुडायौ—२-३० । (५) **फल, परिणाम** ।

संज्ञा पु० [स० अंतर] (१) **अंतःकरण, हृदय** (२) **भेद, रहस्य** । उ०—(क) पूरन ब्रह्म पुरान बखानै। चतुरानन सिव अत न जानै—१०-३ । (ख) जाको ब्रह्मा अंत न पावै—३९३ ।

सं० पु० [सं० अंत्र] **आँत, अँतडी** ।

क्रि० वि०—**अंत में, निदान** ।

क्रि० वि० [सं० अन्यत्र—अनत—अंत] **दूसरे स्थान पर, अलग, दूर,** । उ० कुज कुज मे क्रीडा करि करि गोपिन कौ सुख दैहौ। गोप सखन सँग खेलत डोलौं तिन तजि अंत न जैहौ ।

अंतक—सज्ञा पु० [सं०] (१) **अंत करनेवाला, यमराज, काल** । उ०—भव अगाध-जल-मग्न महा सठ, तजि पद-कूल रह्यो। गिरा रहित, वृक-ग्रसित अजा लौं, अन्तक आनि गह्यो—१-२०१ , (२) **सन्निपात ज्वर का एक भयंकर भेद जिसमें रोगी किसी को नहीं पहचानता** । उ.—ब्याकुल नद सुनत ए बानी। डसि मानौ नागिनी पुरानी। ब्याकुल सखा गोप भए ब्याकुल। अंतक दशा भयौ भय आकुल—२६४६

अंतकारी—संज्ञा पु० [सं०] **अंत या संहार करने वाला, विनाशक** । उ.—भक्त भय हरन असुर अंतकारी—१० उ.—३१ ।

अंतगति—संज्ञा स्त्री [सं.] **अंतिम दशा, मृत्यु** ।

अंतत—क्रि. वि० [हि अंत] **अंत में** । उ.—जाति स्वभाव मिटै नहि सजनी अंतत उबरी कुबरी-३१८८ ।

अंतर—संज्ञा पु. [सं.] (१) **भेद, भिन्नता, अलगाव** । उ. (क) जब जहाँ तन बेष धारौ तहाँ तुम हित जाइ। नैकु हूँ नहि करौ अंतर, निगम भेद न पाइ ६८३ । (ख) जो जासौ अंतर नहि राखै सो क्यो अंतर राखै—११९२ [२] **मध्यवर्ती काल, बीच का समय** । उ. (क) इहि अंतर नृपतनया आई ।

(ख) पिता देखि मिलिबे को धाई—९-३ । तेजु बदन झाँप्यो झुकि अंचल इहै न दुख मेरे मन मान। यह पै दुसह जु इतनेहि अतर उपजि परै कछु आन—सा० उ. १५ । (३) **ओट,** आड़ । उ. (क) जा दिन ते नैनन अतर भयो अनुदिन अति बाढति है बारि २७९५ । (ख) एक दिवस किन देखहू, अ तर रहौ छपाई । दस को है धौ बीस को नैननि देखौ जाइ—१०६८ । (ग) कठिन बचन सुनि स्रवन जानकी सकी न बचन सँभारि । तृन अतर दै दृष्टि तरौधी, दियो नयन जल ढारि—९-७९ । (घ) पट अतर दै भोग लगायो आरति करी बनाइ—२६१ ।

वि. **अंतर्द्धान, लुप्त** । उ.—गर्व जानि पिय अंतर ह्वै रहे सा मं बृथा बढायौ री—१८१६ ।

क्रि. वि.—**दूर, अलग, पृथक** । उ.—कहाँ गए गिरिधर तजि माकौ ह्याँ कैसे मे आई । सूर स्याम अंतर भए मोते अपनी चूक सुनाई—१८०३ ।

संज्ञा पुं. [सं. अंतर] **हृदय, अंतःकरण, मन** । उ.—(क) गोबिद प्रीति सबनि की मानत । जिहि जिहिं भाइ करत जन सेवा, अंतर की गति जानत—१-१३ । (ख) सूर सो सुहृद मानि, ईश्वर अंतर जानि, सुनि सठ झूठौ हठ-कपट न ठानि—१-७७। (ग) राजा पुनि तब क्रीड़ा करै। छिन भरहू अंतर नहि धरै—४-१२ । (घ) अंतर ते हरि प्रगट भए। रहत प्रेम के बस्य कन्हाई युवतिन को मिल हर्ष दए—१८३२ । (२) **हृदय या मन की बात** । उ.—तब मै कह्यौ, कौन है मोसी, अंतर जानि लई—१८०३ ।

क्रि. वि. (१) **भीतर, अंदर** । उ.—(क) ज्यौ जल मसक जीव-घट अंतर मम माया इमि जानि—२-३८ । (ख) हौ अलि केतने जतन बिचारौ। वह मूरति वाके उर अंतर बसी कौन बिधि टारौ—सा ७५ । (२) **ऊपर, पर** । उ.—निरखि सुन्दर हृदय पर भृगु-पाद परम सुलेख । मनहुँ सोभित प्रभु अन्तर सम्भु-भूषन बेष—६६५ ।

वि —**आंतरिक** । उ —(क) मलिन बसन हरि हेरि हित अंतर गति तन पीरो जनु पातै—सा. उ. ४६ । (ख) अंगदान बल को दै बैठी । मंदिर आजु आपने राधा अंतर प्रेम उमेठी—सा. १०० ।

अंतरगत—संज्ञा पु. [स. अतर्गत] **हृदय, अतःकरण, चित्त** । उ. – ज्यो गूंगे मीठ फल को रस अतरगत ही भावै— १-२ ।

अंतरजामी, अँतरजामी—वि. पु. [सं. अतर्यामी] **हृदय की बात जानने वाला** । उ.—(क) कमल-नैन, करुना-मय, सकल-अतरजामी—१-१२४ । (ख) सूर बिनती करै, सुनहु नँद-नंद तुम कहा कहौ खोलि कै अँतर-जामी—१-२१४ ।

अंतरदाह—संज्ञा पु. [स.] **हृदय की जलन; हृदय का सताप** उ.—अंतरदाह जु मिटयौ ब्यास को इक चित ह्वै भागवत किऐं—१-८९ ।

अंतरधान—सज्ञा पु. [सं. अतर्द्धान] **लोप, अदर्शन** । वि.—**गुप्त, अलख, अदृश्य** । उ.—करि अँतरधान हरि मोहिनी रूप को, गरुड असवार ह्वै तहाँ आए—८-८ ।

अंतरध्यान—संज्ञा पु. [सं. अतर्द्धान] **अदृश्य, अतर्हित, लुप्त** । उ.—भये अतरध्यान बीते पाछिली निस जाम—सा. ११८ ।

अंतरपट—संज्ञा पु. [स.] (१) **परदा, आड, ओट** (२) **छिपाव, दुराव** । (२) **अधोवस्त्र** ।

अंतरा—संज्ञा पु. [सं. अतर] **मध्यवर्ती काल, बीच का समय** । उ.– जब लगि हरत निमेष अतरा युगसमान पल जात—१३४७ ।

क्रि. वि. [स] (१) **मध्य** । (२) **अतिरिक्त** । (३) **पृथक** ।

संज्ञा पु.—**गीत की स्थाई या टेक के अतिरिक्त पद या चरण** ।

अँतराना—क्रि. स. [सं. अतर] (१) **पृथक करना** । (२) **भीतर ले जाना** ।

अंतराय—संज्ञा पु. [स.] (१) **बाधा** । (२) **ज्ञान का बाधक** ।

अंतराल—संज्ञा पु. [सं.] (१) **घेरा, मंडल** । (२) **मध्य, बीच** ।

अंतरिक्ष—संज्ञा पु. [सं.] (१) **आकाश** । (२) **स्वर्गलोक**

वि.—**अंतर्द्धान, गुप्त** ।

अंतरिच्छ—संज्ञा पु. [सं. अंतरिक्ष] १) **आकाश, अधर**। उ.—जोजन बिस्तार सिला पवनसुत उपटी। किंकर करि बान लच्छ अंतरिच्छ काटी—९-९६। (२) **अधर, ओठ**। उ.—(क) अंतरिच्छ श्री बंधु लेत हरि त्यौ ही आप आपनी घाती—सा. ५०। (ख) अंतरिच्छ मे परो बिंबफल सहज सुभाव मिलावे—सा. उ. १०३।

अंतरिच्छन—संज्ञा पु. बहु. [सं. अंतरिक्ष] **दोनों अधर, ओंठ**। उ.—अंतरिच्छन सिधु-सुत से कहत का अनुमान—सा. ७८।

अंतरिछ—संज्ञा पु. [सं. अंतरिक्ष] **ओठ, अधर**। उ.—(क) लगे फरकन अंतरिछ अनूप नीतन रंग—सा. ७५। (ख) हरि को अंतरिछ जब देखी। दिग्गज सहित अनूप राधिका उर तब धीरज लेखी—सा. ८३।

अंतरित—[सं.] (१) **छिपा हुआ, गुप्त**। (२) **ढका हुआ**।

अंतरीक—संज्ञा पु. [सं. अंतरिक्ष] **आकाश**।

अँतरौटा—संज्ञा पु. [सं० अंतरपट] **महीन साड़ी के नीचे पहनने का वस्त्र जिससे शरीर दिखाई न दे**। उ.—चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)। अँतरौटा अवलोकि कै असुर महा मदमाते (हो)—१—४४।

अंतर्गत—वि. [सं०] (१) **भीतर, छिपा हुआ, गुप्त**। (२) **हृदय के, हार्दिक**।

संज्ञा पु—**मन, हृदय, चित्त**। उ—(क) रुक्म रिसाई पिता सौं कह्यौ। सुनि ताकौ अंतर्गत दह्यौ—१०उ—७। (ख) बारंबार सती जब कह्यौ। तब सिव अंतर्गत यौं लह्यौ—४-५।

अंतर्गति—संज्ञा स्त्री [सं] (१) **चितवृत्ति, मनोकामना, भावना**। (२) **हृदय में**। उ—करि समाधि अन्तर्गति ध्यावहु यह उनको उपदेस—२९८८।

अंतर्दृष्टि—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) **ज्ञानचक्षु, प्रज्ञा**। (२) **आत्मचिंतन**।

अंतर्धान—संज्ञा पु० [सं० अन्तर्द्धान] **लोप, तिरोधान**।
वि०—**गुप्त, अदृश्य, अंतर्हित**। उ.—कै हरि जू भए अन्तर्धान—१-२८६।

अंतर्धाना—वि [सं. अंतर्द्धान] **गुप्त, अदृश्य, अंतर्हित**। उ.—राधा प्यारी सङ्ग लिए भए अन्तर्धाना—१७९२।

अंतर्बोधि—संज्ञा पु. [सं.] (१) **आत्मज्ञान**। (२) **आंतरिक अनुभव**।

अंतर्यामी—वि. [सं.] **हृदय की बात जानने वाला**। उ—सूरदास प्रभु अंतर्यामी भक्त संदेह हर्‌यौ—२५५२।

अंतर्हित—वि. [सं.] **अंतर्द्धान, अदृश्य, लुप्त**।

अंतावरी, अंतावली—संज्ञा स्त्री. [हिं. अंत+सं. आवलि] **आँतें, अँतड़ी-समूह**।

अंतःकरण—संज्ञा पु. [सं.] (१) **हृदय, मन, चित्त, बुद्धि**। (२) **नैतिक बुद्धि, विवेक**।

अंतःपुर—संज्ञा पु [सं.] **महल का मध्यभाग जहाँ रानियाँ रहती हैं, रनिवास**। उ.—नृप सुनि मन आनन्द बढायौ। अन्तःपुर मै जाइ सुनायौ—४-९।

अँदरसे—संज्ञा पु. बहु. [फा. अंदर + सं. रस] **एक मिठाई जो चौरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है**। उ. सुंदर अति सरस अँदरसे। ते घृत दधि-मधु मिलि सरसे—१०-१८३।

अंदेस, अँदेस—संज्ञा पु [फा अंदेशा] (१) **सोच, चिंता, फिक्र**। उ—इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यो, सखि यह संसय मोर। सिय-अंदेस जानि सूरज-प्रभु लियो करज की कोर—९-२३। (२) **भय, डर, आशंका**। उ.—(क) सूर निर्गुन ब्रह्म धरि कै तजहु सकल अंदेस—१९७४। (ख) छिन बिनु प्रान रहत नहि हरि बिन निसदिन अधिक अंदेस—१७५३। (३) **संशय, अनुमान**। (४) **हानि**। (५) **दुविधा, असमंजस**।

अँदेसो—संज्ञा पु. [फा. अंदेशा] (१) **चिंता सोच**। उ. समै पाइ समुझाइ स्याम सो हम जिय बहुत अंदेसो—३४३१। (२) **हानि, दुख**। उ.—रवि के उदय मिलन चकई को ससि के समय अँदेसो—३३६९। (३) **आशंका, भय, डर**। उ.—भली स्याम कुसलात सुनाई सुनतहि भयौ अँदेसो—३१६३।

अंदोर—संज्ञा पु० [सं. अंदोल=झूलना, हलचल] **हलचल, हल्ला, कोलाहल**। उ.—भहरात झहरात

दवा (नल) आयौ। घेरि चहुँ ओर, करि सोर अदोर बन, धरनि आकास चहुँ पास छायौ—५९६।

अंध—वि [स०] (१) **नेत्रहीन**। (२) **अज्ञानी, अविवेकी**। (३) **अन्धकारपूर्ण**। उ.—जैसे अधौ अंधकूप मै गनत न खाल-पनार—१-८४। (४) **असावधान, अचेत**। (५) **उन्मत्त, मतवाला**। उ.—काम अंध कछु रही न सँभारि। दुर्वासा रिषि कौ पग मारि—६-७। (६) **प्रखर, तीव्र**। उ.—भयौ राधा फिर मौन गह्यौ री। जैसे नउआ अध भँवर खर तँसहि तै यह मौन कह्यौ री—१३१०।

सज्ञा पु —(१) **नेत्रहीन प्राणी**। (२) **अंधकार**। (३) **धृतराष्ट्र**।

यौ —अधसुत— **धृतराष्ट्र के पुत्र**। उ —अंबर गहत द्रौपदी राखी, पलटि अधसुत लाजै—१-३६।

अंधकार—संज्ञा पु [स] (१) **अँधेरा, तम**। (२) **अज्ञान, मोह**। (३) **उदासी, कांतिहीनता**।

अंधकाल—सज्ञा पु [सं अधकार] **अँधेरा**।

अंधकाला—सज्ञा पु [स अधकार] **अँधेरा, अंधकार**। उ.—ऐसे बादर सजल करत अति महाबल चलत घहरात करि अधकाला—९४६।

अंधकूप—सज्ञा पु. [स.] (१) **सूखा कुआँ**। (२) **अँधेरा**।

अंधधुंध—सज्ञा पु [स अध=अधकार + हि धुध] (१) **अधकार, अँधेरा**। उ —अति बिपरीत तृनावर्त आयौ। बात चक्र मिस ब्रज के ऊपर नद पौरि के भीतर आयौ। अधधुध (अँधाधुध) भयौ सब गोकुल जो जहाँ रह्यो सो तहाँ छपायौ—१०-७७। (ख) कोउ लै ओट रहत बृच्छन की अधधध दिसि बिदिसि भुलाने—९५१। (ग) अधधुध मग कहूँ न सूझै—१०५०। (२) **अंधेर, अनरीति**।

अंधबाई—सज्ञा स्त्री [सं अधवायु] **धूलभरी आँधी, अंधड़**। उ —स्याम अकेले आँगन छाँड़े, आपु गई कछु काज घरै। यहि अतर अँधबाइ उठी (अँधवाह उठ्यो) इक गरजत गगन सहित घहरै—१०-७६।

अंधमति—वि [स] **नासमझ, मूर्ख**। उ —रे दसकध, अधमति, तेरी आयु तुलानी आनि—९-७९।

अंधर—वि [स अधकार] **अंधकारमय**।

अँधरा—सज्ञा पु [सं. अंध] **अंधा प्राणी**।

वि —**जो अंधा हो**।

अँधवाह—सज्ञा स्त्री [सं अंधवायु, हिं अँधबाई] **आँधी**। उ —(क) इहि अतर अँधबाह उठ्यौ इक, गरजत गगन सहित घहरै—१०-७६। (ख) धावहु नन्द गोहारि लगौ किन, तेरौ सुत अँधवाह उड़ायौ—१०-७७।

अंधाधुंध—संज्ञा स्त्री [हिं अंधा + धुध] (१) **बड़ा अँधेरा, घोर अंधकार**। उ —अति बिपरीत तृनावर्त आयौ। बात-चक्र-मिस ब्रज ऊपर परि, नंद पौरि के भीतर धायौ। ...... । अँधाधुध भयौ सब गोकुल, जो जँह रह्यौ सो तही छपायौ—१०-७७। (२) **अंधेर, अविचार**।

अंधार—संज्ञा पु [सं अंधकार, प्रा अँधयार] **अँधेरा, अंधकार**।

अँधियार—संज्ञा पु [स० अधकार, प्रा अँधयार] **अँधेरा, अंधकार**।

वि.—**अंधकारपूर्ण, तमाच्छादित**। उ —भय-उदधि जमलोक दरसै निपट ही अँधियार—१-८८।

अँधियारा—संज्ञा पु [सं अंधकार, प्रा. अँधयार] (१) **अँधेरा, अंधकार** (२) **धुंधलापन**।

वि —(१) **प्रकाशरहित**। (२) **धुँधला**। (३) **उदास, सूना**।

अँधियारी सज्ञा स्त्री. [प्रा. अँधयार + हि ई=अँधारी] (१) **तेज आँधी जिससे अंधकार छा जाय, काली आँधी**। उ —ता सँग दासी गईं अपार। न्हान लगी सब बसन उतार। अँधियारी आई तहँ भारी। दनुज सुता तिहिं तै न निहारी। बसत सुक्र तनया के लीन्हे। करत उतावलि परे न चीन्हे—९-१७४। (२) **अंधकार**।

वि —**अंधकारपूर्ण, अँधेरी**। उ.—अँधियारी भादौं की रात—१०-१२।

अँधियारैं—संज्ञा सवि [हि० अँधियारा]। **अँधेरे में**। उ.—सूर स्याम मदिर अँधियारैं, (जुवति) निरखति बारंबार—१०-२७७।

वि —**अँधकारमय, प्रकाशरहित**। उ —**अँधियारैं** घर स्याम रहे दुरि—१०-२७८।

अँधियारौ—संज्ञा पु० [हिं० अँधियारा] (१) अंधकार । (२) धुँधलापन ।

वि — (१) प्रकाशरहित । उ.—जब तें हौ हरि रूप निहारौ । तब तें कहा कहौ री सजनी लागत जग अँधियारौ—सा ४० । (२) धुँधला । (३) उदास, सूना, निराशापूर्ण । उ०—कहो सँदेस सूर के प्रभु को यह निर्गुन अँधियारौ—३२६४ ।

अँधु—वि० [स० अंध] अंधकारपूर्ण, अज्ञानतायुक्त । उ०—तुम्हरी कृपा बिनु सब जग अंधु—पृ०३६१ ।

अँधेरना—क्रि० सं० [हिं. अंधेर] अंधेर करना, अंधकारमय करना ।

अँधेरा—संज्ञा पुं० [सं० अंधकार, प्रा० अंधयार, हि० अधेर] (१) अंधकार । (२) अन्याय, अविचार, अत्याचार । (३) उपद्रव, गड़बड़, धींगाधींगी, अनर्थ । उ०—महामत्त, बुधिबल को हीनौ, देखि करै अंधेरा—१-१८६ । (४) उदासी, उत्साहहीनता ।

अँधेरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० अँधारी] (१) अंधकार । (२) अँधेरी रात ।

अँधेरी—वि० स्त्री० [हि० पु० अँधेरा + ई] अंधकारमय, प्रकाशरहित । उ०—निसि अँधेरी, बीजु चमकै, सघन बरषै मेह—१०-५ ।

संज्ञा स्त्री०—(१) अँधियारी (२) अँधेरी रात । (३) आँधी ।

अँधेरै—संज्ञा पुं० सवि० [हिं० अँधेरा] अंधकारपूर्ण स्थान में । उ०—कृष्ण कियौ मन ध्यान असुर इक बसत अँधेरै—१०-४३१

अँधेरौ—संज्ञा पुं० [हि० अँधेरा] (१) अँधकार । (२) धुँधलापन । (३) उदासी, उत्साहहीनता, निराशा, उ०—पाछे चढौ बिमान मनोहर बहुरौ जदुपति होत अँधेरौ—२५३२ ।

वि० (१) अंधकारमय । (२) अँधा । उ०—एक अँधेरौ हिये की फूटी दौरत पहिर खराऊँ—३३६६ ।

अँधौ—संज्ञा पुं० [सं० अंध, हि, अंधा] अंधा प्राणी, नेत्रहीन व्यक्ति । उ०—जैसे अंधौ अंध कूप मैं गनत न खाल-पनार—१-८४ ।

अँध्यारी—वि० स्त्री० [हि० पुं० अँधियार] अँधेरी, प्रकाशरहित । उ०—भादौ की अधराति अँध्यारी—१०११ ।

संज्ञा स्त्री०—श्यामता, कालिमा । उ०—अलक वारत अँध्यारी तिलक भाल सुदेस—१४१३ ।

अँध्यारैं—संज्ञा पुं० सवि० [हिं अँधियारा] अँधेरे में । उ०—कबहुँ अघासुर बदन समाने, कबहुँ अँध्यारैं जात न धाम—४६७ ।

अँध्यारौ—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा] अँधेरा । उ०—आवहु बेगि चलौ घर जैऐ, बनही होत अँध्यारौ—५०१ ।

अंब—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब] (१) आम का पेड़ । उ०—अब सुफल छाँडि, कहा सेमर कौ धाऊं—१-१६६ । (२) माता ।

अंबर—संज्ञा पु० [स०] (१) वस्त्र, कपड़ा, पट । उ.—नृपति रजक अंबर नृप धोवत—२४७४ । (२) स्त्रियों को धोती, सारी । उ—करषत सभा द्रुपद-तनया को अंबर अछय कियौ—१-१२१ । (३) आकास, आसमान । उ—रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन सरन कहि भाषी । बढै दुकूल-कोट अंबर लौ, सभा-माँझ पति राखी—१-२७ ।

अंबरबानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अंबर=आकाश + वाणी] (१) आकाशवाणी । (२) गर्जन । उ.—अंबरबानी भई सजल बादल दल छाए—१० उ.—८ ।

अँबराई—संज्ञा स्त्री० [सं. आम्र + राजी=पंक्ति] आम का बगीचा । उ.—अति दरेर की झरेर टपकत सब अँबराई—१५६२ ।

अँबराव—संज्ञा पु० [सं० आम्र + राजी=पंक्ति] आम का बगीचा ।

अंबरीष, अँबरीष—संज्ञा पु० [सं०] अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा । इन्हें कहीं प्रशुश्रक का पुत्र कहा गया है और कहीं नाभाग का । राजा इक्ष्वाकु से ये अट्ठाइसवीं पीढ़ी में हुए थे । ये विष्णु के बड़े भक्त थे और उनके चक्र ने परम क्रोधी दुर्वासा मुनि के शाप से इनकी रक्षा की थी ।

अँबा—संज्ञा स्त्री [स०] (१) माता, जननी । (२) गौरी, देवी ।

संज्ञा पु० [सं० आपाक=आवाँ, हिं० आँवा

अँवा] **वह गढ़ा जिसमें कुम्हार मिट्टी के बरतन पकाते हैं।** उ.—बिधि-कुलाल कीने काचे घट ते तुम आनि पकाए।··· ····। ब्रजकरि अँवा जोग इँधन सम सुरति आगि सुलगाए—३१६१।

संज्ञा पु० [सं० आम्र, हिं० आम] **आम।**

अंबा—संज्ञा स्त्री० [सं०] **(१) माता, जननी। (२) गौरी, देवी। (३) अँवा।**

अंबावन—संज्ञा पु० [सं०] **इलावृत खंड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाता था।** उ.—पुनि सुद्युम्न बसिष्ठ सों कह्यौ। अंबावन मैं तिय ह्वै गयौ-९-२।

अंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] **(१) माता, माँ। (२) दुर्गा, भगवती।** उ.—गए सरस्वती तट इक दिन सिव-अंबिका पूजन हेत-२२६१। **(३) काशी के राजा इंद्रद्युम्न की मझली कन्या जिसे हर कर भीष्म ने विचित्रवीर को ब्याह दिया था। विचित्रवीर की मृत्यु के बाद इससे व्यास जी ने नियोग किया जिससे धृतराष्ट्र का जन्म हुआ।**

अंबिकावन—संज्ञा पु० [सं०] **पुराणों के अनुसार इलावृत खंड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे।** उ.—एक दिवस सो अखेटक गयौ। जाइ अंबिकावन तिय भयौ-९-२।

अंबु—संज्ञा पु० [सं०] **(१) जल, पानी। (२) आँसू।** उ.—सारंग मुख ते परत अंबु ढरि मनु सिव पूजति तपति बिनास—सा० उ० २८।

संज्ञा पु० [सं० आम्र, प्रा० अंब] **आम का पेड़।** उ.—जबुबृक्ष कहौ क्यो लंपट फलवर अंबु फरै—३३११।

अँबुआ—संज्ञा पु० [सं० आम्र, प्रा० अंब, हिं० आम] **आम, रसाल।** उ.—द्वादस बन रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले। भौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले—२३६१।

अंबुज—संज्ञा पु० [सं०] **(१) जल से उत्पन्न वस्तु। (२) कमल।**

अंबुनिधि—संज्ञा पु० [सं०] **समुद्र, सागर।**

अंबूजी—संज्ञा पु० [सं० अंबु=जल+जा (स्त्री० जल से उत्पन्न वस्तु)] **कमलिनी।** उ.—अनुदिन काम बिलास बिलासिनि वै अलि तू अंबूजी—३२७९।

अंबोधि—संज्ञा पु० [सं० अंबुधि] **समुद्र, सागर।**

अंभ—संज्ञा पु. [सं. अंभस्] **जल, पानी।** उ.—ससि चंदन अरु अंभ छाँड़ि गुन बपु जु दहत मिलि तीः—२८६६।

अंभोज—संज्ञा पु. [सं] **कमल।**

अंमर—संज्ञा पु. [सं. अंबर] **आकाश, गगन।** उ—चढ़ि चढ़ि अमर बिमान परम सुख कौतुक अंमर छाए—२६२२।

अँवदा—वि [सं. अवोध] **(१) औंधा, उलटा (२) नीचे की ओर मुँहवाला।**

अँवा—संज्ञा पुं [सं आपाक=आवाँ, हिं. आवाँ, अवा] **कुम्हार का आँवा।**

अंश—संज्ञा पु. [सं.] **(१) भाग, विभाग। (२) हिस्सा।**

संज्ञा पु — [सं. अश्रु] **आँसू।** उ.—प्रेमघट उच्छवलित ह्वैहै अंश नैन बहाइ—२४८६।

अंशी—वि. [सं. अंशिन्] **अंशधारी, अंश रखनेवाला।** उ.—द्वारपाल इहै कही जोधा कोउ बचे नाहिं, काँधे गजदंत धरे सूर ब्रह्मअंशी—२६१०।

अंशु—संज्ञा पु. [सं] **(१) किरण, प्रभा। (२) लेश, बहुत सूक्ष्म भाग।** उ.—दुख आवन कछु अटक न मानत सूनो देखि अगार। अंशु उसाँस जात अतर ते करत न कछु बिचार—२८८८।

अंशुक—संज्ञा पु. [सं.] **उपरना, उत्तरीय, दुपट्टा।**

अंशुमान—संज्ञा पु. [सं.] **अयोध्या के सूर्यवंशी राजा जो सगर के पौत्र और असमंजस के पुत्र थे। सगर के साठ हजार पुत्रों के भस्म हो जाने पर अश्वमेध का घोड़ा खोजने ये ही निकले थे और इन्हें ही सफलता मिली थी।**

अंशुमाली—संज्ञा पु. [सं.] **सूर्य।**

अंस,अँस—संज्ञा पु. [सं. अंश] **(१) भाग, शक्ति।** उ. - (क) बिष्नु-अंस सौ दत्तऽवतरे। रुद्र-अंस दुर्बासा धरे। ब्रह्म - अंस चंद्रमा भयौ—४-३। (ख) राजा मत्री सौं हित मानै। ताकैं दुख दुख, सुख-सुख जानै। नरपति ब्रह्म, अंस सुख-रूप। मन मिलि परचौ दुख कै कूप—४-१२। **(२) कला,**

सोलहवाँ भाग। उ.—हरि उर मोहनि बेलि लसी। ता पर उरग ग्रसित तब सोभित पूरन अंस ससी—स. उ.—२५। (३) **आत्मीयता, अपनत्व, अधिकार, संबंध।** उ.—इनके कुल ऐसी चलि आई सदा उजागर बस। अब इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अंस—३०४६। (४) **कंधा।** उ.—वाम भुजहिं सखा अंस दीन्हे, दच्छिन कर द्रुम-डरिया—४७०।

अंसक—वि [सं. अशक] **अंश रखनेवाला, अंशी, अंशधारी।**

अंसु—संज्ञा पु. [सं. अंशु] **किरण, प्रभा।** उ.—(क) मुख-छबि देखि हो नद-घरनि। सरद-निसि कौ अंसु अगनित इंदु आभा हरनि—३५१। (ख) जागिये गोपाल लाल, प्रगट भई अंसु-माल, मिट्यौ अंधकाल, उठौ जननी-सुखदाई—६१६।

संज्ञा पु [स. अश] **कंधा।** उ.—सखा अंसु पर भुज दीन्हे, लीन्हे मुरलि, अधर मधुर, बिस्व भरन—६२४।

अँसुपात—संज्ञा पु [सं. अश्रु+हि. पात] **आँसू, आँसू की झड़ी।** उ.—इहिं बिधि सोच करत अति ही नृप, जानकि ओर निरखि बिलखात। इतनी सुनत सिमिटि सब आए, प्रेम-सहित धारे अँसुपात—९-३८।

अंसुमान—संज्ञा पु. सं. [अशुमान] **अयोध्या के एक राजा जो सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र और असमंजस के पुत्र थे। राजा सगर के अश्वमेध का घोड़ा कपिल मुनि के यहाँ से ये ही लाए थे।**

अँसुअ—संज्ञा पु. [स. अश्रु, पा. प्रा. अस्सु, हिं. आँसू] **आँसू।** उ.—हृदय ते नहिं टरत उनके स्याम नाम सुहेत। अँसुव सलिल प्रवाह डर मनौ अरघ नैनन देत—३४८३।

अँसुवा—संज्ञा पु. [सं. अश्रु, पा. प्रा. अस्सु, हिं. आँसू] **आँसू।** उ.—(ख) देखि माई हरि जू की लोटनि। यह छबि निरखि रही नँदरानी, अँसुवा ढरि-ढरि परत करोटनि—१०-१८७। (ख) चपल दृग, पल भरे अँसुवा, कछुक ढरि-ढरि जात—३६०।

अँसुवाना—क्रि. अ. [सं. अश्रु] **डबडबा आना, आँसू आ जाना।**

अइयै—क्रि० अ०, [हिं० आना, आइए] **पधारिए।** उ०—चरन धोइ चरनोदक लीन्हौं, तिया कहै प्रभु अइयै—९-२३१।

अऊत—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अउत्त] **निपूता, निसंतान।**

अऊलना—क्रि० अ० [सं० उल्=जलना] **जलना, गरम होना।**

क्रि० अ० [सं० आ=अच्छी तरह+शूलन प्रा० सूलन, हि० हूलना] **छिदना, चुभना।**

अएरना—क्रि० स० [स. अंगीकरण, प्रा० अंगिअरण, हिं० अंगरना] **स्वीकार करना, धारण करना।**

अकंटक—वि० [सं०] (१) **बिना काँटे का।** (२) **निर्विघ्न, बाधारहित, बिना खटके का।**

अकत्थ—वि० [सं० अकथनीय] **न कहने योग्य, अकथनीय।**

अकथ—वि० [सं०] **जो कहा न जा सके, वर्णन के बाहर, अकथनीय, अवर्णनीय।** उ.—(क) अकथ कथा याकी कछू, कहत नही कहि आई (हो)—१-४४। (ख) ये अब कहति देखावहु हरि कौ देखहु री यह अकथ कहानी—१-१२७६। (ग) सिंह रहे जबुक सरनागत, देखी-सुनी न अकथ कहानी—पृ० ३४३। (घ) कमलनैन जगजीवन के सखी गावत अकथ कहानी—२७९६। (ङ) किनहूँ के सँग धेनु चरावत हरि की अकथ कहानी—३४११।

अकथन—वि० [सं० अकथ, अकथ्य] **जो वर्णन न किया जा सके, अवर्णनीय, अकथनीय।** उ०—मन, बच करि कर्म रहित बेदहु की बानी। कहिये जो निबहिबे अकथन कहुँ स्याही। सूरस्याम मुख सुचंद्र लीनि जुवति मोही—३२८९।

अकधक—संज्ञा पु० [सं० धृ=धड़कना, काँपना] **आशंका, भय, डर।**

अकनत—क्रि० स० [स० आकर्णन=सुनना, हिं० अकेनना] **ध्यान से, कान लगाकर, आहट लेकर।** उ०—नगर सोर अकनत सुनत अति रुचि उपजावत—२५६१।

अकनना—क्रि० स० [सं० आकर्णन=सुनना] **कान लगाकर सुनना, आहट लेना।**

अकना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ आकुल] **ऊबना, उकताना।**

अकनि—क्रि॰ स॰ [स॰ आकर्णन=सुनना, हिं॰ अकनना] **सुनकर।**

यौ॰—अकनि रहत—कान लगा कर या चुपचाप सुनते रहते (हैं) ध्यान में मग्न। उ॰—आलस-गात जात मनमोहन, सोच करत, तनु नाहिंन चैनु। अकनि रहत कहुँ, सुनत नही कछु, नहिँ मो-रभम बालक-बैनु—२०१।

अकनी—क्रि॰ स॰ [स॰ आकर्णन=सुनना, हिं॰ अकनना] **आहट ली, सुनी।** उ.—कह्यौ तुम्हारो सबै कही में और कछु अपनी। स्रवनन बचन सुनत हे उनके जो घट मँह अकनी—३४६९।

अकनै—वि॰ [स॰ आकर्ण्य=सुनना, हि॰ अकनना] **सुनने को, सुनने योग्य, सुनने की चाह से युक्त, इष्ट।** उ॰—सौ हरि प्रान प्रनतबल्लभ मोहनलीला है अकनै। आवत है कछु कह्यौ सूर प्रभु नहिँ तौ रहौ तुम मौन बनै—३२१२।

अकबक—सज्ञा पु॰ [सं॰ अवाक्य, अवाच्य] (१) **असंबद्ध प्रलाप।** (२) **धड़क, चिंता।** (३) **चतुराई, सुध।**

वि॰—[स॰ अवाक्] **भौचक्का, अवाक्, चकित।**

अकबकात—क्रि॰ अ॰ [सं॰ अवाक्, हिं॰ अकबकाना] **चकित होते हैं, भौचक्के रह जाते हैं, घबड़ाते हैं।** उ॰—सकसकात तन, धकधकात उर अकबकात सब ठाढ़े। सूर उपँगसुत बोलत नाही अति हिरदै ह्वै गाढे—२९६९।

अकबकाना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ अवाक्] **चकित होना, भौचक्का रह जाना।**

अकरखना—क्रि॰ सं. [सं॰ आकर्षण] (१) **खींचना, तानना।** (२) **चढ़ाना।**

अकरतौ—क्रि. अ. [हिं. आ=अच्छी तरह+कड्ड=कड़ापन, हि. अकडना] **अभिमान दिखाता, घमंड करता, अकड़ जाता।** उ.—कबहुँक राज-मान मद पूरन, कालहु तै नहि डरतौ। मिथ्या बाद आप-जस सुनि-सुनि, मूछहि पकरि अकरतौ—१-२०३।

अकरन—वि. [स. अ = नही+करण, अकरणीय] (१) **न करने योग्य।** उ.—दयानिधि तेरी मति लखि न परै। धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै—१-१०४। (२) **बिना कारण का, अकारण।**

अकरम—सज्ञा पु. [सं. अकर्म] **न करने योग्य कार्य, बुरा काम, दुष्कर्म।** उ.—अकरम, अबिधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोइ करत अनीति—१-१२६।

अकराथ—वि. [स. अकार्यार्थ, प्रा. अकारियत्थ] **अकारथ, व्यर्थ, निष्फल।**

अकरी—वि. स्त्री. [सं. अक्रय्य, हिं. अकरा (पु.)] (१) **मँहगी, अधिक दाम की।** उ.—ऊधौ तुम ब्रज मे पैठ करी। लै आए हो नफा जानि कै सबै बस्तु अकरी—३१०४। (२) **खरी, श्रेष्ठ, उत्तम, अमूल्य।**

अकरुन—वि. [सं. अकरुण] **निर्दयी, निष्ठुर।**

अकर्त्ता—वि. [सं.] **कर्म न करनेवाला, कर्म से निर्लिप्त।**

अकर्म—सज्ञा पु. [स] **न करने योग्य कार्य, बुरा काम।**

अकर्मा—वि. [स.] **काम न करने वाला, काम के लिए अनुपयुक्त।**

अकर्षि—क्रि सं. [सं. आकर्षण, हि. आकर्षना] **खींच कर, आकर्षित करके।** उ.—जेहि माया बिरंचि सिव मोहे, वहै बानि करि चीन्हौ। देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी, आप बास करि लीन्हौ—१०-४।

अकलंक—सज्ञा पु. [सं. कलंक] **दोष, लांछन।**

अकलंकता—संज्ञा स्त्री. [स] **कलंकहीनता, निर्दोषिता।**

अकलंकित—वि. [स.] **निष्कलंक, निर्दोष, शुद्ध, निर्मल।** उ.—अलक तिलक राजत अकलंकित मृगमद अंग बनी—पृ. ३१६।

अकल—वि. [स.] (१) **अखंड, सर्वांगपूर्ण** उ.—प्रेम पिये बर बारुनी बलकत बल न सँभार। पग डगडग जित तित धरति मुकुलित अकल लिलार—११८२। (२) **परमात्मा का एक विशेषण।** उ.—(क) पहिलै हौ ही हो तब एक। अमल, अकल, अज, भेद-बिवर्जित, सुनि बिधि बिमल बिवेक—२-३८। (ख) फिरत बन बन बिकल सहस सोरह सकल ब्रह्मपूरन अकल नही पावै—। १८०६।

संज्ञा स्त्री. [अ. अक्ल] **बुद्धि, समझ, ज्ञान।** उ.—इंद्र ढीठ बलि खाइ हमारी देखौ अकल गमाई—९८५।

वि. [सं. अ = नहीं + कला] **बिना कला या चतुराई का।**

वि. [सं. अ = नहीं + हिं कल = चैन] **विकल, व्याकुल, बेचैन।**

अकलै—वि. [सं. अकल] **बिना कला या चतुराई का, निर्गुणी।**

संज्ञा [सं. अ = नहीं + हिं. कल = चैन] **(१) विकलता, व्याकुलता। (२) गुणहीनता।** उ.—लगर, ढीठ, गुमानी, टूँडक, महा मसखरा, रूखा। मचला, अकले-मूल, पातर, खाऊँ खाऊँ करि भूखा—१-१८६।

अकस—संज्ञा पु. [अ.] **बैर, द्वेष, डाह, ईर्ष्या, विरोध, होड़।**

अकसना—क्रि. स [हिं अकस] बैर या शत्रुता करना, रार ठानना।

अकसर—क्रि. वि. [स. एक+सर (प्रत्य.)] **अकेले, बिना किसी को साथ लिए।**

अकह—वि. [सं. अकथ, प्रा. अकह] **(१) जो कही न जा सके, अकथनीय, अवर्णनीय। (२) अनुचित, बुरी।**

अकहुवा—वि. [सं. अकथ, प्रा. अकह] **जो कहा न जा सके, अकथनीय।**

अकाज—संज्ञा पु. [स. अ = नहीं + हिं. काज] **(१) कार्य हानि, विघ्न, बिगाड़। (२) दुष्कर्म, खोटा काम।**

क्रि. वि.—**व्यर्थ, निष्प्रयोजन।**

वि.—**महत्वहीन।** उ.—अबलौ नान्हे-नून्हे तारे, ते सब बृथा-अकाज। साँचे बिरद सूर के तारत लोकनि-लोक अवाज—१-९६।

अकाजना—क्रि. अ. [हि. अकाज] **(१) हानि होना, खो जाना। (२) मर जाना।**

क्रि. स.—**हानि करना, विघ्न डालना।**

अकाजी—वि. [हिं. अकाज] **कार्य की हानि करनेवाला, बाधक, विघ्नकारी।**

अकाथ—क्रि. वि. [सं. अकृतार्थ] **अकारथ, व्यर्थ, निष्फल, निरर्थक।** उ.—(क) कर्म, धर्म, तीरथ बिनु राधन, ह्वै गए सकल अकाथ। अभय दान दै अपनौ कर धरि सूरदास कै माथ—१-२०८। (ख) रह्यौ न परै सु प्रेम आतुर अति जानी रजनी जात अकाथ—२७३६।

वि. [सं. अकथ्य] **न कहने योग्य, अकथनीय, अनिर्वचनीय।**

अकाम—वि. [सं. अ = नहीं + काम = इच्छा] **कामनारहित, निस्पृह, इच्छारहित।**

अकामी—वि. [सं. अकामिन्] **कामनारहित, इच्छा-हीन।**

अकार—संज्ञा पु० [सं० आकार] **(१) स्वरूप, आकृति, मूर्ति, रूप।** उ०—कुच युग कुंभ सुडि रोमावलि नाभि सुहृदय अकार। जनु जल सोखि लयौ से सविता जोबन गज मतवार—२०६२। **(२) सादृश्य, साम्य।** उ०—नैन जलद निमेष दामिनि आँसु बरषत धार। दरस रबि ससि दुत्यौ धीरज स्वास पवन अकार—२८३४। **(३) बनावट, संघटन। (४) चिह्न।**

अकारज—संज्ञा पु० [सं० अकार्य] **हानि, कार्य की हानि।**

अकारथ—वि० [स० आकार्य्यार्थ, प्रा० अकारियत्थ] **निष्फल, निष्प्रयोजन, व्यर्थ, वृथा।**

क्रि० वि०—**व्यर्थ, निष्प्रयोजन।** उ०—(क) आछौ गात अकारथ गारयौ। करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जनम जुवा ज्यौ हारयौ—१-१०१। (ख) रे मन, जनम अकारथ खोइसि। हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्हीं, उदर भरे परि सोइसि—१-३३२। (ग) पाँच बान मोहि सकर दीन्हे, तेऊ गए अकारथ—१-२८७।

अकारन—वि० [स० अकारण] **(१) बिना कारण का। (२) निस्वार्थ। (३) जो किसी से उत्पन्न न हो।**

अकार्थ—वि० [स० अकार्यार्थ, प्रा० अकारियत्थ, हि० अकारथ] **व्यर्थ, निष्प्रयोजन।**

क्रि० वि०—**व्यर्थ, निष्प्रयोजन।** उ०—साधु-सग भक्ति बिना तन अकार्थ जाई—१-३३०।

अकाल—संज्ञा पु० [स०] **अनुपयुक्त समय, कुसमय।** उ०—यह बिनती हौ करौ कृपानिधि, बार-बार अकुलाइ। सूरजदास अकाल प्रलय प्रभु, मेटौ दरस दिखाइ—९-११०।

अकास—संज्ञा पु० [स० आकाश] **(१) अंतरिक्ष, आसमान,**

गगन। (२) शून्य। उ०—जदुपति जोग जानि जिय साँचे नयन अकास चढ़ायो—२१२२।

मुहा०—गहौ अकास—अनहोनी या असंभव बात करते हो। उ०—बातनि गहौ अकास सुनहि न आवै सांस बोलि तौं कछू न आवै ताते मौन गहियै—१२७३।

अकास गुन—संज्ञा पुं० [स० आकाश+गुण] **आकाश का गुण, शब्द**। उ०—गुन अकास को सिद्ध साधना सास्त्र करत बिस्तार—सा० १०४।

अकासबानी—संज्ञा स्त्री० [स० आकाशवाणी] **आकाश से कहे हुए शब्द, देववाणी**। उ०—भई अकासबानी तिहिं बार। तू ये चारि श्लोक बिचार—२-३७।

अकासैं—संज्ञा० पुं० सवि० [स० आकाश] **आकाश में, आकाश को**। उ०—यह कहिकै सो चली पराई। जैसे तड़ित अकासै जाई—९-२।

अकीरति—संज्ञा स्त्री० [स. अकीर्त्ति] **अयश, अपयश**।

अकुंठ—वि० [स०] (१) **तीक्ष्ण, पैनी**। (२) **तीव्र, तेज**।

अकुंचत—क्रि० अ० [हिं० सकुंचना-अकुंचना] **मलिन या उदास होता है**। उ०—काहे को पिय सकुचत हौ। अब ऐसौ जिनि काम करौ कहुं जो अति ही जिय अकुंचत हौ—२१८३।

अकुल—वि० [स०] (१) **कुलरहित, परिवारहीन**। (२) **नीचे वंश का**।

अकुलाइ, अकुलाई—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] **घबड़ा कर, व्याकुल होकर, दुखी होकर**। उ०—(क) रोवत देखि कह्यौ अकुलाई, कहा कर्‌यौ तैं बिप्र अन्याई—१०-५७। (ख) बिरह-बिथा तन गई लाज छुटि, बारंबार उठै अकुलाई—९-५६। (ग) मैं अज्ञान अकुलाइ अधिक लै, जरत माँझ घृत नायौ—१-१५४। (ग) निसि दिन पथ जोहत जाइ। दधि को सुत-सुत तासु आसन बिकल हो अकुलाइ—सा० ३२।

अकुलाए—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] (१) **उतावले हुए, ऊब गए, उकता गए**। उ० —(क) लिखि मम अपराध जनम के चित्रगुप्त अकुलाए—१-१२९। (ख) रथ तैं उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाए। भू संचित भू-भार-उतारन, चपल भए अकुलाए—१-२७३। (२) **घबड़ाए, व्याकुल हुए**।

अकुलात—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] (१) **व्याकुल या दुखी हैं, घबड़ाते हैं**। उ०—(क) दसरथ-सुत, कोसलपुरवासी, त्रिया हरी तातैं अकुलात—९-६६। (ख) बिधि लिखी नहिं टरत कैसेहु, यह कहत अकुलात—२६१७। (ग) सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौ अति आतुर अकुलात—सा० ८० ३। (२) **जल्दी करता है, उतावला है**। उ०—कल्प-समान एक छिन राघव, क्रम-क्रम करि है चितवत। तातैं हौ अकुलात, कृपानिधि ह्वै है पैंडो चितवत—९-८७। (३) **धीरज खोता है, बेचैन है**। उ०—उ०—पूछौ जाइ तात सौ बात। मैं बलि जाउँ मुखारबिंद की तुमही काज कस अकुलात—५३०।

अकुलान—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] **घबड़ाया, व्याकुल हुआ, बेचैन हुआ**। उ०—डोलत महि अधीर भयौ फनिपति कूरम अति अकुलान—९-२६।

अकुलानी—क्रि० अ० स्त्री० [हिं० अकुलाना] (१) **व्याकुल हुई, दुखी या बेचैन हुई**। उ. (क) परै बज्र या नृपति-सभा पै, कहति प्रजा अकुलानी—१-२५०। (ख) जब ज्ञानी जननी अकुलानी। आपु बँधायौ सारँगपानी—३९१। (२) घबरा गई, चकपका गई। उ०—कर तैं साँटि गिरत नहिं जानी, भुजा छाँड़ि अकुलानी। सूर कहै जसुमति मुख मूँदौ, बलि गई सारँगपानी—१०-२५५।

अकुलाने—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] (१) **घबड़ाए, व्याकुल हुए, बेचैन हुए**। उ०—(क)......हरि पीवत जब पाइ। बढ़्यौ बृच्छ बट, सुर अकुलाने, गगन भयौ उतपात। महाप्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात—१०-३४। (२) **आवेग में आए, झुँझलाए**। उ०—अति रिसही तै तनु छीजै, सुठि कोमल अंग पसीजै। बरजत बरजत बिरुझाने। करि क्रोध मनहिं अकुलाने—१०-१८३।

अकुलानै—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] **उतावला होकर, घबराकर**। उ० —बालभाव अनुसरति भरति दृग, अग्र अमुकन आनै। जनु खजरीट जुगल जठरातुर लेत सुभष अकुलानै—२०५३।

अकुलानौ—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] **घबड़ाने लगा, व्याकुल हुआ**। उ०—यह सुनि दूत गयौ लंका मैं, सुनत नगर अकुलानौ—९-१२१।

अकुलान्यौ—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] **घबड़ाया, दुखी या बेचैन हुआ**। उ०—यह सुनि नंद डराइ, अतिहिं मन-मन अकुलान्यौ—५८६।

अकुलाय—क्रि० अ० [हिं० अकुलाना] **व्याकुल होकर, घबड़ाकर**। उ०—गोपपति लखन के बैरी आन के अकुलाय। पक्षिराज सुनाथ पतिनी भोगिबो चित चाय—सा. उ. ४५।

अकुलायो—क्रि० अ० [हिं० अकुलाया] (१) **व्याकुल हुआ**। (२) **चकित हुआ, चकपकाया**। उ०—कपिल कुलाहल सुनि अकुलायौ—९-९।

अकुलाहीं—क्रि. अ. [हिं. अकुलाना] **दुखी होती हैं, घबड़ाती हैं**। उ.—माघ-तुषार जुवति अकुलाहीं। ह्याँ कहुँ नंद-सुवन तौ नाहीं—७९९।

अकुलीन—वि. [सं.] **बुरे कुल का, नीच वंश का**। उ.—पुरुष अरु नारि कौ भेद भेदा नहीं कुलिन अकुलीन आवत हौ काके—२६३५।

अकूत—वि. [सं. अ+हि. कूतना] **जिसका अनुमान न लगाया जा सके, जो कूता न जा सके, असीम, अपरिमित**। उ.—(क) धन्य नंद, धनि धन्य जसोदा, जिन जायौ अस पूत। धन्य भूमि, ब्रजबासी धनि-धनि, आनँद करत अकूत—१०-३६। (ख) निसि सपने को तृषित भए अति सुन्यौ कंस कौ दूत। सूर नारि नर देखन धाए घर घर सोर अकूत—२४९२।

अकूहल—वि. [देश.] **बहुत, अधिक, असंख्य**। उ.—खलत हँसत करै कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल—१०२२।

अकृत—वि. [सं.] (१) **निकम्मा, कर्महीन, मंद**। उ.—ताहिन मेरै और कोउ, बलि, चरन-कमल बिनु ठाउँ। हौं असौच, अकृत (अक्रित) अपराधी, सन्मुख होत लजाउँ—१-१२८। (२) **प्राकृतिक**। (३) **नित्य, स्वयंभू**।

संज्ञा स्त्री. [सं. आकृति] **आकृति**। उ—ताटक तिलक सुदेस झलकत खचित चूनी लाल। अकृत बिकृत बदन प्रहसित कमल नैन बिसाल—२२९०।

अकृपा—संज्ञा स्त्री. [सं. अ+कृपा] **कृपा का अभाव, क्रोध**,। उ.—बदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसें। बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौ तौ तैसें।

अकेल—वि. [सं. एक+हि. ला (प्रत्य)=अकेला] **बिना संगी-साथी का, अकेला, एकाकी**। उ.—(क) भारत-जुद्ध बितत जब भयौ। दुरजोधन अकेल रहि गयौ—१-२८९। (ख) बैठी आजु रही अकेल। आइगो तब लौ बिहारी रसिक रुच बरबेल—सा १०१।

अकेली—वि. स्त्री. [सं एक+हि. ली (प्रत्य)] (१) **जिसके साथ कोई न हो, एकाकी**। उ.—(क) अहो बंधु, काहूँ अवलोकी इहि मग बधू अकेली—९-६४। (ख) आजु अकेली कुंज भवन में बैठी बाल बिसूरत—सा ३। (ग) कुंजभवन ते आज राधिका अलस अकेली आवत—सा. १३। (२) केवल, सिर्फ। उ—दूध अकेली धौरी कौ यह तन कौ अति हितकारि—४१६।

अकेलौ—वि. [सं. एक+हि ला (प्रत्य)=अकेला] **जिसके साथ कोई न हो, बिना साथी का**। उ.—मग लगाइ बीचही छाड़यौ, निपट अनाथ अकेलौ—१-१७५।

अकोट—वि. [सं. कोटि] **करोड़ों, असंख्य**।

संज्ञा पु. [हिं. कोट] **कोट के भीतर का कोट, अंत-दुर्ग**। उ.—रही दे घूँघट पट की ओट। मनो कियौ फिरि मान मवासो मनमथ बिकटे कोट। नहसुत कील कपाट सुलच्छन दै दृग द्वार अकोट। भीतर भाग कृष्ण भूपति को राषि अधर मधु मोट—सा. उ. १६।

अकोर—संज्ञा पु. [सं. अंकपालि या अंकमाल, हि. अँकवार अँकोर] (१) **भेंट, घूस, रिश्वत**। उ.—(क) फूले फिरत दिखावत औरन निडर भए दै हँसनि अकोर—२१३१। (ख) गए छँड़ाइ तोरि सब बंधन दै गए हँसनि अकोर—३१५३। (२) **गोद**।

अकोरी—संज्ञा स्त्री. [सं अंकपालि, अंकमाल, हि, अँक-वार] **गोद, छाती**। उ—यहि ते जो नेकु लुबुधियो री। गहत सोइ जो समात अकोरी—३३४५।

अकोविद—वि. [सं.] **मूर्ख, अज्ञानी**।

अकोसना—क्रि. स. [सं. आक्रोशन] **कोसना, गालियाँ देना।**

अक्रम—वि. [सं.] **क्रमरहित, बेसिलसिले।**

अक्रित—वि. [सं. अकृत] **निकम्मा, बेकाम, कर्महीन, मंद।** उ.—हौ असौच, अक्रित, अपराधी, सनमुख होत लजाउँ। तुम कृपाल, करुनानिधि, केसव, अधम उधारन-नाउँ—१-१२८।

अक्रूर—संज्ञा पु. [सं.] एक **यादव जो श्रीकृष्ण का चाचा लगता था। यह श्वफल्क और गाँदिनी का पुत्र था। कंस की आज्ञा से श्रीकृष्ण-बलराम को यही मथुरा बुला ले गया था।**

अक्षयवृक्ष—संज्ञा पु० [सं०] **प्रयाग और गया में बरगद का एक वृक्ष जो प्रलय में भी नष्ट न होने के कारण 'अक्षय' कहलाता है।** उ.—प्रेक्षय बृक्ष बट बढतु निरंतर कहा ब्रज गोकुल गाइ—६४५।

अक्षै—वि० [सं० अक्षय] **जिसका क्षय न हो, कभी न चुकनेवाला।** उ.—हरि-पद-सरन अक्षै फल पावे-१६२४।

अक्षोनि—संज्ञा पु० [सं० अक्षौहिणी] **अक्षौहिणी सेना।**

अखंड—वि० [सं०] (१) **समूचा, पूरा, जो खंडित न हो।** (२) **जिसका क्रम, सिलसिला या धार न टूटे, अटूट।** उ.—सलिल अखंड धार धर टूटत कियौ इंद्र मन सादर। मेघ परस्पर यहै कहत है धोइ करहु गिरि खादर—९४८। (३) **निर्विघ्न।**

अखंडल—वि० [सं० अखंड] (१) **अखंड, अटूट।** (२) **पूरा, सारा।**

अखंडित—वि० [सं०] (१) **भागरहित, अविच्छिन्न।** (२) **संपूर्ण, पूरा।** उ.—(क) सर्वोपरि आनंद अखंडित सूर-मरम लपिटानी—१-८७। (ख) वे हरि सकल ठौर के वासी। पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित पंडित मुनिन बिलासी। (३) **निर्विघ्न, बाधारहित।** (४) **लगातार।**

अक्खर—संज्ञा पु० [सं० अक्षर] **अक्षर।**

अखर्ब—वि० [सं० अ=नहीं+हि० खर्ब= छोटा] **जो छोटा न हो, बड़ा, लंबा।**

अखाद—वि० [सं० अखाद्य] **न खानेयोग्य, अभक्ष्य।** उ.—खाद-अखाद न छाँडै अब लौ, सब मैं साधु कहावै—१-१८६।

अखारा—संज्ञा पु० [सं० अक्षवाट, प्रा० अक्खआडो, हिं० अखाडा] **सभा, दरबार, रंगशाला।** उ.—तहाँ देखि अप्सरा-अखारा। नृपति कछू नहि बचन उचारा—९-४।

अखिल—वि० [सं०] (१) **संपूर्ण, समग्र।** उ.—(क) तुम सर्वज्ञ, सबै बिधि पूरन, अखिल भुवन निज नाथ १-१०३। (ख) तुम हर्त्ता तुम कर्त्ता एकै तुमहौ अखिल भुवन के साँई—२५५८। (२) **सर्वांगपूर्ण, अखंड।** उ.—तुमही ब्रह्म अखिल अबिनासी भक्तन सदा सहाय।

अखीन—वि० [सं० अक्षीण, प्रा० अक्खीण] **स्थिर, नित्य, अक्षीण।**

अखुटित—वि० [सं० अ =नहीं+खुटना=समाप्त होना] **निरंतर, असमाप्त।** उ.—अखुटित रहत सभीत सुसकित सुकृत सब्द नहि पावै—१-४८।

अखूट—वि० [सं० अ=नहीं+खंडन=तोड़ना, खंडित करना] **अखंड, अक्षय, बहुत, अधिक।** उ.—नैना अतिही लोभ भरे। ...... । लूटत रूप अखूट दाम को स्याम बस्य भो मोर। बडे भाग मानी यह जानी इनते कृपिन न और—१८३३।

अखेट—संज्ञा पु० [सं० आखेट] **अहेर, शिकार, मृगया।** उ.—जब अखेट पर इच्छा होइ। तब रथ साजि चलै पुनि सोइ—४-१२।

अखेटक—संज्ञा पु० [सं० आखेटक] **शिकार, अहेर।** उ.—(क) सब दिन याही भाँति बिहाइ। दिन भए, बहुरि अखेटक जाइ—४-१२। (ख) इक दिन ताते अनुज सौ मागी लै गयौ अखेटक राजा—१० उ.—२६।

अखेलत—वि० [सं० अ=नहीं+केलि=खेल] (१) **अचंचल, अलोल।** (२) **आलस्ययुक्त, उनींदा।**

अखै—वि० [सं० अक्षय] **अक्षय, अविनाशी।**

अखोलि—क्रि. वि. [सं. अ = नहीं + हि. खोलना] **कसकर, दृढतापूर्वक।** उ.—रसना जुगल रसनिधि बोलि। कनकबेलि तमाल अरुझी सुभुज बंध अखोलि सा. उ.—५।

अख्यान—संज्ञा पु [स आख्यान] (१) **वर्णन, वृत्तांत।** (२) **कथा, कहानी।**

अग—वि [स.] **न चलनेवाला, अचर, स्थावर।** उ—अग जग जीव जल थल गनत सुनत न सुधि लहौ—१० उ.—२४।

वि [स अज्ञ] **मूढ़ अनजान।**

अगड़—संज्ञा पु. [हिं अकड] **अकड़, ऐंठ।**

अगति—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **दुर्दशा, दुर्गति।** (२) **मृत्यु के पीछे की बुरी दशा, मोक्ष की अप्राप्ति, नरक।** उ.—(क) सूरदास हरि भजौ गर्ब तजि, बिमुख अगति कौ जाही—२-२३। (ख) कहौ तौ लक उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ। कहौ तौ मारि सँहारि निसाचर, रावन करौ अगति कौ—९-८४।

अगतिक—वि० [सं०] **अनाथ, निराश्रित।**

अगतिनि—संज्ञा पु. बहु [स. अगती + नि (हिं. प्रत्य)] **पापी मनुष्य, कुमार्गी व्यक्ति, वे जो मोक्ष के अधिकारी न हों।** उ.—जय जय जय जय माधवबेनी। जग हित प्रगट करी करुनामय, अगतिनि कौ गति दैनी—९-११।

अगती—वि० [स अगति] **कुमार्गी, दुराचारी।**

अगनत, अगनित—वि. [सं. अगणित] (१) **अनगिनती, असंख्य, अनेक, बहुत।** उ.—(क) बदौ चरन-सरोज तिहारे।... जे पद-पदुम रमत बृंदाबन अहि-सिर धरि अगनित रिपु मारे—१-९४। (ख) अगनित गुन हरिनाम तिहारै—१-१५७। (२) **महान, अपार।** उ.—सूरदास प्रभु-अगनित महिमा, भगतनि कै मन भावत—१-१२५।

अगनियां—वि. [सं. अ=नहीं + हिं. गिनना] **अगणित, अनगिनती।** उ.—जेंवत स्याम नद की कनियाँ...... ...। बरी, बरा, बेसन बहु भाँतिन, व्यंजन बिबिध, अगनियाँ—१०-२३८।

अगनू, अगनेउ, अगनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० आग्नेय] **अग्निकोण।**

अगम—वि० [सं० अगम्य] (१) **जहाँ कोई जा न सके। पहुँच के बाहर।** उ.—(क) जीव जल थल जिते, बेष धरि धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल भारे—१ १२०। (ख) देखत बन अति अगम डरौ वै मोहि डरपावै—४३७। (२) **न मिलने योग्य, दुर्लभ।** उ.—भक्त जमुने सुगम, अगम औरै—१-२२२। (३) **अपार, अत्यंत, बहुत।** उ.—समुझि अब निरखि जानकी मोहि। बडौ भाग गुनि, अगम दसानन, सिव बर दीनौ तोहि—९-७७। (४) **न जानने योग्य, बुद्धि से परे, दुर्बोध।** उ०—(क) मन-बानी कौ अगम-अगोचर, जो जानै सो पावे—१-२। (ख) ब्रह्म अगोचर मन-बानी तैं, अगम अनत प्रभाव—२-३४। (५) **अथाह, बहुत गहरा।** उ.—(क) अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम-भार भरत। सूरदास ब्रत यहै, कृष्ण-भजि, भव-जलनिधि उतरत—१-५५। (ख) सूर मरत मीन तुरत मिले अगम पानी—२९५२। (६) **विशाल बड़ा।** उ.—(क) लंका बसत दैत्य अरु दानव उनके अगम सरीर—९-८६। (ख) कैसे बचे अगम तरु के तर मुख चूमति, यह कहि पछितावति—३९०।

संज्ञा पु० [स० आगम] **अवाई, आगमन।** उ.—दादुर मोर कोकिला बोलैं पावस अगम जनावै—२८२५।

अगमति—वि० [स० अगम + अति] **बहुत अधिक, बड़ी।** उ.—आजु हौ राजकाज करि आऊँ। बेगि सँहारौ सकल घोष-सिसु, जौ मुख आयसु पाऊँ। मोहन मुर्छन-बसीकरन पढि, अगमति देह बढाऊँ—१०-४९।

अगमन—क्रि० वि० [सं० अग्रवान] **आगे, पहले, प्रथम।** उ.—सो राजा जो अगमन पहुँचै, सूर सु भवन उताल—१०-२२३।

अगमने, अगमनै—क्रि० वि० [स० अग्रवान, हिं० अगमन] **आगे, आगे से, प्रथम ही।** उ.—(क) इह लै देहु मारि सिर अपने जासो कहत कंत तुम मेरी। सूरदास सो गई अगमने सब सखियन सो हरि मुख हेरी—९०३। (ख) पौढे हुते पर्यंक परम रुचि रुक्मिनि चमर डुलावति तीर। उठि अकुलाइ अगमने लीने मिलत नैन भरि आये नीर—१० उ.—६१। (ग) मोहन बदन बिलोकि थकित भए माई री ये लोचन मेरे। मिलें जाइ अकुलाइ अगमने कहा भयौ जौ घूँघट घेरे—पृ० ३३१।

अगमैया—वि. [सं. अगम्य, हि. अगम] (१) **न जानने योग्य, अगम, गहन।** (२) **अपार, अत्यंत, बहुत।** उ. ब्रज मै को उपज्यौ यह भैया। संग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया —४२८।

अगम्य—वि. [सं.] **न जाने योग्य, गहन।** (२) **अज्ञेय, दुर्बोध।**

अगर—संज्ञा पु. [सं. अगरु] **एक पेड जिसकी लकडी सुगंधित होती है।** उ —वदन अगर सुगंध और घृत, बिधि करि चिता बनायौ—९-४०।

अगरना—क्रि. अ. [सं अग्र] **आगे आगे जाना, बढ़ना।**

अगरी—स्त्री. [सं. अनर्गल] (१) **अनुचित बात, बुरी बात।** (२) **धृष्टतायुक्त बात, अनुचित कथन।** उ.—गेडुरि दई फटकारि कै हरि करत है लँगरी। नित प्रति ऐसेई ढग करै हमसों कहै अगरी—८५८। (३) **असंगत बात।**

अगरु—संज्ञा पु. [सं.] **अगर की लकडी, ऊद।**

अगरे—क्रि. वि. [सं अग्र] **सामने, आगे।**

अगरौ—वि. [सं. अग्र, हिं अगरो] (१) **बढ़कर, श्रेष्ठ, उत्तम।** उ.—(क) हम-तुम सब बैस एक, कातै को अगरौ। लियौ दियौ सोई कछु, डारि देहु झगरौ—१०-३३६। (ख) सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छाँडहु दिए परत नहिं पगरौ। परम मगन ह्वै रही चितै मुख सबते भाग यही कौ अगरौ—पृ. ३३५। (ग) हम तुम एक सम कौन कार्ै अगरौ—१०५६। (२) **अधिक ज्यादा।** उ —जोजन बीस एक अरु अगरो डेरा इहि अनुमान। ब्रजबासी नर नारि पंति नहिं मानो सिंधु समान—६२२।

संज्ञा पु. [सं. आकर=खान, हिं. आगर] (१) **खान, आकर** (२) **समूह, ढेर।** उ.—सूरदास प्रभु सब गुननि अगरौ। और कहूँ जाइ रहे छाँडि ब्रज बगरौ—१०५६।

वि. [सं. आकर=श्रेष्ठ] **चतुर, दक्ष, कुशल।** उ.—सूर स्याम तेरौ अति गुननि माहिं अगरौ। चोली अरु हार तोरि छोरि लियौ सगरौ—१० ३३६।

अगवना—क्रि. अ. [हि. आगे+ना (प्रत्य.)] **किसी काम के लिए प्रस्तुत होना, आगे बढ़ना।**

अगवाई—संज्ञा स्त्री. [सं. अग्र=आगे+आयान=आना] **आगे से जाकर लेना, अभ्यर्थना।**

संज्ञा पु. [सं. अग्रगामी] **आगे चलनेवाला, अगुआ।**

अगवान—संज्ञा पु. [सं. अग्र+वान] **विवाह में बारात का स्वागत करनेवाले कन्या पक्ष के लोग।**

संज्ञा पु. [सं. अग्र+यान] (१) **आगे से जाकर लेना।** (२) **विवाह में बारात का स्वागत करने कन्या पक्षवालों का जाना।**

अगवानी—संज्ञा स्त्री. [सं. अग्र+यान] (१) **आने वाले का आगे पहुँचकर स्वागत करना, पेशवाई।** (२) **आगे चलने की क्रिया।** उ.—पाँच-पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे। सुनी तगीरी, बिसरि गई सुधि मो तजि भए नियारे—१-१४३।

संज्ञा पु. [सं. अग्रगामी] **अगुआ, अग्रसर, पेशवा।** उ.—सखी री पुर बनिता हम जानी। याही तै अनुमान होत है षटपद-से अगवानी—३४०२।

क्रि. अ.—**आगे चली, अग्रगामिनी हुई।** उ०—क्यों करि पावै बिरहिन पारहि बिन केवट अगवानी—२७६१।

अगसार, अगसारी—क्रि. वि. [सं. अग्रसर] **आगे।**

अगस्त्य—संज्ञा पु [सं] (१) **एक ऋषि जो मित्रा वरुण के पुत्र थे। ऋग्वेद में इनकी ऋचाएँ हैं** (२) **एक ऊँचे पेड़ की फली जिसकी तरकारी बनती है।** उ.—फूल करील करी पाकर नम। फली अगस्त्य करी अमृत सम—२३२१।

अगह—वि० [सं० अग्राह्य] (१) **जो पकडी न जा सके, अति चंचल।** उ० —माधौ नैंकु हटको गाइ। भ्रमत निसि-बासर अपथ पथ, अगह गहि नहिं जाइ—१-५६। (२) **जो वर्णन और चिंतन से बाहर हो।** उ०—अगमते अगह अपार आदि अबिगत है सोऊ। आदि निरजन नाम ताहि रजै सब कोऊ—३४४३। (३) **न धारण करने योग्य।** उ०—ऊधौ जो तुम हमहिं बतायौ। ·· ···। जोग जाचना जबहिं अगह गहि तबहीं सौं है ल्यायौ।

अगहर—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० हर (प्रत्य०)] (१) **आगे।** (२) **पहले, प्रथम।**

अगहुँड़—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० हुँड (प्रत्य०)] **अगुआ, आगे चलनेवाला।**

क्रि० वि०—**आगे, आगे की ओर।**

अगा—क्रि० वि० [स० अग्र] **आगे ही, पहले ही, अभी से।** उ०—सोवत कहा चेत रे रावन, अब क्यो खात दगा ? कहति मँदोदरि, सुनु पिय रावन, मेरी बात अगा—९-११४।

अगाउती—क्रि० वि० [स० अग्र] **आगे।**

अगाऊ—वि० [स० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० आऊ (प्रत्य०)] **अगला, आगे का।** उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरबाऊ। धरि बाराह रूप सो मार्‌यौ, लै छिति दत-अगाऊ—१०-२२१।

क्रि० वि०—**आगे, अगाड़ी, पहिले।** उ०—(क) ह्वौ डरपौ, काँपौ अरु रोवौ, कोउ नहिं धीर धराऊ। थरसि गयौं नहिँ भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ—४८१। (ख) प्रीतम हरि हमकौं सिधि पठई आयौ जोग अगाऊ—३११०।

अगाध—वि० [स०] (१) **अथाह, बहुत गहरा।** (२) **जिसका कोई पार न पा सके, जो समझ में न आए. दुर्बोध।** उ०—(क) मनसा और मानसी सेवा दोउ अगाध करि जानौ—१-२११। (ख) ऐसी कहि मोहिं कहा सुनावत तुमकौ यही अगाध—११२७। (ग) सूरज प्रभु गुन अथाह धन्य धन्य श्री प्रियानाह, निगमन कौ अगाध सहसानन नहिँ जानै—२५५७। (घ) केसी अघ पूतना निपाती लीला गुननि अगाध—२९८०। (ङ) रसना रटत सुनत जस स्रवनन इतनी अगम अगाध—२७७८। (३) **अपार, असीम, अत्यंत, बहुत।** उ०—षोडस सहस नारि सँग मोहन कीन्हो सुख अगाध—१८३८।

अगाधा—वि० [सं० अगाध] (१) **अपार, असीम, अत्यंत।** उ०—(क) जननी निरखि चकित रही ठाढी, दपति-रूप अगाधा—७०५। (ख) भृकुटी धनुष नैन सर साधे बदन बिकास अगाधा—१२३४। (२) **जो समझ में न आवे, अद्‌भुत, विचित्र। थाह या अनुमान से परे।** उ०—मोकौ संग बोलि तू लेती करनी करी अगाधा—१४७९।

अगाधो—वि० [सं० अगाध] **अपार, असीम, बहुत।** उ०—(क) करिहै कहा अक्रूर हमारौ देहै प्रान अगाधो—२५०८। (ख) सूरदास राधा बिलपति है हरि कौ रूप अगाधौ—२७५८।

अगान—वि० [सं० अज्ञान] **अनजान।**

अगामै—क्रि० वि० [स० अग्रिम] **आगे।**

अगार—संज्ञा पु० [स० आगार] (१) **घर, निवास-स्थान, धाम।** उ०—दुख आवन कछु अटक न मानत सूनो देखि अगार—२८८८। (२) **राशि, समूह।**

क्रि० वि०—**आगे, पहले।**

अगास—संज्ञा पु० [सं० आकाश] **आकाश।** उ०—का यह सूर अजिर अवनी तनु तजि अगास पिय भवन समैहौ—१२०७।

अगाह—वि० [स० अगाध] (१) **अथाह, गहरा।** (२) **अत्यंत, बहुत।**

क्रि० वि० [हिं० आगे] **आगे से, पहले से।**

अगिआई—क्रि० अ० [स० अग्नि, हिं० अगियाना] **सुलग जाय, बले।** उ०—और कवन अबलन व्रत धार्‌यौ जोग समाधि लगाई। इहि उर आनि रूप देखे की आगि उठै अगिआई—३३४३।

अगिदधा—वि० [सं० अग्नि+दग्ध] **आग से जला हुआ।**

अगिदाह—सज्ञा पु० [स० अग्नि + दाह] **आग में जलाना, भस्म करना।**

अगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] **आग।**

वि० [सं० अ=नहीं+हिं० गिनना] **अगणित अपरिमित।** उ०—साब कौ लक्ष्मण सहित लाए बहुरि दियो दायज अगिन गिनी न जाइ—१० उ. ४६।

अगिनि—सज्ञा स्त्री० [स० अग्नि, हिं० अगिन] **आग।** उ० –अब तुम नाम गहौ मन-नागर। जातै काल-अगिनि तै बाँचौ, सदा रहौ सुखसागर—१-६१।

अगिनित—वि० [सं० अगणित] **अनगिनती, असख्य।** उ०—कटक अगिनित जुर्‌यो, लंक खरभर पर्‌यौ, सूर कौ तेज धर-धूरि-ढाँप्यौ—९,१०६।

अगियाना—क्रि० अ० [सं० अग्नि]। **जल उठना, सुलग जाना।**

अगिलेऊ—वि० [सं० अग्र, हिं० अगला+ऊ (प्रत्य०)] **अगला भी, भावी भी, आगामी भी।** उ०—है पापी

तू पंखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत। ··· ··। सूर स्याम बिनु ब्रज पर बोलत हठि अगिलेऊ जनम बिगारत—२८४६।

अगीठा—सज्ञा पु० [सं० अगीत=आगे, स० अग्र, प्रा० अग्ग+स० इष्ट, प्रा० इट्ठ (प्रत्य०)] **आगे का भाग।**

अगुसरना—क्रि० अ० [स० अग्रसर+ना (प्रत्य०)] **आगे बढ़ना, अग्रसर होना।**

अगूठा—सज्ञा पु० [स० अगूढ] **घेरा।**

अगेह—वि० [स० अ=नहीं+गेह=घर] **जिसका घर न हो, गृहहीन।**

अगोचर—वि० [स०] (१) **इंद्रियाँ जिसका अनुभव न कर सकें, इंद्रियातीत, अव्यक्त।** उ०—मन बानी कौं अगम अगोचर जो जानै सो पावै—१-२। (२) **दिखाई न देना, अदृश्य।** उ०—जब रथ भयौ अदृष्ट अगोचर लोचन अति अकुलात—२५४१।

अगोट—सज्ञा पु० [स० अग्र=हिं० ओट=आड़] (१) **रोक, ओट, आड़।** उ०—नहसुत कील कपाट सुलक्षण दै दृग द्वार अगोट। भीतर भाग कृष्ण भूपति कौ राखि अधर मधु मोट—२२१८। (२) **आश्रय, आधार।**

अगोटना—क्रि० स० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग+हिं० ओट+ना (प्रत्य.)] (१) **रोकना, घेरना।** (२) **पहरे में रखना, बंदी करना।** (३) **छिपाना।**

क्रि० स० [स० अग=शरीर + हिं० ओटना (प्रत्य.)] (१) **अंगीकार करना।** (२) **पसंद करना।**

क्रि० अ०—**रुकना, अड़ना।**

क्रि० स० [स० अगूढ] **चारो ओर से घेरना।**

अगोटी—क्रि० अ० [हिं० अगोटना] **रुकी हुई, फँसी हुई, उलझी हुई।** उ०—दोउ भैया मैया पै माँगत, दै री मैया, माखन-रोटी। सुनत भावती बात सुतनि की, झूठहिं धाम के काम अगोटी—१०-१६५।

अगोरना—क्रि० स० [सं० अग्र=आगे] (१) **बाट जोहना, प्रतीक्षा करना।** (२) **रखवाली करना।** (३) **रोकना, छेकना।**

अगोरि—क्रि० स० [सं० अग्र=आगे, हिं० अगोरना] **रोककर, छेंक कर।** उ.—मेरे नैनन ही सब खोरि। स्याम बदन छबि निरख जु अटके बहुरे नही बहोरि। जो मै कोटि जतन करि राखति घूँघट ओट अगोरि। पृ ३३३।

अगौनी—क्रि० वि० [स० अग्र, प्रा० अग्ग, हिं० अगवानी] **आगे।**

सज्ञा स्त्री —**अगवानी।**

अगौहैं—क्रि० वि० [सं० अग्रमुख] **आगे, आगे की ओर**

अग्नि—सज्ञा स्त्री० [स०] **आग, उष्णता।** उ.—जठर अग्नि कौ ब्यापै ताव—३-१३।

अग्नीध्र—सज्ञा पु० [स०] **स्वयंभू मनु के आत्मज राजा प्रियव्रत का पुत्र।** उ —ब्रह्मा स्वयभुव मनु जायौ। तातै जन्म प्रियव्रत पायौ। प्रियव्रत कै अग्नीध्र सु भयौ—५-२।

अग्यान—वि० [स० अज्ञान] **ज्ञानशून्य, जड़, मूर्ख।** उ —मै अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत माँझ घृत नायौ—१-१५४।

सज्ञा स्त्री०—**मुग्धा नायिका।** उ —हान दिनपति सीस सोभा रंच राजत आज। सूर प्रभु अग्यान मानो छपी उपमा साज—सा० २।

अग्र—संज्ञा पु० [स] **आगे का भाग, सिरा, नोक।** उ —हरि जब हिरन्याच्छ कौं मारयौ। दसन-अग्र पृथ्वी कौ धारयौ—७-२।

क्रि० वि० (१) **आगे।** उ —(क) निधरक भयौ चल्यौ ब्रज आवत अग्र फौजपति मैन—२८१६। (ख) दसनराज जो महारथी सो आवत अग्र अनूप—सा० ८२। (२) **मैं, पर, ऊपर।** उ —(क) बहुत श्रेय पुन कुत अग्र मे नीतन सो रंग सारो—सा० ८३। (क) कुत अग्र गज औ नीकन मे आँपुन ही तै देहै—सा० ९७।

वि० **अगला, प्रथम, श्रेष्ठ, उत्तम।**

क्रि० वि०—(१) **आगे करके, सामने रखकर, ओट लेकर।** उ —मधुकर काके मीत भए। दिवस चारि करि प्रीति सगाई, रस लै अनत भए। डहकत फिरत आपने स्वारथ पाखड अग्र दए। चाड सरे पहिचानत नाहिन प्रीतम करत नए—५१२। (२) **आगे से, पहिले ही से, अभी से।** उ.—याहि मारि तोहिं और बिवाहौं अग्र सोच क्यो मरई—१०-४।

अग्रज—संज्ञा पु० [सं०] (१) **बड़ा भाई। (२) नायक, नेता।**

वि.—श्रेष्ठ, उत्तम।

वि. [स. अग्र=आगे] **अग्रिम, पहला**। उ.—प्रभुजू यो कीन्ही हम खेती।... इंद्रिय मूल किसान, महातृन-अग्रज बीज बई। जन्म-जन्म की विषय-बासना उपजत लता नई—१-१८५।

अघ—संज्ञा पु. [स.] (१) **पाप, पातक, अधर्म।** उ.—प्रतिहि किए अघ भारे—१-२७। (२) **मथुरा के राजा कंस का एक सेनापति अघासुर जो श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया था।** उ.—(क) अघ-अरिष्ट-केसी काली मथि दावानलहि पियौ—१-१२१। (ख) अघ बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि जल तै काढ्यौ काली—२२६७। (ग) नद नहिं निकद कारन अघ सधारन धीर—सा ६३।

अघट—वि. [स. अ=नहीं+घट्=होना] (१) **जो कार्य में परिणत न हो सके।** (२) **दुर्घट, कठिन।** (३) **जो ठीक न घटे, बेमेल, अनुपयुक्त।**

वि. [स. घट्=हिंसा करना] (१) **जो कभी न घटे, अक्षय** (२) **एकरस, स्थिर।** उ—जहँ तहँ मुनिवर निज मर्यादा थापी अघट अपार। (३) **सर्वांगयुक्त, पूर्ण।**

अघट उपमा—संज्ञा स्त्री. [सं. अ=नहीं+घट=घटना कम होना, अघट = जो कम न हो = पूर्ण+उपमा] **अलुप्तोपमा, पूर्णोपमा अलंकार। वह अलंकार जिसमें उपमा के चारो अग उपमान, उपमेय, साधारण धर्म और वाचक शब्द वर्तमान हों।** उ.—सूरस्याम सुजान सुकिया अघट उपमा दाव—सा. १।

अघटित—वि [स.] (१) **जो घटित न हुआ हो।** (२) **जिसका घटना संभव न हो।** (३) **अमिट, अनिवार्य।** (४) **अयोग्य, अनुचित।**

वि. [सं. घट=हिंसा] (१) **न घटने योग्य, बहुत अधिक।** (२) **अभक्ष्य, अखाद्य।** उ.—उदर-अर्थ चोरी हिंसा करि, मित्र बधु सौ लरतौ। रसना-स्वाद सिथिल, लंपट ह्वै अघटित भोजन करतौ—१-२०३।

अघहर—संज्ञा स्त्री. [सं अघ=पाप+हर=हरण करने वाली] **पापों का हरण करनेवाली त्रिवेणी। इसका संक्षिप्त रूप होता है 'वेणी' जिसका दूसरा अर्थ 'केश-पाश' या चोटी होता है।** उ.—अघहर सोहत सुरन समेत। नीतन ते बिछुरो सारंगसुत कुत अग्र ते बदन रेख—सा. ६६।

अघा—संज्ञा पु. [स. अघ] **अघासुर जो मथुरा के राजा कस का सेनापति था और कृष्ण द्वारा मारा गया था।** उ.—अनजानत सब परे अघा मुख-भीतर माही—४३१।

अघाइ—क्रि. अ. [हिं अघाना] **भोजन-पान से तृप्त होती है, छकती है।** उ.—(क) माधौ नैकु हटकौ गाइ... ब्योम, धर, नद सैल, कानन इतै चरि न अघाइ—१-५६। (ख) राजनीति जानौ नही, गोसुत चरवारे। पीवौ छाँछ अघाइ कै, कब के रयवारे—१-२३८।

अघाई—क्रि. अ. [हि. अघाना] **इच्छा पूर्ण हुई, संतुष्ट या तृप्त होता है, मन भरता है।** उ.—(क) जब तै जनम-मरन अंतर हरि, करत न अघहि अघाई—१-१८७। (ख) फिरि दरस करत एही मिसि प्रेम न प्रीति अघाई—१०००।

अघाउँ—क्रि. अ. [हि. अघाना] **तृप्त या संतुष्ट होऊँ।** उ.—ऐसो को दाता है समरथ, जाके दियँ अघाऊँ—१-१६४।

अघाऊँ—क्रि. स. [हि अघाना] **संतुष्ट या तृप्त करूँ, इच्छा पूर्ण करूँ।** उ.—परै भहराय भभकत रिपु घाइ सौ, करि कदन रुधिर भैरो अघाऊँ—६-१२६।

अघाए—क्रि. अ. [हिं अघाना] (१) **भोजन से तृप्त हो गए।** उ.—कौरव काज चले रिषि सापन साक-पत्र सु अघाए—१-२३। (२) **तृप्त हुये** (३) **प्रसन्न हुये।**

अघात—वि. [हिं. अघाना] **पेट भर, खूब, अधिक, बहुत।** उ.—तब उन माँगी इन नहिं दीन्ही, बाढ्यौ बैर अघात।

क्रि. अ [स. आघ्राण=नाक तक, हि. अघाना] **संतुष्ट या तृप्त होता है।** उ.—निपट निसक बिबादति सम्मुख, सुनि सुनि नद रिसात। मोसो कहति कृपन तेरे घर ढोटाहू न अघात—१०-३२६।

संज्ञा पु. [स. आघात] **चोट, मार, प्रहार धक्का।** उ.—दुहुँ कर माट गह्यौ नँदनदन, छिटकि

बूँद-दधि परत अघात। मानौ गज-मुक्ता मरकत पर सोभित सुभग साँवरे गात—१०-१५६।

अघाति—क्रि. अ. [हिं अघाना] **भोजन पान से तृप्त होती है, छकती है।** उ. माधो नैकु हटकौ गाइ······ छुधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम-दलि खाइ—१-५६।

अघाना—क्रि. अ. [स. आघ्राण=नाक तक] (१) **भोजन या पान से तृप्त होना।** (२) **संतुष्ट होना, इच्छा पूर्ण होना।** (३) **प्रसन्न होना।** (४) **थकना, ऊबना।** (५) **पूर्णता को पहुँचना।**

अघाने—क्रि. स. बहु. [हिं. अघाना] **भोजन-पान से तृप्त हुये, छक गए।** उ.—(क) बल-मोहन दोउ जेवत रुचि सौ, सुख लूटति नँदरानी। सूर स्याम अब कहत अघाने, अँचवन माँगत पानी—४४२। (ख) बिस्वभर जगदीस कहावत ते दधि दोना माँझ अघाने—११८७।

अघानौ—क्रि. अ. [हिं. अघाना] (१) **संतुष्ट हुआ, इच्छा पूरी हुई, मन भरा।** उ.—(क) याहीं करत अधीन भयो हौ, निद्रा अति न अघानौ—१-४६। (ख) बहुत प्रपच किए माया के तऊ न अधम अघानौ—१-३२६। (२) **पेट भर गया, छक गया, तृप्त होगया।** उ.—कान्ह कह्यौ हौ मातु अघानौ—३६६।

अघारि—सज्ञा पु, [सं.] **पाप नाश करने वाले।**

अघासुर—सज्ञा पु. [स.] **एक दैत्य जो कस का सेनापति था और जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।**

अघी—वि. [स. अघ=पाप] **पापी, पातकी, कुकर्मी।**

अघैहौ—क्रि. अ. [सं आघ्राण=नाक तक, हि. अघाना] **तृप्त होगे, छक जाओगे।** उ.—भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ। ··· ··· । चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ—१-३३१।

अघोरी—सज्ञा पु. [सं.] **घृणित व्यक्ति।**

वि—**घृणित, घृणा के योग्य।** उ.—जिन हति सकट प्रलंब तृनावृत इद्र प्रतिज्ञा टाली। एते पर नहिं तजत अघोरी कपटी कस कुचाली—२५६७।

अघौघ—संज्ञा पु. [सं.] **पाप-समूह।**

अघ्रानना—संज्ञा पु. [सं आघ्राण] **सूँघना।**

अचंचल—वि. [सं.] **स्थिर, ठहरा हुआ।**

अचंभव—संज्ञा पु. [स. असभव] **अचंभा, आश्चर्य, विस्मय।**

वि.—**आश्चर्यजनक, विस्मयकारी।** उ.- तुम याही बात अचंभव भाषत नाँगी आवहु नारी—८२६।

अचंभित—वि. [हि. अचभा] **चकित, विस्मित।**

सज्ञा—**अचंभा, विस्मय।** उ.—यह मेरे जिय अतिहि अचंभित तौ बिछुरत क्यो एक घरी—२०६२।

अचंभु—संज्ञा पु. [सं. असंभव, हि. अचंभा] **अचंभा, विस्मय।** उ.—देख सखी पँच कमल द्वै संभु। एक कमल ब्रज ऊपर राजत निरखत नैन अचंभु—१६१८ और सा. उ.—४४।

अचंभो, अचंभौ—संज्ञा पु. [हि. अचंभा] **आश्चर्य, विस्मय।** उ—(क) अचभौ इन लोगनि कौ आवै। छाँडे स्याम-नाम-अम्रित-फल, माया-बिष-फल भावै—२-१३। (ख) डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई। नमै धर्म मन बचन काय करि, सिधु अचभौ करई—६-७८। (ग) मोसो कहत तुहूँ नहिं आवै सुनत अचभो पाऊँ री—पृ ३२३। (घ) सोवत थी मै सजनी आज। तब लग सुपन एक यह देखो कहत अचभो साज—सा. ६८।

अचई—क्रि. स. [स. आचमन, हि. अचवना] **पान कर ली, पी ली।** उ.—यह मूरति कबहूँ नहि देखी मेरी अँखियन कछु भूल भई सी। सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौ मनमोहन मोहनी अचई सी—१६८९।

अचक—वि. [स. चक्र=समूह] **भरपूर, पूर्ण।**

सज्ञा पु. [स. चक्=भ्रांत होना] **भौचक्कापन।**

अचकाँ—क्रि. वि. [हिं. अचानक, अचक्का] **सहसा, एकाएक।**

अचगरी—संज्ञा स्त्री. [स. अति, प्रा. अच+करणम्=ज्यादती] **नटखटपन, शरारत, शैतानी, छेड़छाड़।** उ.—(क) सूर स्याम कत करत अचगरी, बार-बार ब्राह्मनहि खिझायौ—१०-२४८। (ख) माखन दधि मेरौ सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही। अब लौ घात परे हौ लालन, तुम्हैं भलै मैं चीन्ही—१०-२६७। (ग) मै बरजे तुम करत अचगरी। उरहन कौं ठाढी रहै सिगरी—३६१। (घ) बहुत अचगरी यहि करि राखी प्रथम मारिहैं याहि—२५७४। (ङ) अचगरी

करि रहे बचन एई कहे डर नही करत सुत अहीर केरे—२६११ ।

अचगरौ—वि. [हि. अचगरी] **नटखट, चंचल, छेड़खानी करनेवाला** । उ.—(क) ऐसौ नाहि अचगरौ मेरौ, कहा बनावति बात—१०-२६० । (ख) जसुमति तेरौ बारौ कान्ह अतिही जु अचगरौ—१०-३३६ ।

अचना—क्रि सं. [स. आचमन] **आचमन करना, पीना** ।

अचपल—वि. [सं] (१) **धीर, गंभीर** । (२) **चंचल शोख** ।

अचपली—सज्ञा स्त्री. [हि. अचपल+ई] **अठखेली, क्रीड़ा** ।

अचभौन,अचभौना—सज्ञा पु. [स. असभव, हि. अचंभा] **आश्चर्यजनक, विस्मयकारक** । उ.—कहा करत तू नद डिठौना । सखी सुनहु री बातैं जैसी करत अतिहि अचभौना—पृ. ३३६ ।

अचमन—संज्ञा पु. [स. आचमन, हि. अचवन] **भोजन के पश्चात हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया** । उ.—भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनिया—१०-२३८ ।

अचर—वि. [स.] **न चलनेवाला, जड़, स्थावर** ।

अचरज—सज्ञा पु. [सं. आश्चर्य, प्रा. अच्चरिय] **आश्चर्य ,अचंभा, विस्मय** । उ.—(क) अविगत, अबिनासी पुरुषोत्तम, हाँकत रथ कैं आन । अचरज कहा पार्थ जौ बेधैं, तीनि लोक इक बान—१-२६६ । (ख) अचरज सुभग बेद जल जातक कलस नील मनि गात—१६१७ । (ग) आजु अली लषि अचरज एक । सुत सुत लखत पिपीपी गोपी सुत सुत बाँधे टेक—सा. ४१ ।

अचरा—संज्ञा पु. [स. अंचल] **अंचल** । उ.—राधे तू अति रग भरीं । मेरे जान मिली मनमोहन अचरा पीक परी—२१०६ ।

अचल—वि. [सं.] (१) **जो न चले, स्थिर, निश्चल** । उ.—जिहिं गोविंद अचल ध्रुव राख्यौ, रविससि किए प्रदच्छिनकारी—१ ३४ । (२) **सदा रहनेवाला, चिरस्थायी** । (३) **ध्रुव, दृढ़,अटल** (४) **जो नष्ट न हो, अटूट, अजेय** ।

संज्ञा पु. [स.] पर्वत, पहाड़ ।

अचलजा—संज्ञा स्त्री [स. अचल=पर्वत+जा=पुत्री] **पार्वती** ।

अचलजापति—सज्ञा पु [सं. अचलजा=पार्वती+पति] **पार्वती के पति शिव** ।

अचलजापति अंग-भूषन—संज्ञा पु. [स. अचलजा-पति=शिव+अंग=शरीर+भूषण=अलंकार] **शिव के शरीर का भूषण, सर्प, शेषनाग** ।

अचलजापति अंग-भूषन भार-हित-हित—सज्ञा पु. [सं. अचलजापति-अग-भूषन=शेष+भार (शेष का भार=पृथ्वी) का हित (पृथ्वी का हित या हितू=इद्र) +हित (इद्र का हितू या प्रिय=मेघ=घन=घनश्याम)] **घनश्याम, कृष्ण** ।

अचला—सज्ञा स्त्री [स.] **पृथ्वी** ।

अचवन—संज्ञा पु. [स. आचमन] (१) **आचमन या पान की क्रिया** । (२) **भोजन के बाद हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना** ।

अचवना—क्रि. स [सं आचमन] (१) **आचमन या पान की क्रिया** । (२) **भोजन के बाद हाथ मुँह धोने और कुल्ली करने की क्रिया** । (३) **पचाने की क्रिया, हजम कर जाना** ।

अचवाई—वि. [हि अचवना] **स्वच्छ, निर्मल** ।

अचवाना—क्रि स [स. आचमन] (१) **आचमन कराना, पिलाना** । (२) **भोजन के बाद हाथ मुँह धुलाकर कुल्ली कराना** ।

अचवाहीं—क्रि. स [स आचमन, हि. अचवना] **आचमन करते हैं, पीते हैं, पान करते हैं** । उ.—रुक्मिनि चलहु जनमभूमि जाही । जदपि तुम्हारो हतो द्वारका मथुरा के सम नाही । यमुना के तट गाय चरावत अमृत जल अचवाही—१० उ–१०४ ।

अचवो—क्रि स [स॰ आचमन, हिं अचवना] **पान करूँ, रस चखूँ** । उ—सुनहु सूर अधरन रस अँचवो दुहुँ मन तृषा बुझाऊँगो—१६४४ ।

अचाक,अचाका—क्रि वि. [स. आ=अच्छी तरह+चक्र =भ्राति] **अचानक, सहसा** ।

अचान—क्रि. वि. [सं आ + चक् अथवा सं अज्ञान] **सहसा, अकस्मात** ।

अचानक—क्रि. वि [सं आ=अच्छी तरह+चक्=

भाति, अथवा सं. अज्ञानात्] बिना पूर्व सूचना के, एकबारगी, सहसा, अकस्मात। उ.— (क) बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि करि जतन उड़ात। परे अचानक त्यो रस-लपट, तनु तजि जमपुर जात— २-२४। (ख) नृपति ऋजाति अचानक आयौ। सुक सुना कौ दरसन पायौ—६-१७४। (ग) बटाऊ होहिं न काके मीत। सग रहत सिर मेलि ठगौरी हरत अचानक चीत—२७३०।

अचार—संज्ञा पु. [फा] नमक, मिर्च, राई आदि मसाले मिलाकर तेल, सिरके आदि में कुछ दिन रखकर खट्टे किए हुए फल या तरकारी। उ.—आपर बरी मल्लार परम सुचि— २३२१।

अचारी—वि. [स. आचारी] आचार-विचार से रहने वाला।

अचाह—सज्ञा स्त्री [स अ=नहीं + चाह = इच्छा] अनिच्छा, अप्रीति, अरुचि।

अचाहा—वि [सं अ + चाह = इच्छा, अचाह] अप्रिय, अरुचिकर, अप्रीतिपात्र।

अचिंत—वि. [स.] चिंतारहित, निश्चिंत।

अचीता—वि [स. अचिंतित] असंभावित, आकस्मिक। वि [स. अचित] निश्चिंत, चिंतारहित।

अचूक—वि. [सं अच्युत] (१) जो (वार आदि) खाली न जाय, जो निर्दिष्टकार्य अवश्य करे। (२) जिसका वार खाली न जाय, अति कुशल। उ०—एहि बन मोर नहीं ए काम बान। बिरह खेद धनु पुहुप भृंगु गुन करिल तरैया रिपु समान। लयौ घेरि मनो मृग चहुँ दिसि तै अचूक अहेरी, नहिं अजान— ८८३८। (३) ठीक, निश्चित, पक्का।

क्रि. वि – (१) कौशल से। (२) निश्चय, अवश्य।

अचेत—वि [सं] (१) बेसुध, मूर्छित, संज्ञाशून्य। उ.— पौढ़े कहा समर-सेज्या सुन, उठि किन उत्तर देत। थकित भए कछु मंत्र न फुरई कीन्हे मोह अचेत— १-२६। (२) व्याकुल, विकल। (३) असावधान। (४) अनजान, नासमझ, अज्ञान। उ.— सूर सकल लागत ऐसी यह सो दुख कासौं कहिये। ज्यों अचेत बालक की बेदन अपने ही तन सहियें— १४४२। (५) मूढ़, मूर्ख। उ.— (क) ऐसो प्रभु छाँड़ि क्यो भटकै, अजहूँ चेति अचेत— १-२९६। (ख) कुँअर जल लोचन भरि भरि लेत। बालक बदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचेत— ३४६। (६) जड़। उ.—आपुन तरि तरि औरन तारत असम अचेत प्रकट पानी मै बनचर लै लै डारत—९-१२३

अचै—क्रि. स. [स. आचमन, हि अचवना] पीकर, पान करके। उ.— (क) कालीदह जल अचै गए मरि तब तुम लिये जिवाय— ९८६। (ख) मोहन माँग्यौ अपनौ रूप। यहि ब्रज बसत अचै तुम बैठी ता बिन तहाँ निरूप।

अचैन—सज्ञा पु. [सं. अ = नहीं + शयन = सोना, आराम करना] व्याकुलता, दुख।

वि.— व्याकुल, विकल। उ.—ससि पावस कपित के बिच मूँद राखे नैन। सह सिकारी नाग मनसिज सखिन वोर (ओर) अचैन — सा. ६२।

अचोना—संज्ञा पु० [सं० आचमन] पीने का बरतन, कटोरा।

अच्छ—वि. [सं.] स्वच्छ, निर्मल। उ.—सारँग पच्छ अच्छ सिर ऊपर मुष सारंग सुष नीके—सा० १००।

संज्ञा पु० [सं. अक्ष] (१) आँख। (२) अक्षकुमार जो रावण का पुत्र था और हनुमान द्वारा मारा गया था।

अच्छत—संज्ञा पु. [सं० अक्षत] बिना टूटा चावल जो मंगल-द्रव्य माना गया है। उ.—अच्छत दूब लिये रिषि ठाढे, बारनि बंदनवार बँधाई—१०-१९।

वि०—अखंडित, निरन्तर।

अच्छर—संज्ञा पु० [सं० अक्षर] अक्षर, वर्ण।

अच्छरा, अच्छरी—संज्ञा स्त्री० [सं. अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा।

अच्छि—सज्ञा पु. [सं. अक्ष] आँख, नेत्र। उ.—अछ बिघ के षरक फरकत अच्छि चारो ओर—सा०३४।

अच्छोत—वि [सं० अक्षत, प्रा, अच्छत] पूरा, अधिक, बहुत। उ.—वृषभ धर्म पृथ्वी सो गाइ। वृषभ कह्यौ तासौं या भाइ। मेरे हेत दुखी तू होत। कै अधर्म्म तुम अच्छोत (कै अधर्म तो ऊपर होत)—१-२९०।

अछौहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] **चतुरंगिनी सेना जिसमें १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे।**

अच्युत—वि० [सं.] **स्थिर, नित्य, अविनाशी।** उ०—(क) अच्युत रहे सदा जल-साई। परमानंद परम सुखदाई—१०-३। (ख) सूरज प्रभु अच्युत ब्रजमंडल, घरहीं घर लागे सुख देनु—४३८।

संज्ञा पु. [सं०] **विष्णु और उनके अवतारों का नाम।**

अछक—वि० [सं० चष्, प्रा० चक, छक] **अतृप्त, भूखा।**

अछकना—क्रि० वि० [सं० अ=नहीं+चष्=खाना] **अतृप्त रहना, न अघाना।**

अछत—संज्ञा पु [सं अक्षत, हिं० अच्छत] **अक्षत, देवताओं पर चढ़ाने के अक्षत।** उ.—मेरे कहैं बिप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ, बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ। अछत-दूब दल बँधाइ, लालन की गाँठि जुराइ, इहै मोहिं लाहौ नैननि दिखरावौ—१०-९५।

क्रि० वि० [अ० क्रि० 'अछना' का कृदन्त रूप] **रहते हुए, विद्यमानता में, सम्मुख।** उ०—(क) माता अछत छीर बिन सुत मरै, अजा कठ-कुच सेइ—१-२००। (ख) ता रावन के अछत अछयसुत सहित सैन संहारी—९-१००। (ग) कुँवर सबै घेरि फेरे फेरत छुड़त नाहिने गुपाल। बलैं अछत छलबल करि सूरदास प्रभु हाल—१०उ०—६। (२) **सिवाय, अतिरिक्त।**

क्रि० वि० [सं. अ=नहीं+अस्ति, प्रा० अच्छाइ = है] **न रहते हुए, अनुपस्थित।**

अछन—संज्ञा पु. [सं. अ=नहीं+क्षण] **दीर्घकाल, चिरकाल।**

क्रि० वि०— **धीरे धीरे, ठहर ठहर कर।**

अछना—क्रि० अ० [सं० अस्, प्रा० अच्छ=होना] **विद्यमान रहना।**

अछय—वि० [सं० अक्षय] **जिसका अंत न हो, जो समाप्त न हो।** उ०—करषत सभा द्रुपद-तनया को अंबर अछय कियौ—१-१२१।

वि० [सं० अ=नहीं+छद=छिपना] **प्रकट, प्रत्यक्ष।**

अछयकुँवर, अछयकुमार—संज्ञा पु. [सं० अक्षकुमार, हिं० अक्षयकुमार] **रावण का एक पुत्र जो लंका का प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा गया था।**

अछरा, अछरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] **अप्सरा।**

अछवाना—क्रि० स० [सं० अच्छ=साफ] **सँवारना।**

अछाम—वि० [सं० अक्षाम्] (१) **बड़ा, भारी।** (२) **हृष्टपुष्ट, बली।**

अछूता—वि० [सं० अ=नहीं+छुप्त=छुआ हुआ, प्रा० अछुत्त] (१) **जो छुआ न गया हो, अस्पृष्ट।** (२) **जो काम में न लाया गया हो, कोरा।**

अछूते—वि० बहु० [सं० अ=नहीं+छुप्त=छुआ हुआ], **जो काम में न लाए गए हों, नए, कोरे।** उ.—मेरे घर को द्वार, सखी री, तबलौं देखति रहियौ। दधि-माखन द्वै माट अछूतें तौंहिं सौंपति हौं सहियौ—१०-३१३।

अछेद—वि० [सं० अच्छेद्य] **जिसका छेदन न हो सके, अभेद्य, अखंड्य।** उ.—(क) अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान—३-१३। (ख) इह अछेद अभेद अबिनासी। सर्ब गति अरु सर्व उदासी—१२-४।

संज्ञा पुं०—**अभेद, छलछिद्र का अभाव।**

अछेव—वि० [सं० अच्छेद्य या अछिद्र] **निर्दोष।**

अछेह—वि० [सं० अछेद्य] (१) **निरंतर, लगातार।** (२) **बहुत अधिक।**

अछोभ—वि० [सं० अक्षोभ] (१) **गंभीर, शांत।** (२) **मोह-मायारहित।** (३) **निडर।**

अछोह—संज्ञा पु० [सं० अक्षोभ, प्रा० अच्छोह] (१) **शांति, स्थिरता।** (२) **दयाहीनता, निर्दयता।**

अज—वि. [सं.] **अजन्मा, जन्म-बंधन- रहित, स्वयंभू।** उ०—अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमैं-मरै न सोइ—२-३६।

क्रि. वि. [सं. अद्य, प्रा. अज्ज] **अब, अभी तक।**

अजगर—संज्ञा पु. [सं.] **बहुत मोटा साँप जो बकरी और हिरन तक निगल जाता है। यह जंतु स्थूलता**

और निरुद्यमता के लिए प्रसिद्ध है। उ०—अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरै। अनायास बिनु उद्यम कीन्हे, अजगर उदर भरै—१-१०५।

अजगरी—संज्ञा स्त्री. [सं. अजगरीय] बिना परिश्रम की जीविका।

अजगुत—संज्ञा पु [स. अयुक्त, पु हिं. अजुगुति] (१) अचंभे की बात, असाधारण व्यापार, अप्राकृतिक घटना। उ०—(क) गोपाल सबनि प्यारो, ताकौ तै कीन्हौ प्रहारौ जाकौ है मोहूँ कौ गारो, अजगुत कियतौ—३७३। (ख) स्वान सँग सिंहिनि रति अजगुत बेद बिरुद्ध असुर करै आइ—१० उ—१०। (२) अनुचित बात, बेजोड़ प्रसंग या व्यापार। उ.—(क) सरबस लूटि हमारौ लीनौ राज कूबरी पावै। तापर एक सुनौ री अजगुत लिख लिख जोग पठावै—३०६६। (ख) द्विज बेगि धावहु कहि पठावहु द्वारकाते जाइ। कुदनपुर एक होत अजगुत बाघ घेरी गाइ—१०उ०—१३।

वि.—आश्चर्यजनक, अद्भुत, बेजोड़। उ०—(क) पापी जाउ जीभ गलि तेरी अजगुत (अजुगुत) बात बिचारी। सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै हौं। समरथ की नारी—६-७६। (ख) रगभूमि मुष्टिक चनूर हति भुजबल तार बजाए। नगर नारि देहिं गारि कंस कौ अजगुत युद्ध बनाए—२६२२।

अजन—वि. [सं.] जन्मरहित, जन्म-बंधन-मुक्त, स्वयंभू। उ०—(क) सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ—१०-४। (ख) शंख, चक्र, गदा, पद्म, चतुर्भुज अजन जन्म लै आयौ।

वि. [स.] निर्जन, सुनसान।

अजन्म—वि. [सं. अजन्मा] जन्म-बंधन से रहित, अनादि, नित्य। उ०—आतम, अजन्म सदा अबिनासी। ताकौं देह मोह-बड फाँसी—५-४।

अजन्मा—वि. [स.] जन्मरहित, अनादि, नित्य।

अजपा—वि. [स.] (१) जिसका उच्चारण न किया जाय। (२) जो न जपे या भजे।

संज्ञा पु.—उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिकों का मंत्र। उ०—षटदल अष्ट द्वादस दल निर्मल-अजपा जाप-जपाली। त्रिकुटी संगम ब्रह्मद्वार भिद यौं मिलिहै बनमाली।

अजभष—संज्ञा पु. [सं. अजा=बकरी+भक्ष्य=भोजन] बकरी का भक्षण या भोजन, पत्ता, पत्र। 'पत्र' का दूसरा अर्थ चिट्ठी भी होता है। उ०—कबै द्रग भर देखबो जू सबो दुख बिसराइ। अजाभष्र की हान हमको अधिक ससि मुख चाइ—सा. २२।

अजय—वि. [सं. अजेय] जो जीता न जा सके।

अजयारिपु—संज्ञा स्त्री. [सं. अजया=भाँग=भंग+रिपु=शत्रु] भंग का शत्रु, उद्दीपन, उत्तेजना। उ०—घट-कध अधर मिलाप उर पर अजयारिपु की घोर। सूर अबलान मरत ज्यावो मिलो नंद किशोर—सा. उ.—४७।

अजर—वि. [सं. अ=नहीं+जरा=बुढ़ापा] (१) जो बूढ़ा न हो, (२) जो सदा एकरस रहे, ईश्वर का एक विशेषण।

अजरायल—वि. [सं अजर] अमिट, चिरस्थायी, पक्का। उ०—दिनाचारी मे सब मिटि जैहैं। स्यामरंग अजरायल रैहै—१४८८।

वि. [स. अ=नहीं+ दर=भय] निर्भय, निशंक।

अजरावन—वि. [स. अजर] जो सदा एकरस रहे, ईश्वर का एक विशेषण। उ०—जसुमति धनि यह कोखि, जहाँ रहे बावन रे। भले सु दिन भयौ पूत, अमर अजरावन रे—१०-२८।

अजरूढ़—वि. [स. अज=भेंडा+सं. आरूढ=सवार] (१) बकरे पर सवार। (२) भेड़े पर सवार। उ.—असुर अजरूढ होइ गदा मारे फटकि स्याम अंग लागि सो गिरै ऐसे। बाल के हाथ ते कमल अमलनाल-जुत लागि गजराज तन गिरत जैसे—१० उ० -३१।

अजवाइन—सज्ञा स्त्री. [स. यवनिका, हि. अजवायन] एक तरह का मसाला, अजवायन, यवानी। उ०—(क) हींग, मिरच पीपरि अजवाइन ये सब बनिज कहावै—११०८। (ख) रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैधौ मिलाइ धरि—२३२१।

अजस—सज्ञा पु. [स. अयश] (१) अपयश, अपकीर्ति। (२) निंदा। (३) अपकार, बुराई। उ.—पावँ अवार सुधारि रमापति अजस करत जस पायौ—१-१८८।

अजहूँ, अजहूँ—क्रि. वि. [सं. अद्य, प्रा. अज्ज, हिं. अज+हूँ (प्रत्य.)] **अब, अब भी, अभी तक**। उ—(क) अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत अबिचल राज करै—१-३७। (ख) रे मन, अजहूँ क्यो न सम्हारे—१-६३। (ग) मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी। किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी—१०-१७५। (घ) मानिनि अजहूँ मान बिसारो—सा० २०।

अजा—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) **बकरी**। (२) **शक्ति, दुर्गा**।

अजाचक—संज्ञा पु. [सं. अयाचक] **न माँगनेवाला आदमी, संपन्न व्यक्ति**।

वि०—**जो न माँगे, भरा-पुरा, संपन्न**।

अजाची—वि० [सं. अयाचिन्, हिं. अयाची,] **जिसे माँगने की आवश्यकता न हो, धन- धान्य से पूर्ण, भरा -पुरा**। उ०—बिप्रसुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि—१-१८ और १ १३५। (ख) अब तुन मोकौं करौ अजाची जो कहुँ कर न पसारौं—१०-३७।

अजाति, अजाती—संज्ञा पु. [सं. अजाति] **जाति रहित**। उ०—सूरदास प्रभु महाभक्ति तैं जाति अजातिहिं साजै—१-३६।

अजाद—वि. [फ. आजाद] **स्वतंत्र, स्वाधीन**। उ.—हमैं नँदनंदन मोल लिये। जमके फद काटि मुकराये, अभय अजाद किये—१-१७१।

अजान—वि. [स. अ=नहीं+ज्ञान, प्रा. ज्जान] (१) **अनजान, अबोध, नासमझ**। उ.—सिव ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु हौ अजान नहिं जानौ—१-११। (ख) इहाँ नाहिंन नंदकुमार। इहै जानि अजान मघवा करी गोकुल आर—२८३१। (२) **अपरिचित, अज्ञात**।

संज्ञा पुं.—(१) **अज्ञानता**। (२) **एक पेड़ जिसके नीचे जाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है**।

क्रि. वि.—**अनजान स्थिति में, अज्ञानतावश**। उ—ज्ञान अजान नाम जो लेइ हरि बैकुंठ-बास तिहि देइ—६-४।

अजामिल, अजामीज़—सज्ञा पु. [सं.] **पुराणानुसार जीवन भर पाप कर्मों में ही लिप्त रहनेवाला एक पापी ब्राह्मण। मरते समय यमदूतों का भयानक रूप देख कर इसने अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लिया और अनजान में ही इस प्रकार ईश्वर का नाम लेने से तर गया**।

अजित—वि. [सं.] **अपराजित, जो जीता न गया हो**। उ०—इद्री अजित, बुद्धि बिषयारत, मन की दिन-दिन उलटी चाल—१-१२७। (ख) पौरुषरहित, अजित इंद्रिनि बस, ज्यौं गज पक परयौ—१-२०१।

संज्ञा पु० [सं] **विष्णु**। उ.—तुम प्रभु अजित, अनादि, लोकपति, हौ अजान मतिहीन—१-१८१।

अजितेंद्रि—वि० [सं० अजितेंद्रिय] **जो इंद्रियों को जीत न सका हो, विषयासक्त, इंद्रयलोलुप**। उ.—पाइ सुधि मोहिनी की सदासिव चले, जाइ भगवान सौ कहि सुनाई। असुर अजितेंद्रि जिहि देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई—८-१०।

अजिर—संज्ञा पु० [सं] **आँगन, सहन**। उ—धरे निसान अजिर गृह मंडल, बिप्र बेद-अभिषेक करायौ—९-२५।

अजीरन—संज्ञा पु [स० अजीर्ण] (१) **अजीर्ण, अपच, अध्यसन**। उ.—अब यह बिरह अजीरन ह्वैकै बमि लाग्यो दुख दैन। सूर बैद ब्रजनाथ मधुपुरी काहि पठाऊँ लैन—२७६५।

(२) **अधिकता, बहुतायत**।

वि०—**जो पुराना न हो, नया**।

अजुगुत—संज्ञा पु० [सं० अयुक्त, पु० हिं० अजुगुति, हिं० अजुगुत] **अयुक्त बात, अनुचित बात**।

वि०—**आश्चर्यजनक, अनुचित**। उ.—पापी, जाउ, जीभ गरि तेरी,अजुगुत बात बिचारी। सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै, हौ समरथ की नारी—९-७९।

अजूरा—वि० [सं० अ+युज् =जोड़ना] **अप्राप्त, पृथक्**।

अजूह—सज्ञा पु० [स० युद्ध, प्रा० जुज्झ] **युद्ध**।

अजेइ, अजेय—वि. [सं. अ=नहीं+जेय] **जो जीता न जा सके**।

अजोग—वि० [सं० अयोग्य] (१) **जो योग्य न हो, अनुचित**। (२) **बेजोड़, बेमेल**।

अजोध्या—सज्ञा पु० [सं० अयोध्या] **सूर्यवंशी राजाओं**

को पुरानो राजधानी जो सरयू के किनारे बसी थी। इसकी गिनती सप्त पुरियों में है।

अजोरि—क्रि० सं० [हिं० अँजोरना] **छीनना, हरण करना।** उ०—(क) सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि चित-चिंतामनि लियौ अजोरि—११८५। (ख) बुधि-बिवेक बल बचन चातुरी पहिलेहि लई अजोरि—पृ० ३३३।"

अजोरी—वि० स्त्री० [हिं० अँजोरना] **छीनकर, हरण करके।** उ०—(क) राधा सहित चंद्रावलि दौरी। औचक लीनी पीत पिछौरी। देखत ही लै गई अजोरी। डारि गई सिर स्याम ठगोरी—२४५४। (ख) सूरस्याम भए निडर तबहिं ते गोरस लेत अजोरी—१४७२।

अजौं, अजौ—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज, हिं आज] **अब भी, अब तक, अद्यापि।** उ०—बालक अजौ अजान न जानै, केतिक दह्यो लुटायौ—३५६।

अज्ञ—वि० [सं०] **अनजान, नादान।** उ०—खेलत स्याम पौरि कै बाहर, ब्रज लरिका सग जोरी। तैसेई आपु तैसेई लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी—१०-२५३।

अज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] **मूर्खता, नासमझी।**

अज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] **आज्ञा।**

अज्ञाकारी—वि० [सं० आज्ञाकारिन्, हिं० आज्ञाकारी] **आज्ञाकारी, आज्ञापालक।** उ०—तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी। जिनकै बस अनिमिष अनेक जन अनुचर अज्ञाकारी—१-१६३।

अज्ञात—वि० [सं०] (१) **अविदित, अपरिचित।** (२) **जिसे ज्ञात न हो।**

क्रि० वि०—**बिना जाने, अनजाने में।**

अज्ञान—संज्ञा पु० [सं०] (१) **जड़ता, मूर्खता, अविद्या, मोह।** (२) **अविवेक।**

वि०—**ज्ञानशून्य, मूर्ख, जड़, अनजान।** उ०—मै अज्ञान कछू नहिं समुझ्यो, परि दुख-पुंज सह्यौ—१-४६।

अज्ञानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] **जड़ता, मूर्खता।**

अज्ञानी—वि० [सं०] **ज्ञानशून्य, अबोध, अनजान।**

अज्ञेय—वि० [सं०] **जो समझ में न आए, ज्ञानातीत, बोधागम्य।**

अझोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दोल=झूलना] **कपड़े की लंबी थैली, झोली।**

अटक—संज्ञा० पु० [सं० अ=नहीं+टिक्=चलना अथवा सं० आ+टक=बंधन] (१) **रोक, रुकावट, विघ्न, अड़चन, व्याघात।** उ०—(क) घाट-बाट कहुँ अटक होइ नहिं सब कोउ देहिं निबाहि—१-३१०। (ख) अब लौं सकुच अटक रही अब प्रगट करौ अनुराग री—८८०। (ग) जैसे तैसे ब्रज पहिचानत। अटक रही अटकर करि आनत—१०५०। (घ) लोचन मधुप अटक नहिं मानत जद्यपि जतन करौ—१२०५। (ङ) सोषति तनु सेज सूर चले न चपल प्रान। दच्छिन रवि अवधि अटक इतनी जिय आन—२७४३। (च) गह्यो कर स्याम भुजमल्ल अपने धाइ झटकि लीन्हो तुरत पटकि धरनी। भटक अति सब्द भयौ खुटक नृप के हिये, अटक प्रानन परयौ चटक करनी—२६०१। (छ) अब सखि नींदौ तो गई। भागी जिय अपमान जानि जनु सकुचनि ओट लई। अति रिस अहनिसि कत किए बस आगम अटक दई—२७६१। (२) **अकाज, हर्ज, बड़ी आवश्यकता।** उ.—(क) गैयनि भई बड़ी अबार, भरि भरि पय थननि भार, बछरा गन करै पुकार तुम बिनु जदुराई। तातैं यह अटक परी, दुहन काज सौंह करी आवहु उठ क्यो न हरी, बोलत बल-भाई—६१६। (ख) ह्याँ ऊधौ काहे कौ आए कौन सी अटक परी—३३४६। (३) **संकोच।** उ०—नितही झगरत है मनमोहन देखि प्रेमरस-चाखी। सूरदास प्रभु अटक न मानत, ग्वाल सबै हैं साखी—७७४।

अटकना—क्रि० अ० [सं० अ=नहीं+टिक्=चलना] (१) **ठहरना, अड़ना।** (२) **फँसना, उलझना।** (३) **प्रीति करना।** (४) **झगड़ना।**

अटकर—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्=घूमना+कल्=गिनना, हिं० अटकल] **अनुमान, कल्पना, अटकल।** उ०—जैसे तैसे ब्रज पहिचानत। अटक रही अटकर करि आनत—१०५०।

अटकरना—क्रि० स० [हिं० अटकर, अटकल] **अनुमानना, अटकल लगाना।**

अटकरि—क्रि० स० [हिं० अटकरना] **अटकल लगाकर, अनुमान करके।** उ०—बार-बार राधा पछितानी। निकसे स्याम सदन ते मेरे इन अटकरि पहिचानी।

अटकल—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्=घूमना+कल्=गिनना] **अनुमान, कल्पना।**

अटकलना—क्रि० स० [सं० अट्+कल्] **अनुमान लगाना, कल्पना करना।**

अटकाइ—क्रि० स० [हिं अटकाना] **रोक लिया, ठहराकर।** उ०—एक बार माखन के काजे राखे मैं अटकाइ—२७०४।

अटकाई—क्रि० स० [हिं० अटकाना] **फँसाना, उलझाना।** उ०—जबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई। जुवती गईं घरनि सब अपनै, गृह-कारज जननी अटकाई—३८३।

अटकाइ—क्रि० स० [हिं० अटकाना] **फँसा लिया, उलझाया।** उ०—(क) मनि आभरन डार डारन प्रति देखत छबि मन ही अटकाए—८२२। (ख) लोचन भृंग को सरस पागे। स्याम कमल-पदसौं अनुरागे......। गए तबहिं ते फेरि न आए। सूर स्याम बेगहिं अटकाए—पृ० ३२५।

अटकायौ—क्रि० स० [हिं० अटकाना] **टाँगा, लटकाया।** उ०—लियो उपरना छीनि दूरी डारनि अटकायं—११२४।

अटकाव—संज्ञा पु० [हि० अटक] **रुकावट, प्रतिबंध, अड़चन, बाधा।**

अटकावहु—क्रि० स० [हिं० अटकाना] **अटकाते या ठहराते हो, रोकते या अड़ाते हो, बाँधते हो।** उ०—कैसे लै नोई पग बाँधत, लै गैया अटकावहु—४०१।

अटकावै—क्रि. स. [हि. अटकाना] **रोकता है, ठहराता है।** उ०—सो प्रभु दधिदानी कहवावै। गोपिन कौ मारग अटकावै—११८६।

अटकि—क्रि. अ. [हिं. अटकना] **अटककर, टिककर, ठहरकर।** उ०—स्याम-कर मुरली अतिहिं बिराजति ....। ग्रीव नवाइ अटकि बसी पर कोटि मदन-छबि लाजति—६४५। (२) **उलझकर, फँसकर।** उ०—मुकुट लटकि अरु भृकुटी मटक देखौ कुंडल की चटक सौं अटकि परी दृगनि लपट—८३६।

अटकी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. अटकना। **रुकी, ठहरी अड़ी।** उ०—ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यो पानी। देह गेह की सुधि नहि काहू हरषति कोउ पछितानी—६४४। (२) **उलझी, प्रीति में फँसी।** उ०—देखी हरि राधा उत अटकी। चितै रही इकटक हरि ही तन ना जाइयै (जानियं ?) कौन अँग अटकी—१३०१।

संज्ञा पु. [हि. अटक] **गरजमंद।** उ०—ऐसी कहौ बनिज को अटकी। मुख-मुख हेरि तरुनि मुसुकानी नैन सैन दै दै सब मटकी—११०५।

अटके—क्रि. अ. [हि. अटकना] (१) **रुके, ठहरे, अड़े।** उ—घर पहुँच अबही नहि कोई। मारग म अटके सब लोई—१०३६। (२) **फँस गए, उलझे, चिपटे हैं।** उ०—(क) लोचन भए स्याम के चर। .... ललित त्रिभंगी छबि पर अटके फटके मोसा तारि—पृ० ३२२। (ख) छूटत नहीं प्रान क्यौं अटके कठिन प्रम को फाँसो—३४०६। (३) **प्रीति से फँसे, प्रम करने लगे, पग गए।** उ०—तुमहिं दियौ बहराइ इतै को वे कुबिजा सौं अटके—३१०७। (ख) सूर स्याम सुन्दर रस अटके हैं मनो उहँहि छएरी—सा० उ०—७। (४) **झगड़ने लगे।**

अटकैं—क्रि. अ. [हि. अटकना] **फँसे रहकर, उलझकर।** उ०—जनम सिरानौ अटक अटकैं। राज-काज, सुत बित की डोरी, बिनु बिवेक फिर्यौ फटकें—१ २९२।

अटकै—क्रि० अ० [हि० अकटना] **रोकने से, मना करनेसे, ठहरने से।** उ०—नैना न रहं री मरे अटक—पृ० २३६।

अटक्यौ—क्रि० अ० [हि० अटकना] (१) **झगड़ पड़ा, लड़ा, जूझा।** उ०—अब गजराज ग्राह सौं अटक्यौ, बली बहुत दुख पायौ। नाम लेत ताही छिन हरि जू, गरुड़हि छाँड़ि छुडायौ—१-३२। (२) **अकाज हुआ, आवश्यकता पड़ी, हर्ज हुआ।** उ०—अति आतुर नृप मोहि बुलायौ। कौन काज ऐसौ अटक्यौ है, मन मन सोच बढायौ—२४६५। (३) **फँसा, उलझा, रम गया।** उ०—(क) कहा करौं चित चरन अटक्यौ सुधा-रस कैं चाइ—३-३। (ख) सूर-

दास प्रभु सौ मन अटक्यौ देह गेह की सुधि बिसराई—८७८। (ग) तनु लीन्हे डालत फिरै रसना अटक्यौ जस—११७७।

अटखट—वि० [अनु०] **टूटा फूटा।**

अटत—क्रि० अ० [सं. अट्, हिं० अटना] **घूमते फिरते हैं।** उ०—जीव जल-थल जिते, बेष धरि धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल भारे—१-१२०।

अटन, अटनि—संज्ञा पु० [सं०] **घूमने फिरने की क्रिया, यात्रा, भ्रमण।**

संज्ञा स्त्री. बहु. [सं. अट्ट=अटारी, हिं. अटा] **अटारियाँ, कोठे, छतें।** उ०—(क) सखी री वह देखौ रथ जात। कमलनैन काँधे पर न्यारो पीत बसन फहरात। लई ग्राइ जब ओर अटन की चीर न रहत कृष गात—२५३६। (ख) ऊँच अटन पर छत्रन की छबि सीसन मानो फूली—२५६१। (ग) ऊँचे अटनि छाज की सोभा सीस उचाइ निहारी—२५६२।

अटना—क्रि. अ. [सं अट्, हिं. अटन] **(१) घूमना-फिरना, (२) यात्रा करना।**

क्रि. अ. [सं. उट = घास-फूस, हिं. ओट] **आड़ करना, घेरना।**

अटपट—वि. [सं. अट्=चलना+पट=गिरना] **(१) ऊटपटाँग, उल्टा सीधा, बेठिकाने।** उ.—अटपट आसन बैठि कै, गो-धन कर लीन्हौ—४०६। **(२) टेढ़ा, विकट, कठिन, अनोखा। (३) गूढ़, जटिल। (४) गिरता-पड़ता, लड़खड़ाता।**

अटपटात—क्रि. अ. [हिं. अटपट, अटपटाना] **(१) घबड़ाकर, अटककर, लड़खड़ाकर।** उ०—(क) स्याम करन माता सौ झगरो, अटपटात कलबल करि बोल—१०६४। (ख) कबहुँ जम्हात कबहुँ अँग मोरत अटपटात मुख बात न आवै, रैनि कहूँ धौं थाके—२०८२। सूच्छम चरन चलावत बल करि। अटपटात कर देति सुंदरी, उठत तबै सुजतन तन-मन-धरि—१०-१२०। **(२) हिचकिचाकर, संकोचकरके।**

अटपटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. अटपट] **नटखटी, अनरीति** उ०—(क) कर हरि सौ सनेह मन साँचो। निपट कपट की छाँड़ि अटपटी, इंद्रिय बस राखहि किन पाँचौ—१-८३ (ख) सूधे दान काहे न लेत। और अटपटी छाँडि नदसुत रहहु कँपावत बेत—१०३६।

वि.—। **(१) अनरीतियुत, अनुचित, नटखटपन से भरी हुई।** उ०—मधुकर छाँड़ि अटपटी बातें—३०२४। **(२) लड़खड़ाती हुई, गिरती-पड़ती।** उ.—छाँड़ि देहु तुम लाल मटपटी यहि गति मद मराल—१०-२२३।

अटपटे—वि. [सं. अट्=चलना+पट्=गिरना (अटपट)] **(१) गिरते पड़ते, लड़खड़ाते।** उ.—निरतत लाल ललित मोहन, पग परत अटपटे भू मैं—१०-१४७। **(२) ऊटपटाँग, अंडबंड, उलटासीधा, बेठिकाने।** उ.—आए हो सुरति किए ठाठ करख लिए सकसकी धकधकी हिये। छूटे बन्धन अरु पाग का बाँधनि छुटी लटपटे पेच अटपटे दिये—२००६।

अटपटो—वि. [स. अटपट] **गूढ़, जटिल, गहरा, अनोखा।** उ.— राखो सब इह योग अटपटो ऊधौ पाइ परौं—३०२७।

अटल—वि. [सं. अ=नहीं+टल्=चंचल होना] **(१) जो न टले, स्थिर, दृढ़।** उ.—(क) पतितपावन जानि सरन आयौ। उदधि संसार सुभ नाम-नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ—१-११६। **(२) जो सदा बना रहे, नित्य, चिरस्थायी।** उ.—(क) दास ध्रुव कौं अटल पद दियौ, राम-दरबारी—१-१७६। (ख) बौरे मन, रहन अटल करि जान्यौं—१-३१६। **(३) ध्रुव, पक्का। (४) जिसका घटना निश्चय हो, अवश्यंभावी** उ.—चिरंजीवि सीता तरुवर तर अटल न कबहूँ टरई—६-६६।

अटा— संज्ञा स्त्री. [सं. अट्ट=अटारी] **अटारी, कोठा, छत,।** उ.- - (क) नँदनंदन को रूप निहारत अहनिसि अटा चढी—२७६४। (ख) बिधि कुलाल कीन्हे काचे घट ते तुम आनि पकाए। ······। याते गरे न नैन मेह है अवधि अटा पर छाए—३१६१

अटारी—सज्ञा स्त्री० [सं. अटाली=कोठा] **मकान के ऊपर की कोठरी या छत।** उ.—तुम्हरेहिँ तेज-प्रताप रही बिच, तुम्हरी यहै अटारी—६-१००।

अठंग—सज्ञा पुं. [स. अष्टाग] **अष्टांग योगी।**

अठ—वि. [स. अष्ट, प्रा. अट्ठ] **आठ।**

अठई—संज्ञा स्त्री० [स. अष्टमी] **अष्टमी तिथि।**

अठपाव—संज्ञा पु. [सं. अष्टपाद, पा. अट्ठपाद, प्रा. अट्ठपाव] **उपद्रव, उधम।**

अठलाना—क्रि. अ. [हि. ऐंठ+लाना] **(१) इतराना, ठसक दिखाना। (२) चोचले करना, नखरा दिखाना। (३) उन्मत्त होना, मस्ती दिखाना। (४) किसी को छेड़कर अनजान बनना।**

अठवना—क्रि. अ. [सं. स्थान, पा. ठान=ठहराव] **जमना, ठनना।**

अठाई—वि. [स. अस्थायी] **उपद्रवी, उत्पाती।**

अठास—संज्ञा पु. [अ=नहीं+हि. ठानना] **(१) अयोग्य कर्म। (२) बैर, शत्रुता, झगड़ा।**

अठाना—क्रि. स. [स. अट्ट=वध करना] **सताना, पीड़ित करना।**

क्रि. स. [स. स्थान=स्थिति, ठहराव ठानना, प्रा. ठान] **ठानना, छेड़ना।**

अठारह—वि. [स. अष्टादश, पा. अट्ठादस, प्रा. अट्ठारस] **दस और आठ मिलने से बनी हुई संख्या।**

संज्ञा पु.—**(१) काव्य में पुराण सूचक संकेत या शब्द।** उ.—ढारि पासा साधु-सगति केरि रसना हारि। दाँव अबकै परयौ पूरो कुमति पिछली हारि। राखि सत्रह सुनि अठारह चोर पाँचौं मार। **(२) चौसर का एक दाँव, पासे की एक संख्या।**

अठासी—वि. [स. अष्टासीति, प्रा. अट्ठासीइ, अप. अट्ठासि] **अस्सी और आठ की संख्या।**

अठिलात—क्रि. अ. [हिं. अठलाना (=ऐंठ+लाना)] **ऐंठते हो, इतराते हो, ठसक दिखाते हो।** उ.—(क) नद दोहाई देत कहा तुम कस दोहाई। काहे को अठिलात कान्ह छाँड़ौ लरिकाई—पृ. २३५। (ख) बात कहत अठिलात जाति सब हँसत देति कर तारि। सूर कहा ये हमको जानैं छाछिहि बेचनहारि—१०९६।

अठिलाना—क्रि अ. [हिं. अठलाना] **(१) इतराना, ठसक दिखाना। (२) चोचले दिखाना।**

अठिलानी—क्रि. वि. [हिं. अठलाना] **मदोन्मत्त होती हुई, इठलाई हुई।** उ.—सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरुणी डोलति अठिलानी—१०५७।

अठोठ—संज्ञा पु. [हि. ठाट] **आडम्बर, पाखण्ड, ठाट,**

अड़ार—वि. [स. अराल] **टेढ़ा, तिरछा।**

अडारना—क्रि. स [हि. डालना] **डालना, देना।**

अडारी—क्रि. अ. [सं. अल्=वारण करना, हि. अड़ना] **रुके, अड़े, अटके, ठहरे।** उ.—सहि न सकत अति विरह त्रास तन आग सलाकनि जारी। ज्यो जल थाके मीन कहा करे तेउ हगि मेल अडारी—सा. उ. ३५ और ३२४६।

अडिग—वि. [स अ=नहीं=हि डिगना] **जो न डिगे, निश्चल, स्थिर।**

अडीठ—वि. [स. अदृष्ट, या अदिष्ट प्रा. अडिट्ठ] **जो दिखाई न पड़े, लुप्त।**

अडोल—वि. [सं अ=नहीं+हिं डोलना] **(१) जो हिले नहीं, अटल। (२) स्तब्ध, ठकमारा।**

अड़ना—क्रि. अ. [सं अल्=वारण करना] **(१) रुकना, अटकना, फँसना। (२) हठ करना, टेक बाँधना।**

अड़ाना—क्रि. स. [हि. अड़ना] **(१) रोकना, अटकाना, फँसाना। (२) टेकना।**

अड़े—क्रि. अ [हिं अड़ना] **अटक गए फँस गए।** उ.—इह उर माखन चोर गड़े। अब कैसे निकसत सुन ऊधो तिरछे ह्वै जो अड़े—३१५१।

अढुक—संज्ञा पु. [देश.] **चोट, ठोकर।**

अढुकना—क्रि. अ. [स. आ=अच्छी तरह+टक्=बंधन=रोक, हि. अढुक] **(१) ठोकर खाना, चोट खाना। (२) सहारा लेना, टेकना।**

अढ़वना—क्रि. स [आ+ज्ञा=बोध कराना, आज्ञापनं, या अभ्भापनं, प्रा आणवनं] **आज्ञा देना, काम में लगाना।**

अतंक—संज्ञा पुं. [स. आतंक] **भय, शंका।** उ.—जब तै तृनावर्त्त ब्रज आयौ, तब तै मो जिय संक। नैननि ओट होत पल एकौ, मै मन भरति अतक—६०५।

अतंद्रिक, अतंद्रित—वि. [स.] **(१) आलस्यरहित, चंचल। (२) व्याकुल।**

अतदगुन—संज्ञा पु. [अतद्गुण] **एक अलंकार जिसमें एक वस्तु का अपने निकट की वस्तु के गुण को ग्रहण न करना दिखाया जाय।** उ.—आजु रन कोप्यौ

भीमकुमार।……। बैठे जदपि जुधिष्ठिर सामे सुनत सिखाई बात। भयौ अतदगुन सूर सरस बढ़ बली बीर बिख्यात सा. ७४।

अतनु—वि. [सं.] (१) बिना शरीर का। (२) मोटा। संज्ञा पुं.—अनंग, कामदेव।

अतरौटा—संज्ञा पु. [स. अन्तर+पट] देखिए अँतरौटा।

अतर्क्य—वि. [सं] जिस पर तर्क-वितर्क न हो सके, अचिंत्य।

अतवान—वि. [सं. अतिवान्] अधिक, अत्यंत।

अतसी—संज्ञा स्त्री. [सं] अलसी जिसके फूल नीले और बहुत सुन्दर होते हैं। उ.—(क) स्यामा स्याम सुभग जमुना-जल निर्भ्रम करत विहार। ……। अतसी कुसुम कलेवर बूँदें प्रतिबिंबित निरधार—१८४७। (ख) आवत बन ते साँझ देखे मैं गायन माँझ काहू के ढोटा री एक सीस मोरपखियाँ। अतसी कुसुम जैसे चचल दीरघ नैन मानों रसभरी जो लरति युगल अँखियाँ—२३६६।

अतापी—वि [स.] दुखरहित

अति—वि. [स.] (१) बहुत, अधिक। उ.—देखत नंद कान्ह अति सोवत। भूखे भए आजु बन भीतर, यह कहि कहि मुख जोवत—५१६। (२) ऊपर सा, छोटा। उ.—सूर स्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाई—५१०। (३) जरूरी, आवश्यक। उ—यह कालीदह के फूल मँगाए, पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हौ। यह कहियौ ब्रज जाइ नद सौं कसराज अति काज मँगायौ—५२३

संज्ञा स्त्री—अधिकता, सीमा का उल्लंघन।

अतिउक्त—संज्ञा स्त्री. [सं. अत्युक्ति] एक अलंकार जिसमें गुणों का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर अतथ्य वर्णन किया जाता है। उ.—सेस ना कहि सकत सोभा जान जो अतिउक्त। कहै बाचिक बाचते हे कहा सूर अनुक्त—सा. ६३

अतिक—वि. [सं. अति] बहुत, अधिक, तीव्र, अत्यंत। उ.—अति आतुर आरोधि अतिक दुख तोहिं कहा डर तिंन यम कालहिं—८९८।

अतिगत—वि. [स.] बहुत, अधिक, अत्यंत।

अतिगति—संज्ञा स्त्री [स.] उत्तम गति, मोक्ष।

अतिथि—संज्ञा पुं. [सं.] अभ्यागत, मेहमान, पाहुन।

अतिबल—वि. [सं.] प्रचंड, बली।

अतिवृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं] छः ईतियों में से एक जिसमें पानी बहुत बरसता है। उ.—सब यादव मिलि हरि सौं इह कह्यौ सुफलक सुन जहँ होइ। अनावृष्टि अतिवृष्टि होत नहिं इह जानत सब कोइ—१० उ.—२७।

अतिसय—वि. [स. अतिशय] बहुत, अत्यंत, अधिक। उ.—चित चकोर-गति करि अतिसय रति, तजि स्रम सघन बिषय लोभा—१-६६।

अतिसै—वि. [स. अतिशय] बहुत, अत्यंत। उ.—कह्यौ हरि कैं भय रवि-ससि फिरैं। बायु बेग अतिसै नहिं करै—३-१३।

अतीत—वि. [स.] (१) गत, व्यतीत, भूत। (२) निर्लेप, असंग, विरक्त।

क्रि. वि.—परे, बाहर। उ.—गुन अतीत, अबिगत, न जनावै। जस अपार, सुत पार न पावै—१०-३।

संज्ञा पुं.—(१) संन्यासी, विरक्त। (२) संगीत में 'सम' से दो मात्राओं के उपरांत आनेवाला स्थान। उ.—बंसी री बन कान्ह बजावत। ……। सुर सुंद्रि तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत—६४८।

अतीतना—क्रि. अ. [स. अतीत] बीतना, गत होना। क्रि. स—(१) बिताना। (२) छोड़ना, त्यागना।

अतीथ—संज्ञा पुं. [स. अतिथि] अभ्यागत, पाहुन।

अतीव—वि. [स०] बहुत अधिक, अत्यंत।

अतुराइ, अतुराई—क्रि. वि. [हि. अतुराना] (१) घबड़ाकर, आकुल होकर। उ.—(क) तुरत जाइ लै आउ उहाँ तैं, बिलँब न करि मो भाई। सूरदास प्रभु बचन सुनत ही हनुमत चल्यौ अतुराई ६-१०९। (ख) वाको सावधान करि पठयौ चली आपु जल कौं अतुराई—१०-८५१। (२) हड़बड़ाकर, जल्दी करके। उ.—चलौ सखी, हमहूँ मिलि जैऐ, नैकु करौ अतुराई—१०-२२। (ख) कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम करहु अतुराई—१०-७५७।

अतुरात—क्रि. अ. [हि. अतुराना] आतुर होता है, घबड़ाता है। उ.—(क) तुरत ही तोरि, गनि, कोरि

सकटनि ओरि, ठाढे भए पैरिया तब सुनाए। सुनत यह बात, अतुरात और डरत मन, महल तें निकसि नृप आपु आए—५८४। (ख) एक एक पल युग सबनं कौं मिलन को अतुरात—२६५५।

अतुराना—क्रि. अ. [स. आतुर] **आतुर होना, घबड़ाना, अकुलाना।**

अतुरानी—क्रि. अ. स्त्री [हिं. अतुराना] **घबड़ा गई, हड़बड़ाई, अकुलाई, जल्दी मँचाने लगी।** उ.—(क) सुनत बात यह सखी अतुरानी—८४७। (ख) सूर स्याम सुखधाम, राधा है जाहि नाम, आतुर पिय जानि गवन प्यारी अतुरानी। (ग) सूर स्याम सुख धाम जानि कै दरसन को अतुरानी-१८८८।

अतुराने—क्रि. अ. [हिं. अतुराना] **आतुर हुए, हड़बड़ाकर, घबड़ाकर।** उ.-(क) कर सौं ठोकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठ अतुराने-१०-१२७। (ख) बालक बछरा धेनु सबै मन अतिहिं सकाने। अंधकार मिटि गयौ देखि जहँ तहँ अतुराने-४३२। धेनु रहीं बन भूलि कहूँ ह्वै बालक, भ्रमत न पाए। यातैं स्याम अतिहिं अतुराने, तुरत तहाँ उठि धाए-४३६।

अतुल—वि. [सं.] (१) **अमित, असीम, अपार।** उ.—कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरही—६-६१। (२) **अनुपम, अद्वितीय।**

अतुलित—वि. [स.] (१) **अपार, बहुत, अधिक।** (२) **असंख्य, अनगिनती।** (३) **अनुपम, अद्वितीय।**

अत्र—क्रि. वि. [सं.] **यहाँ, इस स्थान पर।**

संज्ञा पुं. [स. अस्त्र] **अस्त्र।**

अत्रि—संज्ञा पु. [सं.] **सप्तऋषियों में से एक जिनकी गिनती दस प्रजापतियों में है। ये ब्रह्मा के पुत्र थे; अनुसूया इनकी स्त्री थी जिससे तीन पुत्र हुए—दत्तात्रेय दुर्वासा और सोम।**

अतूथ—वि. [सं. अति=अधिक+उत्थ=उठा हुआ] **अपूर्व।**

अतोर—वि. [सं. अ=नहीं+हिं. तोड] **जो न टूटे, दृढ।**

अत्त, अत्ति—संज्ञा स्त्री. [स. अति] **अति, अधिकता।**

अथना—क्रि. अ. [सं. अस्त+ना (प्रत्य.)] **अस्त होना, डूबना।**

अथवत—क्रि. अ. [हिं. अथवना] **अस्त होने पर, डूबने पर।** उ. भृंग मिले भारजा बिछुरी जोरी कोक मिले उतरी पनच अब काम के कमान की। अथवत आए गृह बहुरि उवत भान उठो प्राननाथ महा जान मनि जानकी—१६०१।

अथवना—क्रि. अ. [सं. अस्तमन=डूबना, प्रा. अत्थवन] (१) **अस्त होना, डूबना।** (२) **लुप्त होना, नष्ट होना, चला जाना।**

अथवा—अव्य. [स.] **वियोजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है, जहाँ कई शब्दों या पदोंमें से केवल एक को ग्रहण करना हो। या, वा, किंवा।** उ. जंघनि कौं कदली सम जानै। अथवा कनक खंभ सम मानै—३-१३।

अथाई—संज्ञा स्त्री [सं. स्थायि=जगह, पा. ठानीय प्रा. ठाइअ] (१) **बैठक, चौबारा।** (२) **गाँवों में पंचायत की जगह।** (३) **सभा, दरबार।**

अथान, अथाना—संज्ञा पुं [स स्थाणु=स्थिर] **अचार।**

अथाना—क्रि अ [सं. अस्तमन, प्रा. अत्थवन, हिं. अथवना] **डूबना, अस्त होना।**

क्रि. स. [सं. स्थान=जगह] (१) **थाह लेना, गहराई नापना।** (२) **ढूँढना, छानना।**

अथानो—संज्ञा पु. [सं. स्थाणु=स्थिर, हिं, अथान, अथाना] **अचार।** उ.—निबुआ, सूरन, आम, अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी—१०-२४१।

अथावत—वि. [स अस्तमित=डूबा हुआ. प्रा. उत्थवन हि. अथाना] **अस्त, डूबा हुआ।**

अथाह—वि [स. अ=नहीं + स्था=ठहरना, अथवा अगाध] (१) **बहुत गहरा, अगाध।** उ.—मन-कूल-दोष अथाह तरंगिनि, तरि नहिं सक्यौ, समायौ। मेल्यौ जाल काल जब खैंच्यो, भयौ मीन जल-हायौ—१-६७। (२) **अपरिमित, अपार, बहुत अधिक।** उ.—(क) सूरज-प्रभु गुन अथाह धन्य धन्य श्री प्रियानाह निगमन को अगाध सहसानन नहिं जानै—२५५७। (ख) बिरह अथाह होत निसि हमकौं बिनु हरि समुद समानी—२७९६। (३) **गंभीर, गूढ़।**

संज्ञा पु—(१) **गहराई, जलाशय।** (२) **समुद्र।**

अथाहु—वि. [हिं. अथाह।] (१) **जिसकी थाह न हो,**

जिसकी गहराई का अंत न हो, अगाध। उ.—तुम जानकी जनकपुर जाहु। कहा आनि हम सग भरमिहौ गहवर बन दुख-सिंधु अथाहु—९-२३। (२) अपरिमित, बहुत अधिक।

अथिर—वि. [सं. अस्थिर] (१) जो स्थिर न हो, चंचल। (२) अस्थायी, क्षणिक।

अथोर—वि [वि. सं. अ=नहीं + सं. स्तोक, पा. थोक, प्रा. थोअ=हिं. थोड़ा] जो थोड़ा न हो, अधिक, बहुत। उ.—नीति बिन बलवान सीषत नीक जानन जोर। काज आपन समुझ के किन करै आप अथोर-सा. ६१।

अदंक—संज्ञा पु. [सं. आतंक] डर, भय, त्रास।

अदंड—वि. [सं.] (१) जो दंड के योग्य न हो। (२) निर्भय, स्वेच्छाचारी।

अदंभ—वि. [सं. अ=नहीं=दंभ] (१) दंभरहित, निष्कपट। (२) प्राकृतिक, स्वच्छ।

अदग—वि. [सं. अदग्ध, पा. अदग्ध] (१) निष्कलंक शुद्ध। (२) निरपराध। (३) अछूता, साफ, बचा हुआ।

अदभुत—वि. [सं. अद्‌भुत] विलक्षण, विचित्र, अनूठा, अपूर्व। उ.—(क) अदभुत राम नाम के अंक—१-९०। (ख) देखौ यह बिपरीत भई। अदभुत रूप नारि इक आई, कपट हेत क्यों सहै दई—१०-५३। (ग) ये अदभुत कहिबे न जोग जुग देखत ही बनि आवै—सा ४। (घ) गृह तै चली गोप कुमारि। बरक ठाढो देख अदभुत एक अनूपम मार—सा.१४।

अदभ्र—वि. [सं.] (१) बहुत, अधिक। (२) अपार, अनंत।

अदरख—संज्ञा पु. [सं आर्द्रक, फा. अदरक] अदरक।

अदल—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती।

अदलपति—संज्ञा पु. [सं. अदल=पार्वती+पति] पार्वती के पति शिव,।

अदलपति-रिपु-पिता-पतिनी—संज्ञा स्त्री [सं अदलपति=शिव + रिपु (शिव का शत्रु=काम=प्रद्युम्न)+पिता (प्रद्युम्न का पिता=कृष्ण) + पत्नी (कृष्ण की पत्नी=यमुना)] यमुना। उ.—अदलपति-रिपु-पिता-पतिनी अब न जहं फेर—सा. ११६।

अदाई—वि. [सं] चतुर, काइयाँ, चालबाज, निर्दयी। उ.—सेवत सगुन स्याम सुन्दर को लही मुक्ति हम चारी। हम सालोक्य सरूप, सरोज्यो रहत समीप सहाई। सो तजि कहत और की औरै तुम अलि बड़े अदाई—३२९०।

अदात—वि. [सं. अदाता] जो दानी न हो, जिसने कुछ दिया न हो, कृपण। उ.—हरि को मिलन सुदामा आयो। ...... । पूरब जनम अदात जानिकै तातै कछु मँगायो। मूठिक तंदुल बाँधि कृष्ण को बनिता बिनय पठायो—१० उ.—६५।

अदाता—संज्ञा पु. [सं.] न देनेवाला, कृपण व्यक्ति। वि.—जो न दे, कृपण।

अदान—सं. पु. [सं. अ=नहीं + दान] न देनेवाला, कृपण व्यक्ति।

वि. [अ. अ=नहीं + फ़ा दाना=जाननेवाला] नासमझ।

अदानी—वि. [सं. अ=नहीं + दानी] जो दान न दे, अदाता।

अदावँ—संज्ञा पु. [सं. अ=नहीं + दाम=रस्सी या बंधन] कठिनाई, असमंजस।

अदिति—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रजापति की पुत्री जो कश्यप ऋषि की पत्नी और सूर्य आदि तेंतीस देवताओं की माता थी।

अदितिसुत—संज्ञा पु. [सं.] दक्ष की कन्या के गर्भ से उत्पन्न तेंतीस देवता।

अदिन—संज्ञा पु. [सं. अ=नहीं + दिन] कुदिन, कुसमय, दुर्भाग्य।

अदिष्टी—वि. [सं. अ=नहीं + दृष्टि=विचार (अथवा अदृष्ट=भाग्य)] (१) मूर्ख, अदूरदर्शी। (२) अभागा।

अदीठ—वि. [सं. अदृष्ट, प्रा. अदिट्ठ] बिना देखा हुआ, अनदेखा, गुप्त।

अदीह—वि. [सं. अ=नहीं + सं. दीर्घ, या दीघ, प्रा. दीह] जो बड़ा न हो, छोटा।

अदुंद—वि. [सं. अद्वंद्व, प्रा. अदुंद] (१) द्वंद्वरहित। (२) शांत। (३) अद्वितीय।

अदृश्य—वि. [सं.] (१) जो दिखाई न दे। (२)

जिसका ज्ञान इंद्रियों को न हो, अगोचर। (३) अंतर्द्धान, लुप्त।

अदृष्ट—संज्ञा पु. [सं.] भाग्य प्रारब्ध, भावी। उ.—काका नाम बताऊँ तोकों। दुखदायक अदृष्ट मम मोकों—१-२६०।

वि. [सं.] (१) न देखा हुआ, अलक्षित। (२) लुप्त, ओझल, अंतर्द्धान। उ.—(क) बछरा भए-अदृष्ट कहूँ खोजत नहि पाए—४६२। (ख) उ.—जब रथ भयौ अदृष्ट अगोचर लोचन अति अकुलात-२८६१।

अदेस—संज्ञा पु. [सं. आदेश=आज्ञा, शिक्षा] (१) आज्ञा, शिक्षा। (२) प्रणाम।

अदोखित—वि. [स. अदोष] निर्दोष, अकलंक।

अदोस—वि. [सं. अदोष (अ=नहीं)] निर्दोष, निष्कलंक, दूषणहीन उ.—चंपकली सी नासिका राजत अमल अदोस—२०६५।

अद्भुत—वि. [सं.] आश्चर्यजनक, विचित्र, अनोखा, अनूठा। उ.-रूप मोहिनी धरि ब्रज आई। अद्भुत साजि सिंगार मनोहर, असुर कंस दै पान पठाई—१०-१०।

अध—अव्य. [सं अध] नीचे, तले। उ.—उर-कलिंद तै धँसि जल-धारा उदर धरनि परवाह। जाहि चली धारा ह्वै अध कौं नाभी-ह्रद अवगाह—६३७।

वि. [सं. अर्द्ध, प्रा. अद्ध] आधा, अर्द्ध। उ.—(क) तामैं एक छबीली सारँग अध सारँग उनहारि। अध सारँग परि सकलई सारंग अध सारँग बिचारि—सा. उ.-२। भादौं की अधराति अँध्यारी—१०-११।

अधकैया—वि. [सं. अधिक] अधिक, बहुत। उ.—जेंवत रुचि अधिको अधिकैया—२३२१।

अधघट—[सं. अर्द्ध=आधा+हिं. घटना=पूरा उतरना] जिसका ठीक अर्थ न निकले, अटपटा।

अधजेवँत—वि. [सं. अर्द्ध=जेवना] जिसने पेट भर खाया न हो, अधखाया। उ.—सूर-स्याम बलराम प्रातहीं अधजेंवत उठि धाए—४५४।

अधपर—संज्ञा पु. सवि. [सं. अर्द्ध, प्रा. अद्ध, हिं. अध=आधा+र (प्रत्य.)] आधे मार्ग में, बीच ही में। उ.—हम सब गर्व गँवारि जानि जड़ अध पर छाँड़ि दई—३३०४।

अधपैया—संज्ञा पु [सं. अर्द्ध=आधा+पग] पैर के अगले भाग पर।

अधम—वि. [स.] (१) पापी, दुष्ट, उ.—(क) अब मोसौं अलसात जात हौ। अधम-उधारनहारे हो—१-२५। (ख) अध कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनौ—१-६५। (२) नीच, निकृष्ट, बुरा। उ.—कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन-पद-परतगी। सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि गरजत अधम अनंगी—१-२१।

अधमई—संज्ञा स्त्री. [सं. अधम+हिं. ई (प्रत्य.)] नीचता, अधमता, खोटापन। उ.—(क) औरनि कौं जम कैं अनुसासन किंकर कोटिक धावैं। सुनि मेरी अपराध-अधमई, कोऊ निकट न आवैं—१-१९७। (ख) सूरस्याम अधमई हमहिं सब, लागै तुमहिं भलाई—१०४६।

अधमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] खोटापन, नीचता।

अधमाई—संज्ञा स्त्री. [सं. अधम] अधमता, नीचता। उ.-(क) हुती जिती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी—१-१३०। (ख) अधम की जो देखौ अध-माई। सुनु त्रिभुवन-पति, नाथ हमारे, तो कछु कह्यौ न जाई—१-१८६। (ग) नैना लुब्धे रूप को अपने सुख माई।......मन इंद्री तहाँई गए कीन्ही अध-माई—पृ० ३२३।

अधमुख—संज्ञा पु. [सं० अधोमुख=नीचे की ओर मुँह किए] मुँह या सिर के बल, औंधा। उ:-स्याम भुजनि की सुंदरताई।......।बड़े बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई। मनौ भुजंग गगन तैं उतरत अधमुख रह्यौ झुलाई—६२१।

अधर—संज्ञा पु [सं.] (१) नीचे का ओठ। (२) ओठ।

संज्ञा पु. [सं. अ=नहीं+धृ=धरना] अंतरिक्ष, आकाश।

वि.—(१) चंचल, जो पकड़ा न जा सके। (२) नीच, बुरा।

अधरम—सं. पु. [सं. अधरम] पाप, असद्व्यवहार, अन्याय, कुकर्म।

अधरात—संज्ञा. [सं. अर्द्ध=आधा+रात्रि] आधी रात (क)। उ.-(क) उर पर देखियत ससि सात। सोवत

हुती कुँवरि राधिका चौंकि परी अधरात—सा. उ. । २६ । (ख) तब व्रज बसत बेंनु रव धुनि करि बन बोली अधरातनि—३०९५ ।

अधरैं—संज्ञा पु. सवि. [सं. अधर+ऐं (प्रत्य)] **अधर पर, ओठ पर** । उ.—भालै जावक रंग बनानी अधरैं अंजन परगट जानी—१६६७ ।

अधर्म—संज्ञा [पु.] **पाप, पातक, अन्याय, दुराचार,** ।

अधर्मी, अधर्मिन—संज्ञा पु. [सं. अधर्मी] **पापी** । उ.—नैन-अमीन, अधर्मिन कैं बस, जहँ कौ तहाँ छयौ—१-६४ ।

अधार—संज्ञा पु. [सं. आधार] **आश्रय, सहारा, अवलंब** । उ.—(क) एक अधार साधु-संगति कौ, रचि पचि मति सँचरी । याहूँ सौंज संजि नहिं राखी, अपनी धरनि धरी—१-१३० । (ख) दीनदयाल, अधार सबनि के परम सुजान, अखिल अधिकारी—१-२१२ । (ग) अबऊ अधार जु प्रान रहत हैं, इन बसहिन मिलि कठिन ठई री—२७८१ । (२) **पात्र** । उ.—हरि परीच्छितहिं गर्भ-मँझार । राखि लियौ निज कृपा-अधार—१-२८६ ।

अधारा—संज्ञा पु. [सं. आधार] **आश्रय, सहारा, अवलंब** । यौ.—प्रानअधारा—**प्रान के अधार, परम प्रिय** । उ.—ताते मैं पाती लिखी तुम प्रानअधारा—१०उ. ८ ।

अधारी—संज्ञा स्त्री. [सं. आधार] (१) **आश्रय, अवलंब** । (२) **काठ के डंडे में जड़ा हुआ साधुओं का पीढ़ा** । उ-(क) अब यह ज्ञान सिखावन आए भस्म अधारी सेव—२६८३ । (ख) सृङ्गी भस्म अधारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए—३०६० । (ग) दंड कमंडलु भस्म अधारी तौ युवतिन कहूँ दीजै—३११७ । (घ) सींगी मुद्रा भस्म अधारी हमको कहा सिखावत—३२१८ । (३) **यात्रियों के सामान का झोला** ।

वि. स्त्री—**सहारा देनेवाली, प्रिय, भली** ।

अधारो, अधारौ—संज्ञा पु. [सं. आधार] **आश्रय, सहारा, आधार** । उ.—नमता-घटा, मोह की बूँदै, सरिता मैन अपारौ । बूडत कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट-अधारौ—१-२०६ ।

यौ.—प्रानअधारो—**प्राण का आधार, प्राणप्रिय** । उ.—सूरदास प्रभु तिहारे मिलन कौ भक्तन प्रानअधारो—पृ. ३५१ ।

अधावट—वि. पु. [सं. अर्द्ध=आधा+आवर्त=चक्कर] **औटाने पर गाढ़ा होकर आधा रह जानेवाला** । उ.—खोवामय मधुर मिठाई । सो देखत अति रुचि पाई । कछु बलदाऊ कौं दीजै । अरु दूध अधावट पीजै—१०-१८३ ।

अधिक—वि. [सं०] (१) **बहुत, विशेष** । (२), **अतिरिक्त** ।

क्रि. वि.—**तेज** । उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५ ।

अधिकइयै—वि. [हिं. अधिक] **ज्यादा** ।

क्रि. सं—[हिं. अधिकाना] **बढ़ाइए** ।

अधिकई—वि [सं. अधिक] **अधिकता से, बहुत अधिक** । उ.—करत भोजन अति अधिकई भुजा सहस पसारि—६२६ ।

अधिकाई—संज्ञा स्त्री. [सं. अधिक + हिं. आई (प्रत्य.)] (१) **अधिकता, विशेषता, बढ़ती** । (२) **बड़ाई, महिमा, महत्व** । उ.—(क) स्रवनिन की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावै—२-७ । (ख) देखौ काम प्रताप अधिकाई । कियौ परासर बस रिषिराई—१-२२६ । उ—(क) राधे तेरे रूप की अधिकाई । जो उपमा दीजे तेरे तन तामे छबि न समाई—सा. उ. १६ । (ख) इकटक नैन टरैं नहिं छबि की अधिकाई—पृ. ३१८ । (३) **कुशलता, चतुरता** ।उ.—जब लौं एक दुहौगे तब लौं चारि दुहौंगो, नंद दुहाई । झूठहि करत दुहाई प्रातहिं देखहिंगे तुम्हरी अधिकाई—६६८ ।

वि.—**अधिक, विशेष, बहुत** । उ.—(क) यह चतुराई अधिकाई कहाँ पाई स्याम वाके प्रेम की गढ़ि पढे हौ यही—२००८ । (ख) सोवत मंहा मनो सुपने सखि अवधि निधन निधि पाई ।......। जो जागौं तो कहा उठि देखौं बिकल भई अधिकाई—२७८४ ।

अधिकाए—क्रि. अ. [हिं. अधिकाना] **अधिक किया, बढ़ाया, वृद्धि की** । उ—सूरदास-प्रभु-पान परसि नित, काम-बेलि अधिकाए—६६१ ।

अधिकात—क्रि. अ. [हिं. अधिकाना] **अधिक होता है, वृद्धि पाता है।** उ०—सारँग सुनै छबि बिन नथुनी-रस बिंदु बिना अधिकात—सा. ५२।

अधिकानी—क्रि० अ० [सं० अधिक, हिं० अधिकाना] **बढ़ी, अधिक हुई, वृद्धि पाई।** उ०—(क) महा दुष्ट लै उड़्यो गोपालहिं, चल्यौ अकास कृष्न यह जानी। चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दृग-रकत-प्रवाह चल्यौ अधिकानी—१०-७८। (ख) देखत सूर अगिनि अधिकानी, नभ लौं पहुँची झार—५९३।

अधिकार—संज्ञा पु० [सं०] (१) **कार्यभार, प्रभुत्व, आधिपत्य।** (२) **स्वत्व, हक।** (३) **दावा, कब्जा।** (४) **क्षमता, सामर्थ्य।** (५) **योग्यता, ज्ञान।**

अधिकारिनि—संज्ञा पुं० बहु० [सं० अधिकारी+नि (प्रत्य०)] **योग्य या उपयुक्त व्यक्ति।** उ०—धर्म-कर्म-अधिकारिनि सौं कछु नाहिंन तुम्हरो काज। भू-भर-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत सन-समाज—१-२१५।

अधिकारी—संज्ञा पु० [सं० अधिकारिन्, हिं० अधिकार] (१) **प्रभु, स्वामी।** उ०—(क) दीनदयाल अधार सबनि के, परम सुजान अखिल अधिकारी—१-२१२। (ख) कान्ह अचगर्‍यौ देत लेहु सब आँगनवारी। कापहि मागत दान भए कबते अधिकारी—१११०। (२) **योग्यता रखनेवाला, उपयुक्त पात्र।** उ०—(क) ऊधो कोउ नाहिंन अधिकारी। लै न जाहु यह जोग आपनो कत तुम होत दुखारी—३२९१।

संज्ञा स्त्री०—**अधिकारी की ठसक या ऐंठ, गर्व।** उ०—जब जान्यौ ब्रज देव मुरारी। उतर गई तब गर्व खुमारी। व्याकुल भयौ डर्‍यौ जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी—१०६६।

वि०—(१) **लिप्त, वशीभूत।** उ०—मैं तोहिं सत्य कहौं दुरजोधन, सुनि तू बात हमारी। बिदुर हमारौ प्रानपियारौ, तू विषया-अधिकारी—१-२४४। (२) **अधिक।** उ०—लोचन ललित कपोलनि काजर, छबि उपजति अधिकारी—१०९१।

अधिकी—वि० [सं० अधिक] **अधिक, ज्यादा, बहुत।** उ०—हम तुम जाति-पाँति के एकै, कहा भयौ अधिकी द्वै गैयाँ—७३५।

अधिको—वि० [सं० अधिक] **अधिक-अधिक।** उ०—जेंवत रुचि अधिको अधिकैया—२३२१।

अधिपति—संज्ञा पु० [सं०] **स्वामी, राजा।** उ०—हमरे तौ गोपतिसुत अधिपति बनिता और रनते—सा० उ० ३४।

अधिष्ठाता—संज्ञा पु० [सं०]। (१) **अध्यक्ष, प्रधान, नियंता।** (२) **प्रकृति को जड़ से चेतनावस्था प्राप्त करानेवाला, ईश्वर।**

अधीन—वि० [सं०] (१) **आश्रित वशीभूत।** (२) **विवश, लाचार, दीन।** उ०—अब हौ माया हाथ बिकानो। ………। हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाही लपटानौ। याही करत अधीन भयौ हौं, निंदा अति न अघानौ—१-४७।

संज्ञा पु०—**दास, सेवक।**

अधीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] **परवशता, परतन्त्रता, आज्ञाकारिता।** उ०—पीछे ललिता आगे स्यामा प्यारी तो आगे पिय मारग फून बिछावत जात।…। सूरदास-प्रभू की ऐसी अधीनता देखत मेरे नैन सिरात—२०६८।

अधीनना—क्रि० अ० [सं० अधीन+ना (प्रत्य०)] **अधीन होना।**

अधीनी—क्रि० अ० स्त्री० [हिं० अधीनता] **अधीन हुई, वश में हो गई।**

अधीने—वि० [सं० अधीन] **परवश, आश्रित, वशीभूत।** उ०—आयु बँधार पुजि लै सौंपी हरिरस रति के लीने। ज्यौं डोरे बस गुडी देखियत डोलत संग अधीने—पृ० ३३५।

अधीन्यौ—वि० [सं० अधीन] **आश्रित, आज्ञाकारी, दबैल, वशीभूत।** उ०—हरि, तुम बलि कौ छलि कहा लीन्यौ। बाँधन गए, बँधाए आपुन, कौन सयानप कीन्यौ ? लए लकुटिया द्वारै ठाढे, मन अति रहत अधीन्यौ—१-१५।

अधीन्ही—वि० [सं० अधीन] **आश्रित, वशीभूत, आज्ञाकारी।** उ०—जा दिन ते मुरली कर लीन्ही। …। तब ही ते तनु सुधि बिसराई निसि दिन रहति गोपाल अधीन्ही—२३३५।

अधीर—वि० पुं० [सं०] **धैर्यरहित, बेचैन, व्याकुल।** उ०—(क) जोरी मारि भजत उतही कौं, जात जमुन कैं तीर। इक धावत पाछे उनहीं के, पावत नही अधीर—५३४। (ख) नैन सारंग सैन मोतन करी जानि अधीर—सा० ४४।

अधीरज—संज्ञा पु० [सं०+अधैर्य] (१) **अधीरता, व्याकुलता, उद्विग्नता।** (२) **उतावलापन।**

अधूरन—वि० [हिं० अधूरा] **अपूर्ण, खंडित, अधकचरा, अकुशल, अकेला।** उ०—मन बाचा कर्मना एक दोउ एकौ पल न बिसारत। जैसे मीन नीर नहिं त्यागत ए खंडित ए पूरन। सूर स्याम स्यामा दोउ देखौ इत उत कोऊ न अधूरन—पृ० ३१५।

अधूरे—वि० [हिं० अधूरा] **अपूर्ण, असमाप्त।**

अधोमुख—[सं.] (१) **नीचा मुँह किए हुए, मुँह लटकाए हुए।** उ.—गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयौ बिश्राम—१-५७। (२) **औंधा, उलटा, मुँह के बल।**

अधोरध—क्रि. वि. [सं. अधोध] **ऊपर-नीचे।**

अनंग—संज्ञा पुं. [सं.] **कामदेव।**

वि.—**बिना देह का, शरीररहित।**

अनंगना—क्रि. अ. [स] **बेसुध होना, सुधबुध भुलाना।**

अनंगवती—वि. स्त्री. [स.] **कामवती, कामिनी।**

अनंगी—वि. [सं. अनंगिन] **अंगरहित, बिना देह का, अशरीर।**

संज्ञा पुं. (१) **परमेश्वर।** (२) **कामदेव।** उ.—सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी १-२१।

अनंत—वि. [सं.] (१) **असीम, अपार।** (२) **असंख्य, अनेक।** उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्रुति गाई—१-६।

अनंतनि—वि. [स. अनंत+हिं. नि. (प्रत्य.)] **असंख्य, अनेकानेक।** उ.—फिरि-फिरि जोनि अनंतनि भरम्यौं, अब सुख-सरन पर्‌यौ—१-१५६।

अनंद, अनँद—संज्ञा पुं. [स. आनद] **आनद, हर्ष, प्रसन्नता।** उ.-(क) चौक चंदन लीपिकैं, धरि आरती सँजोइ। कहति घोषकुमारि, ऐसौ अनंद जौ नित होइ—१०-२६। (ख) बिबिधि बिलास अनंद रसिक सुख सूरस्याम तेरे गुन गावति—सा. उ. १३ (ग) यह छबि देखि भयौ अनंद, मति आपु आपुहीं ऊपर वारी—सा. ६८।

वि.—**आनंदित, प्रसन्न, हर्षयुक्त।** उ.—बोल न बोलिए ब्रजचंद। कौन है संतोष है सब मिलि, जानि आप अनद—सा. ५६।

अनंदना—क्रि. अ. [स. आनंद] **आनदित होना, प्रसन्न होना।**

अनंदित—वि. [सं. आनदित] **हर्षित, मुदित, सुखी।** उ.—कह्यौ जुधिष्ठिर सेवा करत। तातैं बहुत अनंदित रहत—१-२८४।

अनंभ—वि. [सं. अन्=नहीं+अह=पाप=विघ्न=बाधा] **निर्विघ्न, बाधारहित।**

अन—संज्ञा पुं. [सं. अन्न] (१) **खाद्य पदार्थ।** उ.—जैसे बने गिरिराज जू तैसो अन को कोट। मगन भए पूजा करैं नर नारी बड छोट—९११। (२) **अनाज।**

क्रि. वि. [स. अन्] **बिना, बगैर।**

वि. [सं० अन्य] **दूसरा, और।**

अनईस—संज्ञा पु. [हिं. अनैस] **वह जिसका ईश न हो, परमात्मा, कृष्ण।** उ.—दधिसुत बाहन मेखला लेके बैठि अनईस गनोरी—सा. उ. ५२।

अनउतर—वि. [सं. अनुत्तर] **निरुत्तर।** उ.—सुनि सखी सूर सरवस हरयौ साँवरैं, अनउतर महरि कैं द्वार ठाढी—१०-३०७।

अनऋतु—संज्ञा पु. [सं अन+ऋतु] (१) **अनुपयुक्त ऋतु, अकाल, असमय।** उ.—तातैं परयौ स्यामघन नाउँ। इतने निठुर और नहिं कोऊ कवि गावत उपमान। चातक की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहिँ हारत—पृ० ३३०। (२) **ऋतु के विरुद्ध कार्य।**

अनकना—क्रि. स [सं. आकर्ण, प्रा. आकण्न, हिं. अकनना, अनकना] (१) **सुनना।** (२) **चुपचाप या छिपकर सुनना।**

अनकनि—क्रि. स. [सं आकर्ण, प्रा. आकण्न हिं. अकनना, अनकना (१) **सुनकर।** (२) **छिपे-छिपे या चुपचाप सुनकर।**

मुहा.—अनकनि दिए—**चुप रहकर, चुपचाप सुन कर।** उ.—सूरदास प्रभु प्रिय मिलि नैन प्रान सुख भयौ चितए कुरुखिअनि अनकनि दिए—२०६६।

अनकही—वि. [सं. अन्=नहीं+कथ=कहना, हिं. अन-कहा] **बिना कही हुई, अकथित।**

मुहा.—अनकही दे—अवाक् रहकर, चुप होकर। उ.—मो मन उनही को भयौ। परयो प्रभु उनके प्रेमकोस मे तुमहूँ बिसरि गयौ। ...... । सूर अनकही दै गोपिन सौं स्रवन मूँदि उठि धायौ—३४८८।

अनख—संज्ञा पु. [सं.अन्=बुरा+अक्ष=आँख, प्रा. अनक्ख] (१) **खीझ, झुँझलाहट, क्रोध।** उ.—(क) मृगनैनी तू अंजन दै।.......।नैन निरखि अँग अंग निरखियौ अनख पिया जु तजै—२२५४। (ख) धनि धनि अनख उरहनो धनि धनि धनि माखन धनि मोहन खाए—३८८। (२) **दुख, ग्लानि, खिन्नता।** उ.—कर कंकन दरपन लै देखो इहि अति, अनख भरी। क्यो जीवै सुयोग सुनि सूरज बिरहिनि बिरह भरी—३२००। (३) **ईर्ष्या, द्वेष, डाह।** (४) **झंझट, अनरीति।** (५) **डिठौना।**

वि.—(१) **बुरा, अप्रिय।** उ.—हित की कहे अनख की लागति है समुझहु भले सयानी—२२७५। (२) **रुष्ट, खीझी हुई। झुँझलाई हुई।** उ.—वेगि चलिए अनख जहँ तुम इहाँ उह वहाँ जरति है—२२५६।

अनखना—क्रि. अ. [हिं. अनख] **क्रोध करना, झुँझलाना, खीझना।**

अनखाइ—क्रि. अ. [हिं. अनख] **क्रोध करके, रुष्ट होकर।** उ.—गुन अवगुन की समुझि न सकौ, परि आई यहे टेव। अब अनखाइ कहौं, घर अपनैं राखौ बाँधि-बिचारि। सूर स्याम के पालनहारैं आवति है नित गारि—१-३५०।

अनखाऊँ—क्रि. स० [हिं. अनख, अनखाना] **अप्रसन्न करूँ, खिझाऊँ।** उ.—उठत सभा दिन मधि, सैना-पति-भीर देखि, फिरि आऊँ। न्हात-खात सुख करत साहिबी, कैसे करि अनखाऊँ—९-१७२

अनखात—क्रि. अ. [हिं. अनखना] **खीझती है, झुँझलाती है।** उ.—(क) जब लगि परत निमेष अतरा जुग समान पल जात। सूरदास वह रसिक राधिका निमिष पर अति अनखात—१३४७। (ख) सूर प्रभु वासी लोभाने ब्रज बधू अनखात—२६८०।

अनखाती—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अनखना] **क्रोध करती हैं, खीझती हैं झुँझलाती हैं।** उ.—ऊधौ जब ब्रज पहुँचे आइ।..........।गोपिन गृह-व्योहार बिसारे मुख सम्मुख सुख पाइ। पलक वोट (ओट) निमि पर अनखाती यह दुख कहा समाइ—३४४४।

अनखाना—क्रि. अ. [हिं. अनखना] **क्रोध करना, रिसाना, झुँझलाना, खीझना।**

क्रि. स.—**अप्रसन्न करना, खिझाना।**

अनखानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अनखना] **झुँझलाई, रुष्ट हुई।** उ.—लाल कुँवर मेरी कछू न जानै, तू है तरुनि किसोर।.......।सूरदास जसुदा अनखानी यह जीवनधन मोर—१०-३१०।

अनखावत—क्रि स. [हिं. अनखाना] **खिझाते हो, अप्रसन्न करते हो।** उ.—काहे को हो बात बनावत। .... । वा देखत हमको तुम मिलिहौ काहे को ताको अनखावत—१८७०।

अनखाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. अनखना+आहट (प्रत्य.)] **अनखने या क्रोध दिखाने की क्रिया, अनख।**

अनखी—क्रि. अ. [हिं. अनखना] **झुँझलाई, खीझी, रिसाई।** उ.—हम अनखी या बात को लेत दान को नाउँ—११४१।

वि. स्त्री. [हिं. अनख] **क्रोधी, जल्दी खीझने-वाली।**

अनखुला—वि. [हिं. अन (उप.)+खुलना] (१) **बंद।** (२) **जिसका कारण प्रकट न हो।**

अनखैयत—क्रि. स [हिं. अनख, अनखाना] **अप्रसन्न करती (है), खिझाती (है)** उ—नेरो बिलग मानति यह जानति आ बातन मैं कछु पेयत है। सूर स्याम न्यारे न बूझिये यह मोको नहिं भावै, काहे को अन-खैयत है—२१४६।

अनखौहीं—वि. [हिं. अनख] (१) **क्रोधित, रुष्ट।** (२) **चिड़चिड़ी।** (३) **अनुचित, बुरी।** उ.—कबहूँ मोको कछू लगावति कबहूँ कहति जनु जाहु कही। सूरदास बातै अनखौही नाहिन मोपै जात सही—१२४८। (४) **क्रोध दिखानेवाली।**

अनंगत—क्रि. अ. [सं. अनग] **शरीर की सुधि नहीं रख पाता, बेसुध हो जाता है, सुध-बुध भुला देता है,**

विदेह हो जाता है। उ.—जाकौ निरखि अनंग अनगत ताहि अनंग बढावै। सूर स्याम प्यारी छबि निरखत आपु हि धन्य कहावै—८७५।

अनग—सज्ञा पु. [सं अनग] **कामदेव**। उ.—पखीपति सबही सकुचाने चातक अनग मरयौ–२८६५।

अनगन—वि. [सं. अन्+गणन] **अगणित, बहुत**। उ.—नीकैं गाइ गुपालहिँ मन रे। जा गाए निर्भय पद पाए अपराधी अनगन रे—१–६६।

अनगढ़—वि [सं० अन्=नहीं+हिं. गढना] **(१) बिना गढ़ा हुआ। (२) जिसे किसी ने बनाया न हो, स्वयंभू।** उ.—ऊधौ राखिये यह बात। कहत हौ अनगढ व अनहद सुनत ही चपि जात—३२६२।

अनगवना—क्रि. अ. [हिं अन्+अगवना=आगे होना] **विलंब करना।**

अनगाना—क्रि. अ. [हि. अन्+अगवना=आगे बढना] **(१) विलंब करना, देर करना। (२) टालमटोल करना।**

अनगिने—वि. [स. अन्+गणन] **अगणित, बहुत**। उ.—हस उज्ज्वल पंख निर्मल, अग मलि मलि न्हाहिँ। मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि चुनि खाहिँ—१–३३८।

अनघ—वि. [स.] **(१) निर्दोष। (२) पवित्र।**
सज्ञा पु.—**पुण्य**।

अनघरी—सज्ञा स्त्री. [सं. अन्=विरुद्ध+घरी=घडी] **कुसमय।**

अनघैरी—वि [स अन्+हि. घेरना] **बिना बुलाया हुआ, अनिमंत्रित, अनाहूत।**

अनघोर—सज्ञा पु [स. घोर] **अंधेर, अत्याचार।**

अनचहा—वि. [स. अन्=नहीं+हि. चाहना] **अप्रिय, अनिच्छित।**

अनचाखा—वि. [हिं. अन् (उप.)+चखना] **बिना खाया हुआ।**

अनचाहत—वि. [स. अन=नहीं+चाहना] **जो न चाहे, जो प्रेम न करे।**

अनजान—वि. [सं अन्+हि. जानना] **(१) अज्ञानी, नासमझ। (२) अपरिचित, अज्ञात।**
क्रि वि.—**अज्ञानतावश, नासमझी के कारण।** उ.—डगरि गए अनजान ही गह्यो जाइ बन घाट—१००६।

अनजानत—क्रि. वि. [स अन्+हि. जानना (अनजान)] **अनजाने म, बिना जाने ही, अज्ञानतावश।** उ.—(क) धीर-धीर कहि कान्ह असुर यह, कंदर नाही। अनजानत सब परे अघा-मुख-भीतर माही—४३१। (ख) अनजानत अपराध किए प्रभु, राखि सरन मोहिं लेहु—५५८। (ग) ब्याकुल भयौ डर्यौ जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी—१०६६।

अनजाने अनजानै—क्रि वि. [स. अन्+हि. जानना= अनजान] **अज्ञानतावश, नादानी में, नासमझी के कारण** उ.—अनजाने मे करी बहुत तुमसौ बरियाई। ये मेरे अपराध छमहु, त्रिभुवन के राई—४६२।

अनट—सज्ञा पु. [स. अनृत=प्रत्याचार] **उपद्रव, अन्याय, अत्याचार।**

अनडीठ—वि. [स. अन=नहीं+स. दृष्ट, प्रा. दिट्ठ, हि. डीठ] **अनदेखा, बिना देखा हुआ।**

अनत—वि. [स. अ=नहीं+नत=झुका हुआ] **न झुका हुआ, सीधा।**
क्रि. वि. [स. अन्यत्र, प्रा. अन्नत्त] **और कहीं, दूसरी जगह, अन्य स्थान पर।** उ.—(क) हरि चरनारबिद तजि लागत अनत कहू तिनकी मति काँची—१-१८। (ख) जोग-जज्ञ-जप तप नहि कीन्हौ, बेद बिमल नहि भारयौ। अति रस लुब्ध स्वान जूठनि ज्यों, अनत नहीं चित राख्यौ—१–१११। (ग) अतकाल तुम्हरै सुमिरन गति, अनत कहूँ नहि दाउँ—१-१६४। (घ) मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै—१–१६८। (ङ) राखियें दृग मद्ध दै जै अनत नाही जान—सा. १०७।

अनतैं—क्रि वि. [स. अन्यत्र, प्रा., अन्नत्त, हि. अनत] **दूसरी जगह को, अन्य स्थान के लिए, और कहीं।** उ.—(क) मुरली मधुर बजावहु मुख ते रुख जनि अनतैं फेरौ—सा. ८। (ख) जाके गृह मैं प्रतिमा होई। तिन तजि पूजै अनतै सोइ–१२-३।

अनदेखा—वि. [सं अन्=नहीं+देखना] **बिना देखा हुआ।**

अनदेखे—क्रि. वि. [हिं. अनदेखा] **बिना देखे हुए ही, अनजान में ही।** उ.–(क) कहहि भूख औ नींद जीवन हीं जानत नाही। अनदेखे वे नैन लगे लोचन पथ-वाही—१० उ.८। (ख) सुनहु मधुप अपने इन नैनन अनदेखे बलबीर। घर-आँगन न सुहात रैनि दिन बिसरे भोजन-नीर-३१३७।

अनदोषे—वि. [स. अन्+दोष] **निर्दोषी, निरपराधी।** उ.—इहिं मिस देखन आवति ग्वालिनि, मुँह फाटे जु गँवारि। अनदोषे कौ दोष लगावति, दई देइगौ टारि—१०-२६२।

अनन्य—वि [स.] **एकनिष्ठ, एक में ही लीन।** उ—(क) भक्त अनन्य कछू नहि माँगै। तातैं मोहि सकुच अति लागै—३-१३। (ख) और न मेरी इच्छा कोइ। भक्ति अनन्य तुम्हारी होइ—७ २। (ग) मधुकर कहि कैसे मन मानै। जिनके एक अनन्य ब्रत सूझै क्यों दूजो उर आनै—३१३६।

अनप्रासन—संज्ञा पु [स. अन्नप्राशन] **बच्चों को पहले-पहल अन्न चटाने का संस्कार, चटावन, पसनी, पेहनी।** उ.—कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट् मास गए। नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए—१०-८८।

अनफाँस—संज्ञा पु. [हिं अन्+फाँस=पाश] **मोक्ष,मुक्ति।**

अनबन—वि. [सं. अन्=नहीं+बनना] **भिन्नभिन्न, अनेक, विविध।** उ.—द्रुम फूले बन अनबन भाँती। .

अनबोली—वि. स्त्री. [स. अन्=नहीं + हिं बोलना, पु. अनबोला] **चुप या मौन रहनेवाली।** उ.—(क) हौं पठई इक सखी सयानी, अनबोली दै सैन। सूर-स्याम राधिका मिलें बिनु, कहा लगे दुख दैन—७४६। (ख) अनबोली क्यों न रहै री आली तू आई मोसौं बात बनावन—२२०४।

अनबोले—वि. [सं. अन्=नहीं + हिं. बोलना] **न बोलनेवाला, चुप, मौन।** उ.—(क) चिबुक उठाय कह्यो अब देखो अजहूँ रहति अनबोले—१६०६। (ख) जो तुम हमैं जिवायौ चाहत अनबोले होइ रहिए-३०६३।

अनभल—संज्ञा पु. [स. अन्=नहीं+हिं. भला] **बुराई, हानि।** उ. —सूर अनभल आन को सुनत बृक्ष बैरि बुनाय—सा. उ.—४५।

अनभली—वि. स्त्री. [स. अन्=नहीं + हिं. भली] **बुरी, हेय निंदित।** उ.—सूर प्रभु को मिली भेंट भली अनभली चून हरदी रंग देह छाही—१७८८।

अनभाया—वि. [स. अन्+हि भाना=अच्छा लगना] **जो न भावे, अप्रिय।**

अनभावत—वि. [स. अन्+ हि. भावना=अनभावना, अनभाया] **जो अच्छा न लगे, जो न रुचे।** उ.—खोलि किवार पैठि मंदिर में दूध दही सब सखनि खवायौ। ऊखल चढि सींकैं कौ लीन्हौ, अनभावत भुइँ में ढरकायौ—१०-३३१।

अनभौ—संज्ञा पु [स. अन्=नहीं+भव=होना] **अचंभा, अनहोनी बात।**

वि.—**अपूर्व, अद्भुत, अलौकिक।** उ.—तुम घट ही मो स्याम बताए।'''। मोहन बदन बिलोकि मानि रुचि हँसि हरि कंठ लगाए। हम मतिहीन अजान अल्पमति तुम अनभौ पद ल्याए—३२०१।

अनमद—वि. [सं. अन्=नहीं + मद] **गर्वरहित।**

अनमना—वि. [सं. अन्यमनस्क] **(१) उदास, खिन्न। (२) अस्वस्थ।**

अनमनी—वि. स्त्री [सं. अन्यमनस्क, हिं. अनमना (पु.)] **उदास, खिन्न।** उ.– मैं तुम्हे हँसत-खेलत छाँडि गई, अब न्यारे अनबोले रहे दोऊ। इत तुम रूखे ह्वै रहे गिरिधर उत अनमनी अंचल उर माई मुख जघ लगाइ रही ओऊ—२२४०।

अनमने—वि [स. अन्यमनस्क, हिं. अनमना] **उदास, खिन्न।** उ —मेरे इन नैन इते करे। '' '''। घरे न धीर अनमने रुदन बल सो हठ करनि परे-पृ. ३३१।

अनमनै—वि. [सं. अन्यमनस्क, हि. अनमना] **खिन्न, उदास, सुस्त, उचटे चित्त का।** उ.—लाल अनमनै कत होत हो तुम देखो धौं कैसे कैसे करि ल्याइ हौं—२२०६।

अनमाया—वि. [हि अन् (उप.) + मायना=मापना] **जो नापा न जा सके,** जो न समावे।

अनमारग—संज्ञा पु. [सं. अन्=बुरा + मार्ग] (१) **कुमार्ग, बुरी राह।** (२) **दुराचार, अधर्म, पाप।** उ.—अकरम, अबिधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२६।

अनमिल—वि. [सं. अन्=नही + हिं. मिलना] (१) **बेमेल, बेजोड़, असंबद्ध।** (२) **पृथक्, भिन्न, निर्लिप्त।**

अनमिलउक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. अन्=नही+मिल्=मिलना और उक्ति] **अक्रमातिशयोक्ति अलंकार जिसमें कारण के साथ ही कार्य का होना बताया जाता है।** उ०—गिरिजापति-पितु-पितु-पितु ही ते सौगुन सी दरसावै। ससिसुन-बेद-पिता की पुत्री आजु कहा चित चावै। सूरजसुत माता सुबोध की आपुन आदि ढहावै। सूरज प्रभु मिलाप हित स्यानी अनमिल उक्ति गनावै—सा० १५।

अनमिलती—वि. स्त्री. [सं. अन्=नही+हिं. मिलना, पु. अनमिलता] (१) **बेमेल, बेजोड़, बेतुकी, अनुचित।** उ.—ये री मदमत ग्वालि फिरति जोबन मदमाती। गोरस बेचनहारि गूजरी अति इतराती। अनमिलती बातैं कहति सुन पैहै तेरो नाह। कहँ मोहन कहँ तू रहै कबहिं गही तेरी बाँह—१०६५। (२) **अप्राप्य, अलभ्य, अदृश्य।**

अनमेष—वि. [सं. अनिमेष] **स्थिर दृष्टि, टकटकी के साथ।** उ०—अनमेष दृग दिए देखे ही मुखमंडली वर वारि—२२१६।

अनमोल—वि. [सं. अन्=नही+हिं. मोल (१) **अमूल्य, मूल्यवान।** (२) **सुन्दर।**

अनमोलना—क्रि. स. [सं. उन्मीलन] **आँख खोलना।**

अनय—संज्ञा पु. [सं.] (१) **अमंगल, दुर्भाग्य।** (२) **अनीति, अन्याय।**

अनयास—क्रि. वि. [सं. अनायास] **बिना प्रयास या परिश्रम, अचानक, एकाएक।** उ०—(क) अदभुत राम नाम के अंक ······। अंधकार अज्ञान हरन कौ रवि-ससि जुगल-प्रकास। बासर-निसि दोउ करै प्रकासित महा कुमग अनयास—१-९०। (ख) घर ही बैठे दोऊ दास। ऋद्धि सिद्धि मुक्ति अभयपद दायक आइ मिले प्रभु हरि अनयास—१० उ०-१३५।

अनरँग—वि. [सं. अन्=नही+रंग] **रंगरहित, रंगहीन, दूसरे रंग का।** उ०—सेत, हरौ, रातो अरु पियरौ रंग लेत है धोई। कारौ अपनौ रंग न छाँड़े, अनरँग कबहूँ न होई—१-६३।

अनरना—क्रि. स. [सं. अनादर] **अनादर करना।**

अनरस—संज्ञा पु. [सं. अन्=नही+रस] (१) **रसहीनता, शुष्कता।** (२) **कोप, मान।** (३) **मनोमालिन्य, अनबन, बुराई।** (४) **दुख, उदासी, उत्साहहीनता।** उ०—लीन्हे पुहुप पराग पवन कर क्रीडत चहुँ दिसि धाइ। रस अनरस संयोग बिरहिनी भरि छाँड़ति मन भाइ—२३९०।

अनरसा—वि. [सं. अन्=नही+रस] **अनमना, माँदा, बीमार।**

अनराता—वि. [सं. अन्=नही+रक्त] **बिना रँगा हुआ, सादा।**

अनरीति—संज्ञा स्त्री. [सं. अन्=बुरी+रीति] (१) **कुरीति, कुचाल, कुप्रथा।** (२) **अनुचित व्यवहार, अत्याचार।** उ०—इतनी कहत बिभीषन बोल्यौ बधू पाँय परौ। यह अनरीति सुनी नहिं स्रवननि अब नई कहा करौ—९-९८।

अनरुच—वि. [हिं अन् (उप.) + रुचि] **जो पसंद न हो, अरुचिकर।**

अनरुचि—संज्ञा [सं. अन्=नही + रुचि] (१) **अरुचि, अनिच्छा।** (२) **भोजन अच्छा न लगने की बीमारी।** उ०—मोहन काहै न उगिलौ माटी। बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी—१०-२५४।

अनरूप—वि. [सं. अन्=नही=बुरा+रूप] (१) **कुरूप।** (२) **असमान, अतुल्य।**

अनरै—क्रि. स. [सं. अनादर, हिं. अनरना] **अनादर या अपमान करता है।** उ०—मधुकर मन सुनि जोग डरै।······ ····। और सुमन जो अमित सुगंधित सीतल रुचि जो करै। क्यों तुम कोकहिं बनै सरै औ और सबै निदरै—३३११

अनर्थ—संज्ञा पु. [सं.] **उपद्रव, उत्पात, अनिष्ट, बिगाड़।**

अनल—संज्ञा पु. [सं.] **अग्नि, आग।**

अनलहते—वि. [हिं. अन्+लहना] **जो उपयुक्त न हों, जिन पर विश्वास न किया जा सके, अनुचित।** उ०—दिन प्रति सबै उरहने कं मिस आवति हैं उठि प्रात। अनलहतो अपराध लगावतिं, बिकट बनावतिं बात—१०-३२६।

अनलायक—वि. [स. अन्=नहीं+प्र० लायक=योग्य] **अयोग्य, नालायक।** उ०—अनलायक हम है की तुम हौ कहो न बात उघारि। तुमहू नवल नवल हमहूँ है बड़ी चतुर हो ग्वारि—२४२०।

अनलेख—वि० [सं० अन्=नहीं+लक्ष्य=देखने योग्य] **अदृश्य, अगोचर।**

अनवय—संज्ञा पु० [स० अन्वय] **वंश, कुल।**

अनवाद—संज्ञा पु० [स० अन्=नहीं + वाद=वचन] **कटुवचन, कुबोल।**

अनसंग—संज्ञा पु० [सं० अन्य+संग] (१)**दूसरे का साथ।** उ०—देख हुलसत हीय सब के निरखि अद्‌भुत रूप। सूर अनसँग तजन तावत अयोपतिका सूप—सा० ३६। (२) **'असंगति' नामक अलंकार जिसमें कार्य का होना एक स्थान पर वर्णित हो और कारण का दूसरे स्थान पर, अथवा जो समय किसी कार्य के लिए निश्चित है तब कार्य का होना न दिखाकर अन्य समय दिखाया जाय।**

अनसत—वि० [स० अन्+सत्य] **असत्य, झूठा।**

अनसमझ—वि० [स. अन्=नहीं+समझना] **नासमझ, अनजान।**

अनसमै—क्रि० वि० [सं० अन्=नहीं+समय] **असमय, कुसमय, कुअवसर, बेमौका।** उ०—ऋतु बसन्त अनसमै अधममति पिक सहाउ लै धावत। प्रीतम सँग न जान जुवती रुचि बोलेहु बोल न आवत—३४८६।

अनसहत—वि० [स० अन्= नहीं+हि० सहना] **जो सहा न जा सके, असहनीय।**

अनहद (नाद)—संज्ञा पु. [सं. अनाहतनाद] **योग का एक साधन जिसमें हाथ के अँगूठों से कान बंद करके शब्द-विशेष सुनते हैं।** उ०—(क) ऊधो राखिए वह बात। कहत हो अनगढिन अनहद सुनत हो चपि जात—३२९२। (ख) हृदय-कमल मैं ज्योति बिराजै, अनहद-नाद निरन्तर बाजै—३४४२।

अनहित—संज्ञा पु० [स० अन्=नहीं+हित] (१) **अहित, अपकार, बुराई, हानि।** उ०—(क) बाल-बिनोद बचन हित-अनहित बार-बार मुख भाखै। मानौ बग बगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखै—१-६०। (ख) चाहत गंध बैरी बीर। आपनो हित चहत अनहित होत छोडत तीर—सा० २८। (२) **अहितचिन्तक, शत्रु।**

अनहोता—वि० [सं. अन्=नहीं+हि० होना] **अनहोना, असंभव, अचंभे का।**

अनहोनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्=नहीं+हि० होना] **असंभव बात, अलौकिक घटना।** उ०—कहिँ बिधि करि कान्हहिँ समुझैहौ ? मैं ही भूलि चंद दिखरायौ, ताहि कहत मैं खैहौ। अनहोनी कहुँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात। यह तौ आहि खिलौना सबकौ, खान कहत तिहिँ तात—१०-१८९।

अनाकनी—संज्ञा स्त्री. [स. अनाकर्णन, हि. आनाकानी] **सुनी अनसुनी करना, टालमटोल।**

अनागत—क्रि. वि. [स] **अकस्मात, अचानक, सहसा, एकाएक।** उ०—सुने है स्याम मधुपुरी जात। सकुचति कहि न सकति काहू सौं गुप्त हृदय की बात। सकित बचन अनागत कोऊ कहि जो गई अधरात—२५१९।

वि—(१) **अनादि, अजन्मा।** उ०—नित्य अखंड अनूप अनागत अबिगत अनघ अनंत। जाको आदि कोउ नहिं जानत कोउ नहिं पावत अंत। (२) **अपूर्व, अद्‌भुत।** उ०—(क) देखेहु अनदेखे से लागत। यद्यपि करत रंग भरि एकहि एकटक रहे निमिष नहिं त्यागत। इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख उत सोभा गुन अमित अनागत—१६६५। (ख) पल इक माँह पलट सो लीजत प्रगट प्रीति अनागत। सूरदास स्वामी बंसी बस मुर्छि निमेष न जागत—२३४२।

संज्ञा पु.—**संगीत के अंतर्गत ताल का एक भेद।**

अनागम—संज्ञा पु. [सं.] **आगमन का अभाव, न आना।**

अनाघात—संज्ञा पु. [सं.] **संगीत का वह ताल या विराम जो गायन में चार मात्राओं के बाद आता है और कभी कभी सम का काम देता है।** उ०—

उपजावत गावत अति सुदर अनाघात के ताल—२३२० ।

अनाचार—संज्ञा पु. [सं.] (१) **निंदित आचरण, दुराचार । (२) कुरीति, कुचाल ।**

अनाथ—वि [स.] (१) **असहाय, अशरण । (२) दीन, दुखी ।** उ०—(क) परम अनाथ विवेक-नैन बिनु, निगम-ऐन क्यो पावै—१-४८ । (ख) सूरदास अनाथ के है सदा राखनहार—सा. ११७ ।

अनादि—वि. [सं] **जिसका आदि न हो, स्थान और काल से अबद्ध ।**

अनाना—क्रि. स० [स. आनयनम्] **मंगाना ।**

अनापा—वि. [स. अ=नही + हि. नापना] (१) **बिना नापा हुआ । (२) जो नापा न जा सके । असीम ।**

अनायास—क्रि. वि [स.] **बिना प्रयास या परिश्रम, बैठे बिठाए, अकस्मात, सहसा ।**

अनारंगिन—सज्ञा पु. [हि. नारंगी] (१) **नारंगी के रंग की वस्तु । (२) नारंगी की तरह लाल ओठ ।** उ०—कनक सपुट कोकिला रव बिबस ह्वै दे दान । बिकच कंज अनारगिन पर लसित करत पै पान—सा० उ०-५ ।

अनारी—वि. स्त्री [हि. अनाडी] **नासमझ, नादान ।** उ०—इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अनारी । अपनो दूध छाँडि को पीवै खारे कूप को बारी—३३०० ।

अनावृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] **पानी न बरसना, सूखा ।** उ०—सब यादव मिलि हरि सौ इह कह्यो गुफलक सुत जहँ होइ । अनावृष्टि अतिवृष्टि ह्वो त नहि इह जानत सब कोई—१० उ०-२७ ।

अनासा—वि. [स. अ=नही + नाश] **जिसका नाश न हुआ हो, जो टूटा हुआ न हो ।** उ०—जल-चरजासुत-सुत सम नासा धरे अनासा हार—सा० ३५ ।

अनाहक—क्रि. वि. [फा. ना + अ. हक=नाहक] **वृथा, व्यर्थ, निष्प्रयोजन ।** उ०—होउ मन, राम-नाम कौ गाहक । चौरासी लख जीव-जोनि मैं भटकत फिरत अनाहक —१-३१० ।

अनाहत—वि. [स.] (१) **जिस पर आघात न हुआ हो । (२) जिसका गुणन न हुआ हो ।**

सज्ञा पु.—**योग की एक क्रिया जिसमें हाथ के अँगूठों से कान मूँदकर ध्यान करने से शब्द-विशेष सुनते हैं ।**

अनाहत बानी—संज्ञा स्त्री. [स . अनाहत+वाणी] **आकाश वाणी, देववाणी, गगनगिरा ।** उ०—समदत भई अनाहत बानी कंस कान झनकारा । याकी कोखि औतरे जो सुत करै प्रान-परिहारा । तब बसुदेव दीन ह्वै भाष्यौ पुरुष न तिय बध करई । मोको भई अनाहत बानी तातैं सोच न टरई—१०४

अनाहूत—वि. [स.] **बिना बुलाया हुआ, अनिमंत्रित ।**

अनिंद—वि. [म. अनिंद्य] (१) **जो निंदा के योग्य न हो । (२) उत्तम, प्रशसनीय ।**

अनियाई—वि पु. [स. अन्यायिन , हि. अन्यायी] **अन्यायी, अनीतिकारी, अंधेर करनेवाला ।** उ०—अरे मधुप लपट अनिआई यह संदेस कत कहै कन्हाई—३४०८ ।

अनित्य—वि. [स.] (१) **जो सब दिन न रहे, अस्थायी । (२) नश्वर ।**

अनिप—सज्ञा पु. [हिं. अनी=सेना + प=पालक=स्वामी] **सेनापति ।**

अनिमा—संज्ञा स्त्री. [स. अणिमा] **अष्टसिद्धियों में पहली जिससे सूक्ष्म रूप धारण करके अदृश्य हो जाते हैं ।**

अनिमिष—वि. [स.] एकटक दृष्टि से देखनेवाला ।

क्रि. वि.—(१) बिना पलक गिराय । (२) निरतर ।

सज्ञा पु.—देवता ।

अनिमेष—वि. [स.] **स्थिर दृष्टि, टकटकी के साथ ।**

क्रि. वि —(१) **एकटक । (२) निरंतर ।**

अनियाउ—सज्ञा पु [स. अन्याय] **अन्याय, अनीति ।**

अनियारे—वि. [स. अणि=नोक + हि आर (प्रत्य.) हि. अनियारा] **नुकीला, कटीला, धारदार, तीक्ष्ण ।** (क) नैन कमल-दल से अनियारे । दरसत तिन्हैं कटै दुख भारे—३-१३ । (ख) उ०—ठाढी कुँअरि राधिका लोचन मीचत तहँ हरि आए । अति बिसाल चंचल अनियारे हरि हाथनि न समाए—६७५ ।

अनियारो,अनियारौ—वि. [सं. अणि=नोक+हि. आर (प्रत्य.) हिं. अनियारा] **नुकीला, कटीला, तीक्ष्ण, पैना**। उ०—(क) रघुपति अपनो प्रन प्रतिपारयौ। तारयौ कोपि प्रबल गढ, रावन टूक-टूक करि डारयौ। ·· ··· ···रह्यौ माँस को पिंड, प्रान लै गयौ बान अनियारौ—६-१५६। (ख) जाहि लगै सोई पै जानै प्रेम-बान अनियारौ—२८४८।

अनिरुद्ध—संज्ञा पु. [सं.] **श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनका विवाह ऊषा से हुआ था**।

अनिर्वचनीय—वि. [स.] **जिसका वर्णन न हो सके, अकथनीय**।

अनिल—संज्ञा पु. [स.] **वायु, पवन, हवा**।

अनिवार्य—वि. [सं.] (१) **जो हटे नहीं, अटल**। (२) **जो अवश्य घटित हो**। (३) **परम आवश्यक**।

अनी—संज्ञा स्त्री. [स. अणि=अग्रभाग, नोक] **नोक सिरा, कोर**। उ०—भौह कमान समान बान सेना हैं युग नैन अनी।

संज्ञा स्त्री. [स. अनीक=समूह] **समूह, दल, सेना**। उ०—नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर-असुर-अनी। काल-कर्म-गुन ओर अंत नहि, प्रभु इच्छा रचनी—२-२८।

संज्ञा स्त्री. [हिं आन=मर्यादा] **ग्लानि, खेद**।

अनीक—संज्ञा पु. [सं.] **सेना, कटक, समूह**। उ०—सारगसुत नीकन में सोहत मनो अनीक निहार—सा० ३५।

अनीठ—वि. [सं. अनिष्ठ, प्रा. अनिट्ठ] (१) **अप्रिय, अनिच्छित**। (२) **बुरा, खराब**।

अनीतन—वि. [स. अ=नहीं+नीतन=नेत्र] **अनयन, नेत्रहीन, अंधा**। उ०—तमहरसुत गुन आदि अत कवि को मतिवत विचारो। मेरे जान अनीतन इनको कीनो बिध गुन वारो—सा० ४०।

अनीति—संज्ञा स्त्री. [स०] (१) **नीति विरोध, अन्याय**। उ०—जाको नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२६। (२) **अंधेर, अत्याचार**।

अनीस—वि० [सं० अनीशा, हि. अनीश] (१) **अनाथ, असमर्थ**। (२) **जिसके ऊपर कोई न हो**।

संज्ञा पुं०—(१) **विष्णु**। (२) **जीव, माया**।

अनीह—वि० [स०] **इच्छारहित, निस्पृह**। उ०— अज-अनीह-अबिरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी—१०-१७१।

अनु—अव्य० [हिं] **हाँ, ठीक है**।

अनुकरण—संज्ञा पु. [स.] (१) **देखादेखी आचरण**। (२) **पीछे आने वाला व्यक्ति**।

अनुकूल—वि० [स.] (१) **पक्ष में रहने वाला, हितकर**। (२) **प्रसन्न**। उ०—मुकुट सिर धारैं, बनमाल कौस्तुभ गरैं, चतुर्भुज स्याम सुन्दरहिं ध्यायौ। भए अनुकूल हरि, दियौ तिहिं तुरत बर जगत करि राज पद अटल पायौ—४-९०।

क्रि० वि०—**ओर, तरफ**।

अनुकूलना—क्रि० सं० [स० अनुकूलन, हिं० अनुकूल] (१) **पक्ष में होना, हितकर होना**। (२) **प्रसन्न होना**।

अनुकूली—क्रि० स० [हिं० अनुकूलना] (१) **प्रसन्न हुई**। (२) **हितकर हुई**।

अनुकूले—वि० [अनुकूल] **समान, मिलता जुलता**। उ०—लोचन सपने के भ्रम भूले।.... .। मोते गये कुम्ही के जर लौ ऐसे वे निरमूले। सूर स्याम जलरासि परे अब रूप-रंग अनुकूले—पृ० ३३४।

अनुगामी—वि० [सं०] (१) **पीछे चलनेवाला**। उ०—दरभूषन षनषन उठाइ दै नीतन हरिघर हेरत। तनु अनुगामी मनि मैं भैके भीतर सुरुच सकेरत—सा० ३। (२) **आज्ञाकारी**।

अनुग्रह—संज्ञा पु० [स०] (१) **कृपा, दया**। (२) **अनिष्ट-निवारण**।

अनुघातन—संज्ञा पु० [स० अनुघात] **नाश, संहार**। उ०—कालीदमन केसिकर पातन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन—६८२।

अनुच—वि० [सं० अन्+उच्च] **जो श्रेष्ठ या महान न हो**। उ०—इहिं विधि उच्च-अनुच्च तन धरि-धरि, देस-विदेस बिचरतौ—१-२०३।

अनुचर—संज्ञा पु० [सं०]। (१) **दास, सेवक** (२) **सहचर, साथी**।

अनुज—वि [सं. अनु+ज] **जो पीछे उत्पन्न हुआ हो।** संज्ञा पुं०—**छोटा भाई।**

अनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] **आज्ञा।**

अनुताप—संज्ञा पु० [सं०] (१) **तपन, जलन।** (२) **दुख खेद।** (३) **पछतावा।**

अनुतर—वि० [सं० अन्=नहीं+उतर] **निरुत्तर, मौन।**

अनुदिन—वि० [सं०] । **नित्यप्रति, प्रतिदिन।** उ०—संगति रहै साधु की अनुदिन भवदुख दूरि नसावत—२-१७।

अनुनय—संज्ञा पु० [सं०] (१) **विनय, प्रार्थना।** (२) **मनाना।**

अनुपम—वि० [सं०] **उपमा रहित, बेजोड़।** उ०—(क) सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई—६१६। (ख) गृह ते चलो गंप-कुमारि। खरक ठाढो देख अदभुत एक अनुपम मार—सा० १४।

अनुप्राशन—संज्ञा पु. [सं] **खाना।**

अनुभव—संज्ञा पु. [सं.] **जानकारी, परीक्षा-जन्य ज्ञान।**

अनुभवति—क्रि. स. [सं. अनुभव, हिं अनुभवना] **अनुभव करती है, समझती है, मानती है।** उ—पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि १०-१०६।

अनुभवना—क्रि. स. [सं. अनुभव] **अनुभव करना।**

अनुभवी—वि. [सं. अनुभविन्] **अनुभव या जानकारी रखनेवाला।**

अनुभेद—संज्ञा पु. [उप अनु+सं. भेद] **भेद, उप-भेद।** उ.—सखा परस्पर मारि करैं, कोउ कानि न मानैं। कौन बडौ को छोट, भेद-अनुभेद न जानैं—१०-५८६।

अनुमान—संज्ञा पु [सं] (१) **अटकल, अंदाज।** उ—जसुमत देख अपनी कान। बर्ष सर को भयो पूरन अबै ना अनुमान—सा ११४। (२) **विचार, निश्चय, भावना।** उ.—सूरप्रभु अनुमान कीन्हौ, हरौ इनके चीर—७८३। (३) **एक अलंकार जिसमें अटकल के आधार पर कोई बात कही जाय।** उ.—लै कर गेद गए है खेलन लरिकन संग कन्हाई। यह अनुमान गयौ कालीतट सूर साँवरो माई—सा. १०२।

अनुमानत—क्रि. स [सं. अनुमान, हि. अनुमानना] **अनुमान करते हैं, सोचते हैं।** उ.—यह संपदा कहौ क्यो पचिहै बालसँघाती जानत है। सूरदास जो देते कछु इक कहो कहा अनुमानत है—पृ. ३३०।

अनुमानना—क्रि. स. [सं. अनुमान] **अनुमान करना, सोचना।**

अनुमानौं—क्रि स. [सं. अनुमान, हिं अनुमानना] **अनुमान करती हूँ, सोचती-विचारती हूँ।** उ.—स्यामहिं मैं कैसे पहिचानौं । पुनि लोचन टह-राइ निहारति निमिष मेटि वह छबि अनुमानौं। औरै भाव और कछु सोभा कहौ सखी कैसे उर आनौं—१४२६।

अनुमान्यौ—क्रि. स. भूत. [सं. अनुमान, हि अनु-मानना] **अटकल लगाई, अनुमान किया, सोचा, विचारा।** उ—(क) राधा हरि के भावहिं जान्यो। इहै बात कहौ इ। आगे मन ही मन अनुमान्यौ—१५२५। (ख) मधुबन ते चल्यौ तबहि गोकुल निय-रान्यौ। देखत ब्रजलोग स्याम आयौ अनुमान्यौ—२६४६।

अनुमान्हो—क्रि स. [सं. अनुमान, हि अनुमानना] **अनुमान किया, सोचा, विचारा।** उ—अब नहि राखौं उठाइ, बैरी नहि नान्हो। मारौ गज पै रुँदाइ मनहिं यह अनुमान्हो—२४७५।

अनुरक्त—वि [सं.] (१) **आदर, प्रेमयुक्त।** (२) **लीन।** उ.—अंबरीष राजा हरि-भक्त। रहै सदा हरि-पद अनुरक्त—६-५।

अनुरत—वि. [सं.] **लीन, आसक्त, अनुरागी।** उ.—चरननि चित्त निरतर अनुरत, रसना चरित-रसाल—१-१८६।

अनुराग—संज्ञा पु. [सं.] **प्रीति, प्रेम, आसक्ति।** उ.—सूरदास अनुराग प्रथम ते बिषय बिचार बिचारो—सा. ४०

अनुरागत—क्रि. स. [सं. अनुराग, हि अनुरागना] **आलस होता है, प्रेम करता है, लीन होता है।** उ—स्याम बिमुख नर-नारि बृथा सब कैसे मन इनिसो अनुरागत—११७५। (२) **प्रसन्न होता है।** उ.—लोल पोल झलक कुंडल की, यह उपमा कछु लागत।

मानहुँ मकर सुधा - सर क्रीडत, आपु - आपु अनुरागत — ६४५ ।

अनुरागति—क्रि. स. स्त्री [सं. अनुराग. हि. अनुरागना] **आसक्त होती है, प्रीति बढ़ाती है।** उ.—गूँगी बातनि यौं अनुरागति, भँवर गुंजरत कमल माँ बदहिं—१०-१०७ ।

अनुरागना—क्रि. स. [सं. अनुराग] **प्रेम करना, आसक्त होना ।**

अनुरागि—क्रि. स [स. अनुराग, हि. अनुरागना] **सप्रेम, सरुचि, लगन के साथ।** उ—आजु नँद नदन रग भरे। ''''''। पुहुप मजरी मुरतनि माला अँग अनुरागि धरे। रचना सूर रची बृंदाबन, आनँद काज करे—६८६ ।

अनुरागिनि—वि. स्त्री [स. अनुरागिन्, हि. अनुरागिनी] **प्रेम करनेवाली, अनुराग रखनेवाली।** उ—नँदनदन बस तेरे री। सुनि राधिका परम बडभागिनि अनुरागिनि हरि केरे री—१६४१ ।

अनुरागी—वि. [सं. अनुरागिन्] (१) **अनुराग करने वाला, प्रेमी।** (२) **श्रद्धा रखनेवाला, भक्त।** उ.—अबिनासी कौ आगम जान्यौ सकल देव अनुरागी—१०-४।

अनुरागे—क्रि. स. [स. अनुराग, हि. अनुरागना] **अनुरक्त हुए, आसक्त हुए।** उ. (क) लै बसुदेव धँसे दह सूध, सकल देव अनुरागे—१०-४। (ख) नवल गुपाल, नवली राधा, नय प्रेम रस पागे। अतर बन-बिहार दोउ क्रीडत आपु-आपु अनुरागे—६८८। (ग) देखि लोकि दखत सत्र कौतुक, बाल-केलि अनुराग—४१६। (घ) आवत बलराम स्याम सुनत दौरि चली बाम मुकुट झलक पीताबर मन मन अनुराग—२६५८।

अनुरागै—क्रि. स. [सं. अनुराग, हि. अनुरागना] **अनुरक्त होना है, प्रीति करता है।** उ.—त्रिकुटी मग भ्रूभग तराटक नैन नैन लगि लागै। हँसनि प्रकास सुमुख कुडल मिलि चद सूर अनुरागै—३०१४।

अनुरागौ—क्रि. स. [स. अनुराग, हि. अनुरागना] **प्रेम करो, प्रीति रखो।** उ.—ऐसौ जानि मोह कौ त्यागौ। हरिचरनारबिद अनुरागौ—७-२।

अनुराग्यौ—क्रि. स. भूत. [स. अनुराग, हिं. अनुरागना] **अनुराग किया, प्रीति की।** उ.—(क) करि सकल अन्नजल त्याग्यौ। केवल हरि-पद सौ अनुराग्यौ—१-३४१। (ख) सिव-पद-कमल हृदय अनुराग्यौ—४-५।

अनुराध—सज्ञा पु. [स.] **विनय, प्रार्थना, याचना।** उ.—(क) तुम सन्मुख म बिमुख तुम्हारौ, मै असाध तुम साध। धन्य धन्य कहि कहि जुवतिन को आप करत अनुराध—पृ. ३४३ (१६)। (ख) वहै चूक जिय जानि सखी सुन मन ले गए चुराय। ''' '। सूर स्याम मन देहु न मेरौ पुनि करिहौ अनुराध १४६२।

अनुराधना—क्रि. स. [स. अनुराध] **विनय करना, मनाना, याचना करना।**

अनुराध्यो—क्रि. स. [स. अनुराध, हि अनुराधना] **आराधना की, याचना की, मनाया, विनय की।** उ—ग्रीव भुजलरी तारि कै अचरा सौ बाँध्यौ। इह बहानौ करि लियौ हरि मन अनुराध्यौ—१५४१।

अनुरूप—वि० [स०] (१) **समान्त, सदृश।** (२) **योग्य अनुकूल।**

अनुरोध—सज्ञा पु. [स.] (१) **रुकावट, बाधा।** (२) **प्रेरणा, उत्तेजना।** (३) **आग्रह।**

अनुसधानना—क्रि. स [स. अनुसधान] (१) **खोजना, ढूँढ़ना।** (२) **सोचना, विचारना।**

अनुसरई—क्रि. स. [हि. अनुसरना] **साथ चल सके, अनुयायी हो सके।** उ०—नहि कर लकुटि सुमति सनसगति, जिहि अधार अनुसरई—१-४८।

अनुसरत—क्रि. स. [हि अनुसरना] (१) **पीछे चलता है, साथ चलता है।** (२) **अनुकरण करता है।**

अनुसरतौ—क्रि. स. [हिं. अनुसरना] **अनुकरण करना, नकल करता।** उ०—पतित उद्धार किए तुम, हौ तिनकौ अनुसरतौ—१-२०३।

अनुसरना—क्रि. स. [स. अनुसरण] (१) **पीछे या साथ-साथ चलना।** (२) **अनुकरण करना।**

अनुसरिए—क्रि. स. [हिं. अनुसरना] **अनुसरण कीजिए, अपनाइए।** उ०—यहि प्रकार बिषमतम तरिए। योग पंथ क्रम-क्रम अनुसरिए—१-२०८।

अनुसरिहौं—क्रि. स. [हिं. अनुसरना] **अनुकूल-आचरण करूँगा, (आज्ञा आदि) मानूँगा।** उ०—नृपति कह्यौ, तुम कह्यौ सो करिहौ। तुम्हरी आज्ञा म अनुसरिहौं—६-२।

अनुसरी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. अनुसरना] **ग्रहण की, अपनायी।** उ०—(क) रिषि कह्यौ बहुत बुरौ तैं कीन्हौं। जौ यह साप नृपति कौ दीन्हौ।.. .. .... ताकी रच्छा हरि जू करी। हरि अवज्ञा तुम अनुसरी—१-२९०। (ख) तिन बहु सृष्टि तामसी करी। सो तामस करि मन अनुसरी—३-७।

अनुसरैं—क्रि. स. बहु. [हिं. अनुसरना] **अनुकूल आचरण करते हैं।** उ०—अजहूँ स्रावग ऐसाहि करैं। ताही कौ मारग अनुसरैं—५-२।

अनुसरै—क्रि. स. [हिं. अनुसरना] (१) **पीछे पीछे या साथ-साथ चलता है।** उ०—तुम बिनु प्रभु को ऐसी करै। जो भक्तनि कै बस अनुसरै—१-२७७। (२) **(आज्ञा आदि का) पालन करता है।** उ०—राजा सेव भली बिधि करै। दपति आयसु सब अनुसरै—१-२८४। (३) **अनुकरण करे, नकल करे।** उ०—भक्ति-पथ को जो अनुसरै। सो अष्टाग जोग कौ करै—२-२१।

अनुसार—क्रि. वि. [स.] **अनुकूल, सदृश, समान।** उ०—सुकदेव कह्यौ जाहि परकार। सूर कह्यौ ताही अनुसार—३-६।

अनुसारना—क्रि. स. [स. अनुसरण] (१) **अनुसरण करना, देखा-देखी कार्य करना।** (२) **आचरण या व्यवहार करना।**

अनुसारी—क्रि. स. [सं. अनुसरण, हिं० अनुसारना] **अनुसरण की, अनुकूल क्रिया की।**

यौ० रू०। (१) **उचारी, कही।** उ०—(क) ऐसी बिधि बिनती अनुसारी—३-१३। (ख) तब ब्रह्मा बिनती अनुसारी—७-२। (ग) को है सुनत कहत कासा हौ कौन कथा अनुसारी—३२९१।
(२) **प्रचलित की, आरंभ की।** उ०—सूर इद्र पूजा अनुसारी। तुरत करौ सब भोग सँवारी—१००७।

वि —**अनुसरण करनेवाला।** उ०—सूरदास सम रूप नाम गुन अंतर अनुचर-अनुसारी—१०-१७१।

अनुसाल—संज्ञा पु० [सं० अनु+हिं० सालना] **वेदना, पीड़ा।** उ०—यहाँ और कासौं कहिहौं गरुड़गामी। मधु-कैटभ-मथन, मुर भौम केसी भिदन कंस-कुल-काल अनुसाल हारी—१० उ०-५०।

अनुसासन—संज्ञा पु० [सं० अनुशासन] **आदेश, आज्ञा।** उ०—औरनि कौं जम कै अनुसासन, किंकर कौटिक धावैं। सुनि मेरी अपराध-अधमई, कोऊ निकट न आवै—१-१९७।

अनुसुया—सज्ञा स्त्री० [सं० अनसूया] **अत्रि मुनि की स्त्री।**

अनुहरण—संज्ञा पु० [स०] **अनुकरण, अनुकूल आचरण।**

अनुहरत—वि० [क्रि० स० 'अनुहरना' का कृदन्त रूप] **उपयुक्त, योग्य, अनुकूल।** उ०–मजु मेचक मृदुल तन, अनुहरत भूषन भरनि। मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फरचो अद्भुत फरनि—१०-१०६।

अनुहरना—क्रि० स० [स० अनुसरण] **अनुकरण करना, आदर्श पर चलना।**

अनुहरिया—वि० [सं० अनुहार] **समान।**
संज्ञा स्त्री०—**आकृति।**

अनुहार— वि० [स०], **एकरूप, समान।** उ०—हरि बल सोभित यौ अनुहार। ससि अरु सूर उदै भए मानौ दोऊ एकहिँ बार—२५७२।
सज्ञा स्त्री०—(१) **भेद, प्रकार।** (२) **आकृति।**

अनुहारक—संज्ञा पु [सं०] **अनुसरण करनेवाला।**

अनुहारना—क्रि० स० [स० अनुहारण] **समान करना।**

अनुहारि—वि० स्त्री० [स० अनुहार] (१) **समान, सदृश, तुल्य।** उ०—(क) सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहि अनुहारि। मनहुँ अग-बिभूति राजति संभु सो मदहारि—१०-१६६। (ख) गिरि समान तन अगम अति पन्नग की अनुहारि—४३१। (ग) रोमावली अनूप बिराजति, जमुना की अनुहारि—६३७। (घ) आज घन स्याम की अनुहारि। उनइ आए साँवरे रे सजनी देखि रूप की आरि—२८२६। (ङ) है कोउ वैसी ही अनुहारि। मधुबन तन ते आवत सखी री देखहु नैन निहारि—२९५१। (२) **योग्य, उपयुक्त।**

संज्ञा स्त्री०—(१) **रूप, आकृति, प्रतिच्छवि।** उ० (क) बलि गइ बाल-रूप मुरारि। पाइ पैंजनि रटति रुनझुन, नचावति नँदनारि।...... । सूर सुर-नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि—१०-११८। (ख) सुनहु सखी ते धन्य नारि। जो अपने प्रानबल्लभ की सपनेहु देखति हैं अनुहारि—२७६१। (२) **रूप, भेद, प्रकार।** उ०—बहु मिष्टान्न बहुत बिधि भोजन बहु ब्यंजन अनुहारि—६६२।

अनुहारी—वि० [सं० अनुहारिन्] **अनुकरण करनेवाला।**

वि० स्त्री० [सं० अनुहार] **समान, सदृश।** उ०—(क) मुकुट कुण्डल तनु पीत बसन कोउ गोबिंद की अनुहारी—३४४१। (ख) आजु कोउ स्याम की अनुहारी। आवत उत उमँगे सुन सबही देखि रूप की वारी—२६५७।

अनुहारे—क्रि० स० [स० अनुहारण, हिं० अनुहारना] **तुल्य करना, समान करना, उपमा देना।** उ०—देखि री हरि के चचल तारे। कमल मीन को कहा एती छबि खजनहू न जात अनुहारे—१३३३।

अनुहारो—वि० [स० अनुहार, हिं० अनुहारि (स्त्री०)] **समान, सदृश।** उ०—गति मराल, केहरि कटि, कदली युगल जंघ अनुहारो—२२००।

अनूज्ञा—संज्ञा स्त्री० [स० अनुज्ञा] (१) **आज्ञा।** (२) **एक अलंकार जिसमें दूषित वस्तु पाने की इच्छा उसकी कोई विशेषता देखकर हो।** उ०—करत अनूज्ञा भूषन मोको सूर स्याम चित आवै—सा० ६६।

अनूठा—वि० [स० अनुत्थ, प्रा० अनुट्ठ] (१) **अनोखा।** (२) **सुन्दर।**

अनूतर—वि० [स० अनुत्तर] (१) **निरुत्तर, मौन।** (२) **चुपचाप रहने या मौन धारने वाला।**

अनूप—वि. [स. अनुपम] (१) **जिसको उपमा न हो, अद्वितीय, बेजोड़।** (२) **सुन्दर, अच्छा।** उ०—हरि जस बिमल छत्र सिर ऊपर राजत परम अनूप—१—४०।

संज्ञा पु.—**वह प्रदेश जहाँ जल अधिक हो।**

अनूपम—वि. [स. अनुपम] **अनुपम, बेजोड़।** उ०—(क) स्याम भुजनि की सुंदरताई। चंदन खौरि अनूपम राजति, सो छबि कही न जाई—६४१। (ख) अद्भुत एक अनूपम बाग—१६८०।

अनूपी—वि. [स. अनुपम, हिं. अनूप] (१) **अद्वितीय, अनुपम।** (२) **सुन्दर।** उ०—धन्य अनुराग धनि भाग धनि सौभाग्य धन्य जोवन-रूप अति अनूपी—१३२५।

अनृत—संज्ञा पु. [स.] (१) **मिथ्या, असत्य।** (२) **अन्यथा, विपरीत।**

अनेक—वि [सं.] **एक से अधिक, असंख्य, अनगिनती।**

अनेग—वि. [स. अनेक] **बहुत, अधिक।**

अनेरी—वि स्त्री. [सं. अनृत, हिं. पु. अनेरा] **झूठ, व्यर्थ, निष्प्रयोजन।** उ०—कर सौ कर लै लगाइ, महरि पै गई लिवाय, आनँद उर नहि समाइ, बात हैं अनेरी—१०-२७५।

अनेरे—वि. [स. अनृत, हिं. अनेरा] (१) व्यर्थ, निष्प्रयोजन। (२) झूठा, दुष्ट।

क्रि. वि.—व्यर्थ।

अनेरो, अनेरौ—वि. [सं. अनृत, हि अनेरा] **झूठा, अन्यायी, दुष्ट।** उ०—(क) रे रे चपल विरूप ढीठ तू बोलत बचन अनेरौ—६-१३२। (ख) कारौ कहि कहि तोहि खिझावत, बरजत खरो अनेरौ—१०-२१६। (ग) अबलौ मै करी कानि, सही दूध-दही हानि, अजहूँ जिय जानि मानि, कान्ह है अनेरौ—१०-२७६। (घ) अरी ग्वारि मैमंत बोलत बचन जो अनेरौ। कब हरि बालक भये, गर्भ कब लियौ बसेरौ—१११४। (२) **निकम्मा, दुष्ट।** उ०—लोक-बेद कुल कानि न मानत अति ही रहत अनेरौ—पृ० ३३२।

अनेह—संज्ञा पु [सं. अ=नहीं+स्नेह] **अप्रीति, विरक्ति।**

अनैस—संज्ञा पु [स. अनिष्ट] **बुराई, अहित।**

वि०—**बुरा।** उ०—निकसबी हम कौन मग हो कहै बारी बैस। मोह को यह गर्ब सागर भरी आइ अनैस—सा. १७।

अनैसना—क्रि. अ. [स. अनिष्ट, हिं. अनैस] **बुरा मानना, रूठना, मान करना।**

अनैसा—वि. [सं. अनिष्ट, हिं. अनैस] **अप्रिय, अरुचिकर, बुरा।**

अनैसी—वि. स्त्री. [सं. अनिष्ट, हिं. अनैस] **बुरी**। उ०—तरुनिन की यह प्रकृति अनैसी थोरेहि बात खिसावै—११५२।

अनैसे—क्रि. वि. [सं. अनिष्ट, हि. अनैस] **बुरे भाव से, बुरी तरह से**

अनैसैं—वि. [हि अनैस, अनैसा] **जो इष्ट न हो, अप्रिय, बुरा**। उ०—जनम सिरानौ ऐसें ऐसें। कै घर-घर भरमत जदुपति बिन, कै सोवत, कै बैसें। कै कहुँ खान-पान-रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसें—१-२९६।

अनैहो—संज्ञा पुं [हि. अनैस] **उत्पात, उपद्रव**। उ०—जा कारन सुन सुत सुन्दर बर कीन्हौं इती अनैहो (कीन्ही इती अरै)। सोइ सुधाकर देखि दमोदर या भाजन मे है, हो (माँहि परै) - १०-१९५।

अनोखी—वि. स्त्री. [हिं. पु. अनोखा] **अनूठी, निराली, अद्भुत, विलक्षण**। उ०—झगरिनि तै हौ बहुत खिझाई। कचन हार दिऐं नहिं मानति, तुहीं अनोखी दाई—१०-१६।

अनोखे—वि. [हि. अनोखा] **(१) अनूठे, निराले। (२) सुंदर**। उ०—भूषनपति अहारजा फल से मेघ अनोखे दाऊ—सा. १०३।

अनोखौ—वि. [हिं. अनोखा] **(१) अनूठा, निराला, विलक्षण**। उ०—सूर स्याम कौं हटकि न राखौ, तैंही पूत अनोखो जायौ—१०-३३१। **(२) प्रिय, सुन्दर**। काकै नहीं अनोखौ ढोटा, किहि न कठिन करि जायौ। मैं हूँ अपनै औरस पूतै बहुत दिननि मैं पायौ—१०-३३६।

अनोन्या—सर्व. [स. अन्योन्य] **परस्पर, आपस में**। उ०—दोऊ लगत दुहुन ते सुंदर भले अनोन्या आउ— सा० ४५।

सज्ञा पु.—**एक अलंकार जिसमें दो वस्तुओं की क्रिया या गुण की उत्पत्ति पारस्परिक संबंध के कारण हो**। उ०—उक्त पंक्ति।

अन्न—सज्ञा पु. [स.] **(१) खाद्य पदार्थ। (२)** अनाज, धान्य। (३) **पकाया हुआ अन्न**। उ०—होनो होउ होउ सो अबही यहि ब्रज अन्न न खाऊँ—२७८०।

अन्नकूट—संज्ञा पुं [सं.] **(१) एक उत्सव जो कार्तिक मास में दीपावली के दूसरे दिन प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ मनाया जाता है। इसमें अनेक प्रकार के व्यंजनों और फलों से भगवान् का भोग लगाते हैं**। उ०—अन्नकूट बिधि करत लाग सब नेम सहित करि पकवान्ह—९१०। **(२) अन्न का ढेर**। उ०—अन्नकूट जैसो गोबर्धन—१०२५।

अन्यत्र—वि. [सं.] **और जगह, दूसरे स्थान पर**। उ०—ता मित्र को परमातम मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र—४१२।

अन्याइ, अन्याई—सज्ञा स्त्री [सं. अन्याय] **न्यायविरुद्ध व्यवहार, अनीति**। उ.-(क) पुत्र अन्याइ करै बहुतेरे। पिता एक अवगुन नहि हेरै—५-४। (ख) सेए नाहिं चरन गिरिधर के, बहुत करी अन्याई—१-१४७।

वि.—[सं अन्यायिन्, हि. अन्यायी] **अनुचित कार्य या अनीति करनेवाला**। उ.—अन्याई को बास नरक मो यह जानत सब कोइ—३४९४।

अन्याय—सज्ञा पु [स. अन्याय] [वि. अन्यायी] **(१) अनीति, न्यायविरुद्ध आचरण**। उ—करत अन्याय न बरजौ कबहूँ अरु माखन की चोरी—२७०८। **(१) अधेर, अत्याचार**।

अन्यारा—वि. पु. [स. अ=नहीं+हि. न्यारा] **(१) जो अलग न हो। (२) अनोखा, निराला। (३) खूब, बहुत**।

अन्यारी—वि. स्त्री. [स. अ=नहीं+न्यारी] **अनोखी, अनूठी, निराली**। उ.—अंचल चंचल फटी कंचुकी बिलुलित बर कुच सटी उघारी। मानो नव जलदबधु कोनो बिधु निकसी नभ कसली अन्यारी—२३०१।

अन्यास—क्रि. वि. [सं अनायास] **(१) बिना परिश्रम। (२) अकस्मात, अचानक, सहसा**। उ.—मोको तुम अपराध लगावत वृथा भई अन्यास। झुकत कहा मोपर ब्रजनारी सुनहु न सूरजदास—२९३४।

अन्योन्य—सर्व. [स.] **परस्पर, आपस में**।

अन्वय—सज्ञा पु. [सं.] **(१) परस्पर संबंध। (२) संयोग, मेल। (३) कार्य-कारण का संबंध**।

अन्हवाइ—क्रि. स. [हिं. नहाना] **नहलाकर, स्नान**

करा के। उ.—फूली फिरत जसोदा तन-मन, उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल—१०-९४।

अन्हवाएँ—क्रि. स. सवि. [हिं. नहाना, नहलाना] **स्नान कराने से, नहलाने से।** उ.—गज कौ कहा सरित अन्हवाऐ, बहुरि धरै वह ढग—१-३३२।

अन्हवाऊँ—क्रि. स. [हिं. नहाना] **स्नान कराऊँ, नहलाऊँ।** उ.—मोहन, आउ तुम्है अन्हवाऊँ—१०-१८५।

अन्हवायौ—क्रि. स. भूत [हिं. नहाना] **स्नान कराया, नहलाया।** उ.—नद करत पूजा, हरि देखत। घट बजाइ, देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेंटत—१०-२६१।

अन्हवावति—क्रि. स. स्त्री [हिं. नहाना] **नहलाती है।** उ.—यह कहि जननी दुहुँनि उर लावति। सुमना, सत अँग परसि, तरनि-जल, बलि-बलि गई, कहि-कहि अन्हवावति—५१४।

अन्हवावन—क्रि. स. [हिं. नहलाना] **स्नान कराने को, नहलाने को।** उ०—जसुमति जबहिं कह्यौ अन्हवावन रोइ गए हरि लोटत री—१०-१८६।

अन्हवावहु—क्रि. स. [हिं. नहाना] **नहलाओ, स्नान कराओ।** उ.-बिप्रनि कह्यौ याहि अन्हवावहु। याकैं अंग सुगंध लगावहु—५-३।

अन्हाइ—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **स्नान करता है, नहाता है।** उ.—जबै आवौं साधुसगति, कछुक मन ठहराइ। ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ—१-४५।

अन्हाए—क्रि. अ [हिं. नहाना] **नहाने, स्नान करने।** उ.—हम लकेस-दूत प्रतिहारी, समुद-तीर कौं जात अन्हाए—९-१२०।

अन्हात—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **स्नान करते हुए, नहाते हुए।**

मुहा.—अन्हात-खात—**नहाते-खाते। आशय यह कि दैनिक जीवन सुखमय हो, चिंता उनके पास न फटकै।** उ.—कुसल रहैं बलराम स्याम दोउ, खेलत-खात-अन्हात—१०-२५७।

अन्हान—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **नहाने, स्नान करने।** उ.—यह कहिकै रिषि गए अन्हान—९-५।

अन्हावैं—क्रि. सं. [हिं. नहाना] **स्नान करे, नहाए।** उ—बेद धर्म तजि कै न अन्हावै। प्रजा सकल कौं यहै सिखावै—५-२।

अन्हावहु—क्रि अ. [हिं. स्नान, नहान] **नहलाओ, स्नान कराओ।** उ.—कान्ह कह्यौ, गिरि दूध अन्हावहु—१०२३।

अन्हैबो,अन्हैबौ—क्रि. अ. [हिं. नहाना] **नहावें।** उ.—(क) कैसे बसन उतारि धरै हम कैसे जलहि समैबौ। नंद-नदन हमको देखैंगे, कैसे करि जु अन्हैबौ—७७६। (ख) नंद-नंदन हमको देखैंगे, कैसे करि जो अन्हैबो—८१८।

अपंग—वि. [स. अपाँग, हीनाग] (१) **अंगहीन।** (२) **काम करने में अशक्त असमर्थ।** उ.—सुभट भए डोलत ए नैंन। ... आपुन लोभ अत्र लै धावत पलक कवच नहिं अग। हाव भाव रस लरत कटाक्षनि भ्रकुटी धनुष अपग-पृ ३२६। (३) **लँगड़ा।**

अपकर्म—संज्ञा. पु. [स. अप=बुरा+कर्म] **बुरा काम, कुकर्म, पाप।** उ०—रतिकौ धर्म इहे प्रतिपालै, जुवती सेवा ही को धर्म। जुवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म—पृ० ३४१ (१)।

अपकाजी—वि. [हिं. आप+काज] **अपस्वार्थी, मतलबी।** उ०—अहकारि लंपट अपकाजी संग न रह्यौ निदानी। सूरस्याम बिनु नागरि राधा नागर चित्त भुलानी—१६४७।

अपकार—संज्ञा पु. [स] (१) **द्वेष, द्रोह, बुराई।** (२) **अपमान।** (३) **अत्याचार, अनीति।**

अपकारी—वि० [स. अपकारिन्, हि. अपकार] (१) **हानिकारक, अनिष्टकारी।** उ०—यह ससि सीतल काहे कहियत।........मीनकेत अबुज आनंदित ताते ताहित लहियत। बिरहिनि अरु कमलनि त्रासत कहुँ अपकारी रथ नहियत-२८५६। (२) **विरोधी, द्वेषी।**

अपकारीचार—वि० [सं. अपकार+आचार] **हानि पहुँचानेवाला।**

अपकीरति—संज्ञा स्त्री. [सं. अपकीर्त्ति] **अपयश, निंदा, बुराई।**

अपघात—संज्ञा पु. [सं.] (१) **हत्या, हिंसा।** (२) **वंचना, धोखा।**

संज्ञा पु. [सं. अप = अपना + घात=मार] आत्मघात ।

अपचाल—संज्ञा पु. [सं.] **कुचाल, खोटाई ।**

अपच्छी—संज्ञा पु [सं. अ=नहीं+पक्षी=पक्षवाला] **विपक्षी, विरोधी ।**

अपछरा—संज्ञा पु. [स. अप्सरा, प्रा. अच्छरा] **अप्सरा ।**

अपजस—संज्ञा पुं० [सं० अपयश] (१) **अपकीर्ति, बुराई ।** (२) **कलंक, लांछन ।**

अपडर—संज्ञा पु० [सं० अप+डर] **भय, शंका ।**

अपडरना—क्रि० अ० [हिं० अपडर] **भयभीत होना, डरना, शंकित होना ।**

अपड़ाई—क्रि० अ० [स० अपर, हिं० अपडाना] **खींचा-तानी करता है ।** उ०—मन जो कहो करै री माई । .. .. । निलज भई तन सुधि बिसराई गुरुजन करत लराई । इत कुलकानि उतै हरिकौ रस मन जो अति अपडाई—१६६६ ।

अपड़ाना—क्रि० अ० [सं० अपर] **खींचातानी करना ।**

अपड़ाव—संज्ञा पु० [सं० अपर, हिं० परावा=पराया] **झगड़ा, रार, तकरार ।** (क) महर ढोटौना सालि रहे । जन्महि ते अपडाव करत है गुनि गुनि हृदय कहे—२४६३ । (ख) हँसत कहत कीधौ सतभाव । यह कहती औरै जो कोऊ तासौं मैं करती अपड़ाव—१२४० ।

अपत—संज्ञा स्त्री० [स० आपत्] **दुर्दशा, दुर्गति ।** उ०—जौ मेरे दीनदयाल न होते । तौ मेरी अपत करत कौरव-सुत, होत पडवनि ओते—१-२५६ ।

वि० [स० अ=नहीं+पत्र, प्रा० पत्त, हिं० पत्ता] (१) **बिना पत्तों का ।** (२) **नग्न ।** (३) **निर्लज्ज ।**

वि० [स० अपात्र, पा० अपत्त] **। अधम, पातकी ।** उ०— प्रभु जू हौं तौ महा अधर्मी । अपत, उतार, अभागौ, कामी, बिषयी निपट कुकर्मी—१-१८६ ।

अपतई—संज्ञा स्त्री० [स० अपात्र, पा० अपत्त+ई (हिं० प्रत्य०)] (१) । **निर्लज्जता, ढिठाई ।** उ०—नयना लुब्धे रूप के अपने सुख माई ।.. ... । मिले धाय अकुलाय कै मैं करति लराई । अति ही करी उन अपतई हरि सौ, समताई—पृ० ३२३ । (२) **चंचलता ।** उ०— कान्ह तुम्हारी माय महाबल सब जग अपबस कीन्हो हो । सुनि ताकी सब अपतई सुक सनकादिक मोहे हो—पृ० ३४६ (५६) ।

अपताना—संज्ञा पु० [हिं० अप=अपना+तानना] **जंजाल, प्रपंच ।**

अपति—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=बुरा+गति=गति] **अगति, दुर्गति, दुर्दशा ।** उ०—बैठी सभा सकल भूपनि की, भीषम-द्रोन-करन व्रतधारी । कहि न सकत कोउ बाल बदन पर, इन पतितनि मो अपति बिचारी—१-२४८

वि०—**पापी, दुष्ट ।**

अपथ—संज्ञा पु [सं.] **कुपथ, कुमार्ग ।** उ०—(क) माधौ नैकु हटको गाइ । भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ—१-५६ । (ख) अपथ सकल चलि चाहि चहूँ, दिसि भ्रम उघटत मतिमंद—१-२०१ । (ग) हरि है राजनीति पढि आए । तै क्यौ नीति करै आपुन जिन और न अपथ छुडाए । राजधर्म सुन इहै सूर जिहि प्रजा न जाहिं सताए—३३६३ । (२) **बीहड़ राह, विकट मार्ग ।**

अपद—संज्ञा पु. [सं.] **बिना पैर के रेंगनेवाले जंतु । यथा साँप, केंचुआ ।** उ०—राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी । अपद-दुपद-पसु भाषा बूझत, अबिगत अल्प-अहारी—८-१४ ।

अपदाँव—संज्ञा पु. [सं. अप=बुरा+हिं दाँव] **चाल-बाजी, चालाकी, कुचाल, घात ।** उ०—कियौ वह भेद मन और नाही । पहिले ही जाइ हरि सो कियौ भेद वहि और वे काज कासो बताही । दूसरे आइकै इद्रियनि लै गयौ ऐसे अपदाँव सब इनहिं कीन्हे—पृ० ३२१ ।

अपदेखा—वि० [हिं. अप=अपने को+देखा=देखने-वाला] **अपने को बड़ा समझनेवाला ।**

अपन—सर्व० [हिं. अपना] **अपना, निजी, स्वयं का ।**

अपनपौ—संज्ञा पु. [हिं. अपना+पौ या पा (प्रत्य.)] (१) **आत्मभाव, निजस्वरूप ।** (२) **संज्ञा, सुध, ज्ञान ।** (३) **आत्मगौरव, मान ।**

अपनाई—क्रि० स० [हिं. अपनाना] **ग्रहण की, शरण में लिया ।** उ०—ना हमकौ कछु सुदरताई । भक्त जानि के सब अपनाई ।

अपनाऊँ--क्रि० स० [हिं. अपनाना] **अपने पक्ष में करूँ, स्ववश करूँ**। उ०—सूरस्याम बिन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ।

अपनाना--क्रि० स० [हिं. अपनाना] **अपने अनुकूल करना, अपने वश में करना। (२) ग्रहण करना, शरण में लेना।**

अपनाम—संज्ञा पु. [सं.] **निंदा, अपयश।**

अपनायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. अपना, अपनाना] **अपना बनाया, अंगीकार या ग्रहण किया, शरण में लिया।** उ.—अब हौं हरि, सरनागत आयौ। कृपानिधान सुहृद हेरियैं, जिहिं पतितनि अपनायौ—१-२०५।

अपनियाँ—सर्व. स्त्री. [हिं. अपना] **अपनी।** उ.—सूरदास प्रभु निरखि मगन भए, प्रेम-बिबस कछु सुधि न अपनियाँ—१०-१०६।

अपनी—सर्व. स्त्री. [स. आत्मनो, प्रा. अतणो अप्पणो; हिं. अपना] **निजी, निज की।**

मुहा.—**करत अपनी अपनी—स्वार्थ दिखाते हैं, केवल अपनी ही चिंता करते हैं।** उ.—कहा कृपिन की माया गनियें, करत फिरत अपनी अपनी। खाइ न सकै, खरच नहिं जानै, ज्यो भुवग सिर रहत मनी—१-३६। अपनी सी कीन्ही—**शक्ति भर प्रयत्न किया, भरसक चेष्टा की।** उ.—सेवल कहा देति मोहि सजनी तू तो बडी सुजान। अपनी सी मैं बहुतै कीन्ही रहति न तेरी आन।

अपने—सर्व. [हिं. अपना] **निजी, निज के।**

अपनैं—सर्व. [हिं. अपना] **अपने, निज के।** उ.--अपनै सुख को सब जग बाँध्यौ, कोऊ काहू कौ नाहीं—१-७६।

अपनो, अपनौ—सर्व. [हि अपना] **निजी, निज का।** उ.—कारौ अपनौ रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई—१-६३।

अपबस—वि. [हिं. अप=अपना+सं. वश] **अपने वश में, स्ववश।** उ.—(क) जो बिधना अपबस करि पाऊँ। ता सखि कही होइ कछु हेरी अपनी साध पुराऊँ। (ख) कान्ह तुम्हारी माइ महाबल सब जग अपबस कीन्हो हो—पृ. ३४२ (५६)।

अपभय—संज्ञा पुं. [सं] (१) **निर्भयता।** (२) **अकारण भय।** (३) **डर, भय।**

वि —**निर्भय, निडर।**

अपमान—संज्ञा पु. [स अप. (उप.) + मान] (१)**अनादर, अवज्ञा।** (२) **तिरस्कार, दुत्कार।** उ.—कौर-कौर-कारन कुबुद्धि, जड, किते सहत अपमान—१-१०३।

अपमानत—क्रि. सं. [स. अपमान, हिं अपमानना] **अपमान करते हैं, तिरस्कारते हैं।** उ.—हारि जीति नैना नहिं जानत। धाए जात तहीं को फिरि फिरि वै कितनो अपमानत—पृ. ३२८।

अपमानना—क्रि. स. [सं. अपमान] **निंदा करना, तिरस्कारना।**

अपमानै—क्रि. स. [सं. अपमान, हिं. अपमानना] **अपमान करती हैं, तिरस्कारती हैं।** उ.—ताको ब्रज-नारी पति जानै। कोउ आदर कोऊ अपमानै—१६२६।

अपमारग—संज्ञा पु. [स. अपमार्ग] **कुमार्ग, कुपथ।** उ.—(क) माया नटी लकुट कर लीन्हे, कोटिक नाच नचावै।.......। महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहि लगावै—१-४२। (ख) चोरी अपमारग बटपारयौ इनि पटतर के नहिं कोऊ है—११५६।

अपमारगी—वि. [स. अपमार्गिन, हिं. अपमार्गी] **कुमार्गी, अन्यथाचारी, कुपंथी।** उ.—नैना नोनहरामी ये। चोर ढुंढ बटपार अन्याई अपमारगी कहावै जे—पृ. ३२६।

अपयोग—संज्ञा पु. [सं. अप=बुरा+योग] (१) **कुयोग।** (२) **कुसगुन।** (३) **बुराई।** उ.—सबै खोट मधुबन के लोग। जिनके संग स्याम सुन्दर सखि सीखे सब अपयोग-३०५२।

अपरंपार—वि. [सं. अपर = दूसरा + हि. पार=छोर] **जिसका पारावार न हो, असीम**

अपर—वि [सं.] **अन्य, दूसरा, भिन्न, और।** उ.—भुज भुजग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि। रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरी डरनि—१०-१०६।

अपरछन—वि. [सं. अप्रच्छन्न] **छिपा, गुप्त।**

अपरता--वि. [हिं. अप=आप+स. रत=लगा हुआ] **स्वयं में लगा हुआ, स्वार्थी।**

अपरती—संज्ञा स्त्री. [हिं. अप=आप+सं. रति=लीनता] **स्वार्थ ।**

अपरना—संज्ञा स्त्री. [सं. अ=नहीं+पर्ण=पत्ता] **पार्वती का एक नाम ।**

अपरस—वि. [सं. अ=नहीं+स्पर्श, हिं. परस] (१) **जो छुआ न जाय । (२) न छूने योग्य, अस्पृश्य । (३) जो अछूता न हो, अछूत, जो छूना न चाहे, दूर रहनेवाला ।** उ०—ऊधो तुम हो अति बडभागी । अपरस रहत सनेह लगा ते नाहिन मन अनुरागी—३३४६ ।

अपराध—संज्ञा पु. [सं.] (१) **दोष, पाप । (२) भूल-चूक ।**

अपराधिनि—वि. स्त्री. [सं. अपराधिन्, हिं अपराधिनी] **दोषयुक्त स्त्री, पापिनी ।** उ०—हम अपराधिनि मर्म न जान्यौ अरु तुमहू ते तूटी—१०उ०-८० ।

अपराधी—वि. पु. [स. अपराधिन्] (१) **अपराध करनेवाले, दोषी । (२) पाप करनेवाले, पापी ।** उ०—तुम मो से अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पठाए (हो)—१-७ ।

अपराधु—संज्ञा पु. [स. अपराध] **(१) दोष, पाप (२) भूल-चूक ।** उ०—चारौ मुख अस्तुति करत, छमौ मोहि अपराध—४६२ ।

अपराधौ—संज्ञा पु. [सं. अपराध] **दोष, पाप ।** उ०—जब ते बिछुरे स्याम तबते रह्यौ न जाइ सुनौ सखी मेरोइ अपराधौ—१८०६ ।

अपरिमित—वि. [सं.] (१) **इयत्ताशून्य, असीम ।** उ०—अलख अनंत - अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तनीर—९-२६ । **(२) असंख्य, अनंत ।** उ०—कृपा सिंधु, अपराध अपरिमित छमौ, सूर तैं सब बिगरी—१-११५ ।

अपलोक—संज्ञा पु० [स०] **(१) अपयश, अपकीर्ति ।** उ०—रहि रहि देख्यौ तेरौ ज्ञान । सुफलकसुत सरबस रस लै गयौ तू करन आयौ ज्ञान । बृथा कत अपलोक लावत कहत यह उपदेस—३१२३ ।

अपवाद—संज्ञा पु० [सं०] **(१) विरोध, प्रतिवाद । (२) निंदा, अपकीर्ति । (३) दोष, पाप ।**

अपसगुन—संज्ञा पु० [स० अपशकुन] **असगुन, बुरा सगुन ।** उ०—अर्जुन बहुत दुखित तब भए । इहाँ अपसगुन होत नित नए । रोवै बृषभ, तुरग अरु नाग । स्यार द्यौस, निसि बोलै काग—१-२८६ ।

अपसना—क्रि० [सं० अपसरण=खिसकना] **(१) सरकना । (२) चल देना, चंपत होना ।**

अपसमार—संज्ञा पु० [स० अपस्मार] **रोग-विशेष, मृगी, मूरछा ।** उ०—सुरभीतमजासुतपित नाही चहत हार चित हेरो । अपसमार जहँ सूर समारत बहु बिषाद उर पेरो—सा० ६७ ।

अपसर—वि० [हिं० अप=अपना+सर (प्रत्य०)] **आप ही आप, मनमाना, अपनी तरंग का, अपने मन का ।** उ०—रहु रे मधुकर मधु मतवारे...... । लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अंग सम्हारे । बारबार सरक मदिरा की अपसर रटत उघारे—२९९० ।

अपसोच—क्रि० अ० [सं० अप+हिं० सोचना] **चिंता करके ।** उ०—काहे को अपसोच मरति है । नैन तुम्हारे नाही—पृ० ३२१ ।

अपसोस—संज्ञा पु० [फा० अफसोस] **चिंता, सोच, दुख ।**

अपसोसना—क्रि० अ० [हि० अपसोस] **सोच करना, चिंता करना ।**

अपसोसनि—संज्ञा पु० सवि० [फा० अफसोस, हिं० अपसोस] **चिंता, सोच या दुख में ।** उ०—तातै अब मरियत अपसोसनि । मथुराहूँ तै गए सखी री, अब हरि कारे कोसनि—१० उ—८८ ।

अपसोसों—संज्ञा पु. [हिं. अपसोस] **सोच, चिंता ।** उ.—भैनी मात पिता बंधव गुरु गुरुजन यह कहैं मोसो । राधा कान्ह एक सँग बिलसत मन ही मन अपसोसो—१२२१ ।

अपसौन—संज्ञा पुं. [स. अपशकुन] **असगुन ।**

अपस्वार्थी—वि. [हिं. अप=अपना + सं. स्वार्थी] **स्वार्थ साधनेवाला, मतलबी ।** उ.—नैना, लुब्धे रूप को अपने सुख माई । अपराधी अपस्वारथी मोको बिसराई —पृ. ३२३ ।

अपहरन—संज्ञा पुं. [स. अपहरण] **हरलेना, हरण ।** उ.—सोच सोच तू डार देखि दीनदयाल आयो ।...।

अपहरन पुनि बरन बस हरि जानि हौ केहि योग भायौ—१० उ.–१८ ।

अपहरना—क्रि. स. [स. अपहरण] । (१) **छीनना, लूटना । (२) चुराना । (३) कम करना, नाश करना ।**

अपहारी—संज्ञा पु. [स. अपहारिन्] (१) **चोर, लुटेरा ।** (२) हरने वाला ।

वि.—**पराजित, हारा हुआ** । उ.—ध्रुव मुख देखि डरत ससि भारी । कर करि कै हरि हेरयौ चाहत, भाजि पताल गयौ अपहारी—१०-१९६ ।

अपा—संज्ञा स्त्री. [हि. आप] **अहंकार, गर्व ।**

अपान—वि. [स. अ=नहीं + पान=पेय] **अपेय, न पीने योग्य** । उ.—भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धापी । कामी, बिबस कामिनी कैं रस, लोभ लालसा थापी—१-१४० ।

संज्ञा पु. [हि अपना] (१) **आत्मतत्व, आत्मज्ञान** । (२) आपा, **आत्मगौरव** । (३) **सुध. संज्ञा, ज्ञान** । (४) **अहम्, अभिमान** ।

सर्व—**अपना, निजका** ।

अपाना—सर्व. [हि. अपना] **अपना, अपने वश का, अपने हाथ का** । उ.—निकट बसत हुती अस कियौ अब दूर पयाना । बिना कृपा भगवान उपाउ न सूर अपाना—१० उ.- ८१ ।

अपाप—संज्ञा पु. [स. अ=नहीं + पाप] **जो पाप न हो, पुण्य** ।

अपाय—संज्ञा पु० [सं०] **उपद्रव, अन्यथाचार** । (

वि० [स० अ=नहीं+पाद, प्रा० पाय=पैर] (१) **लँगड़ा, अपाहिज** । (२) **निरुपाय असमर्थ** ।

अपार—वि० [सं०] (१) **सीमारहित, अनन्त, असीम** । (२) **असंख्य, अगणित, अधिक** ।

अपारा—वि० [सं० अपार] **अपार, असीम, अनन्त** । उ०—सब मिलि गए जहाँ पुरुषोत्तम, जिहिं गति अगम, अपारा—१०-४ ।

अपारी—वि० स्त्री० [हि. अपार] **जिसका पार न हो, असीम** । उ०—रसना एक नहीं सत कोटिक सोभा अमित अपारी—पृ० ३४६ ।

अपारौ—वि० [सं० अपार] **जिसका पार न हो, सीमारहित, बहुत बड़ी-चढ़ी** । उ०—ममता-घटा, मोह की बूँदे, सरिता मैन अपारौ । बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट अधारौ—१-२०९ ।

अपावन—वि० [सं०] **अपवित्र, अशुद्ध** ।

अपीच—वि० [स० अपीच्य] **सुन्दर, अच्छा** ।

अपुन—सर्व० [हिं० आत्मनो, प्रा० अत्तणो, आप्पणो हि० अपना] **अपना** ।

मुहा०—अपुन करि—**अपना करके, अपना समझकर, अपने अनुकूल बनाकर** । उ०—जौ हरि-ब्रत निज उर न धरैगौ । तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावँ पकरैगौ—१-७५ ।

अपुनपौ—संज्ञा पु० [हि० अपना+पौ या पा (प्रत्य०)] (१) **आत्मभाव, निजस्वरूप, आत्मज्ञान** । उ०—(क) अति उन्मत्त मोह-माया-बस नहिं कछु बात बिचारौ । करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खोटो-खारौ । इन्द्री स्वाद-बिबस निसिबासर आप अपुनपौ हारौ—१-१५२ । (ख) अपुनपौ आपुन ही मैं पायौ । सब्दहिं सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ—४-१३ । (२) **संज्ञा, सुध, ज्ञान** । उ०—(क) अपुनपौ आपुन ही बिसरायौ । जैसै स्वान काँच-मंदिर मे भ्रमि भ्रमि भूकि मरयौ—२-२६ । (ख) अद्‌भुत इक चितयौ हौ सजनी नंद महर कैं आँगन री । सो मैं निरखि अपुनपौ खोयौ, गई मथानी माँगन री—१०-१३७ । (३) **आत्मगौरव, मान, मर्यादा** । उ०—ऐसो कौन मारिहै ताको, मौहि कहै सो आइ । वाकौ मारि अपुनपो राखैं, सूरब्रजहिँ सो जाइ—१०-६० । (४) **स्वशक्तिज्ञान** । उ०—कृष्ण कियौ मन ध्यान असुर इक बसत अँधेरै । बालक बछरन राखिहौ एक बार लै जाउँ । कछुक जनाऊँ अपुनपौ, अब लौ रह्यौ सुभाउ–४३१ । (५) **अपनायत, आत्मीयता, सम्बन्ध** । उ०—अगनित गुन हरिनाम तिहारै अजौं अपुनपौ धारौ । सूरदास स्वामी यह जन अब, करत करत स्रम हारयौ—१-१५७ । (६) **अहंकार, ममता** ।

अपूठना—क्रि. स. [स. अ=नहीं+पृष्ठ, पा. पुट्ठ=पीठ] (१) **विध्वंसना, नाशना** । (२) **उलटना-पलटना** ।

अपूठा—वि. [सं. अपुष्ट, प्रा. अपुट्ठ] **अज्ञानकार, अनभिज्ञ** ।

वि. [सं. अस्फुट, प्रा. अप्फुट] **जो खिला न हो, अविकसित।**

अपूठी—क्रि. स. [सं. अ=नहीं+पृष्ठ=पीठ, प्रा. पुट्ठ=पीठ, हिं. अपूठना] **उलट-पुलट कर।** उ.—रावन हति, लै चलौं साथ ही, लंका धरौं अपूठी। यातैं जिय सकुचात, नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी—९-८७।

अपूत—वि. [सं. अ=नहीं+पूत=पवित्र] **अपवित्र।**

वि० [स. अपुत्र, पा अपुत्त] **जिसके पुत्र न हो, अपूता।**

संज्ञा पु.—**कुपुत्र।**

अपूर—वि. [सं. आपूर्ण] **पूरा, भरपूर।**

अपूरना—क्रि. स. [स. आपूर्णन्] (१) **भरना।** (२) **(बाजा आदि) बजाना या फूँकना।**

अपूरा—सज्ञा पु. [सं. आ+पूर्ण] **भरा हुआ, फैला हुआ, व्याप्त।**

अपेत—वि. [स. अ=नहीं+पीड्=दबाना, ढकेलना] **जो हटे नहीं, अटल।**

अपैठ—वि. [सं. अप्रविष्ट, पा. अपविट्ठ, प्रा. अपइट्ठ] **जहाँ पहुँच न हो सके, दुर्गम।**

अप्सरा—सज्ञा स्त्री. [स.] **इन्द्र सभा में नाचने वाली देवांगना।**

अफरना—क्रि. अ. [स. स्फार=प्रचुर] (१) **भोजन से तृप्त होना, अघाना।** (२) **ऊबना।**

अफुल्ल—वि. [स.] **जो फूला या खिला न हो, अविकसित।**

अबध—वि. [स. अ=नहीं+बंध=बंधन] **जो बंधन में न हो, अबद्ध, निरंकुश।** उ.—हमतो रीझि लटू भइ लालन महाप्रेम तिय जानि। बंध अबंध अमति निसिबासर का सुरझावति आनि—२८११।

अबंध्य—वि. [स.] **सफल, फलीभूत, अव्यर्थ।**

अब—क्रि. वि. [स अथ, प्रा. अह; अथवा स. अद्य] **इस समय, इस घड़ी।**

अबतंस—सज्ञा पु. [स. अवतंस] **भूषण, अलंकार।** उ.—स्रुति अवतंस बिराजत हरिसुत सिद्ध दरस सुत ओर—सा. उ०-२७।

अबद्ध—वि. [स.] (१) **जो बंधा न हो, मुक्त।** (२) **निरंकुश।** (३) **असंबद्ध।**

अबध—वि. [सं. अवध्य] (१) **जिसे मारना उचित न हो।** उ.—तोकौं अबध कहत सब कोऊ तातैं सहियत बात। बिना प्रयास मारिहौं तोकौं, आजु रैनि कै प्रात—९-७९। (ख) रावन कह्यौ, सो कह्यौ न जाई, रह्यौ क्रोध अति छाइ। तब ही अबध जानि कै राख्यौ मंदोदरि समुझाइ—९-१०४। (२) **शास्त्र में जिसे मारने का विधान न हो।** (३) **जिसे कोई मार न सके।**

अबधू—वि. [सं. अबोध पु. हिं. अबोधु] **अज्ञानी, अबोध, मूर्ख।**

सज्ञा पु. [स. अवधूत] **त्यागी, संत, साधु, विरागी।**

अबर—वि. [हि अवर] **अन्य, और, दूसरा।** उ०—सरिता सिधु अनेक अबर सखी बिलसत पति सहज सनेह—२७७१।

अबरन—वि. [सं. अ=नहीं+वर्ण्य] **जो वर्णन न हो सके, अकथनीय।**

वि [स. अ=नहीं+वर्ण=रंग] (१) **बिना रूप-रंग का, वर्णशून्य।** उ०—सुक सारद से करत बिचारा। नारद से पावहि नहि पारा। अबरन बरन सुरति नहिं धारैं। गोपिनि के सो बदन निहारैं—१०-३। (२) **जो एक रंग का न हो, भिन्न।**

अबराधे—क्रि. स. [स. आराधन, हिं. अवराधना] **उपासना करे, पूजे, सेवा करे।** उ०—ऊधौ मन न भए दस-बीस। एक हुतो सो गयौ स्याम सँग को अबराधे ईस—३१४६।

अबल—वि [स.] **निर्बल, बलहीन।** उ०—अबल प्रहलाद, बलि दैत्य सुखही भजत, दास ध्रुव चरन चित-सीस नायौ—१-११६।

अबलनि—सज्ञा स्त्री बहु. [स. अबला+नि (प्रत्य.)] **स्त्रियों को।** उ—अबलनि अकेली करि अपने कुल नीति बिसरी अबधि सँग सकल सूर भहराइ भाजै—२८१६।

अबल-हुतासन मद्ध—सज्ञा. पु. [स. अबल=अजोर+हुताशन=अग्नि+मध्य=बीच ('अजोर' और 'अग्नि' का मध्य=जोग)] **योग।** उ.—अबल हुतासन केर सँदेसो तुमहूँ मद्ध निकासो—सा. १०५।

अबला—संज्ञा स्त्री. [स] (१) **स्त्री।** (२) **अनाथ**

अथवा निरलङ्कार नारी। उ०—मन मैं डरी, कानि जिनि तोरैं, मोहिं अबला जिय जानि—६-७६।

अबाती—वि. [सं. अ=नहीं+वात=वायु] (१) बिना वायु का। (२) भीतर-भीतर सुलगनेवाला।

अबाद—वि० [सं० अ=नहीं+वाद] वादशून्य, निर्विवाद।

अबाध—वि० [सं०]। (१) बेरोक, बाधारहित। (२) निर्विघ्न। (३) अपार, अपरिमित। उ०—अकल अनीह अबाध अभेद। नेति नेति कहि गावहिं बेद।

अबाधा—वि० [सं० अबाध] अपार, असीम। उ०—खेलौ जाइ स्याम सँग राधा। ……सँग खेलत दोउ झगरन लागे, सोभा बढ़ी अबाधा—७०५।

अबार—संज्ञा स्त्री० [सं० अ=बुरा+बेला=हिं० बेर=समय] देर, बिलम्ब। उ.—(क) सूरदास प्रभु कहत चलौ घर, बन मैं आजु अबार लगाई—४७१। (ख) चलो आजु प्रातहि दधि बेचन नित तुम करति अबार—१०७८। (ग) बानरहितजापति पतिनी से बाँधे बार अबार—सा० ३५।

अबास—संज्ञा पु० [सं० आवास] रहने का स्थान, घर। उ०—उत ब्रजनारि संग जुरि कै वै हँसति करति परिहास। चलौ न जाइ देखियै री वै राधा को जु अबास—१६१६।

अबिगत—वि० [सं० अविगत] (१) जो जाना न जाय। (२) अज्ञात, अनिर्वचनीय। उ.—(क) अबिगत-गति कछु कहत न आवै—१-२। (ख) काहू के कुल-तन न बिचारत। अबिगत की गति कहि न परति है, ब्याध अजामिल तारत—१-१२। (३) जो नष्ट न हो, नित्य। (ग) अपद-दुपद-पसु-भाषा बूझत, अबिगत अल्प-अहारी—८-१४।

अबिचल—वि० [सं० अविचल] जो विचलित न हो, अचल, स्थिर, अटल। उ०—अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत अबिचल राज करैं—१-३७।

अबिद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथ्या ज्ञान, अज्ञान, मोह। उ०—कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल-सुधि नहिं काल। सूरदास की सबै अबिद्या दूरि करौ नँदलाल—१-१५३।

अबिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अविधि] व्यवस्थाविरुद्ध, नियमरहित, कर्त्तव्यविरुद्ध। उ०—राग-द्वेष बिधि-अबिधि, असुचि-सुचि, जिहिं प्रभु जहाँ सँभारौ। कियौ न कबहुँ बिलम्ब कृपानिधि, सादर सोच निवारौ—१-१५७।

अबिनासी—वि० पु० [सं० अविनाशिन्, हिं० अविनाशी] (१) जिसका विनाश न हो, अक्षय। उ.—अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ—२-३६। (२) नित्य, शाश्वत।

अबिर—संज्ञा पु० [अ० अबीर] (१) रंगीन बुकनी, गुलाल। उ०—चोवा, चंदन अबिर, गलिनि छिरकावन रे—१०-१८। (२) अभ्रक का चूर्ण। (३) श्वेत रंग की बुकनी जो वल्लभ- संप्रदायी मंदिरों में उत्सवों पर उड़ाई जाती है।

अबिरथा—वि० [सं० वृथा] वृथा, व्यर्थ।

अबिरल—वि० [सं० अविरल] घना, सघन। उ०—अलक अबिरल, चारु हास-बिलास, भृकुटी भग—६२७।

अबिवेकी—वि. [सं अविवेकिन्, हि अविवेकी] (१) अज्ञानी, विवेकरहित। (२) मूढ़, मूर्ख।

अबिसेक—वि. [स अविशेष] तुल्य, समान। उ०—प्रेमहित करि छीरसागर भई मनसा एक। स्याम मनि से अंग चंदन अमी के अबिसेक—सा. उ.-५।

अबिहित—वि. [स. अविहित] (१) विरुद्ध। (२) अनुचित, अयोग्य। उ०—अबिहित बाद-बिवाद सकल मत इन लगि भेष धरत। इहिं बिधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कछू न काज सरत—१-५५।

अबीर—संज्ञा पु. [अ.] रंगीन बुकनी जो होली के दिनों में मित्र परस्पर डालते हैं। उ०—उडत गुलाल अबीर जोर तहं बिदिस दीप उजियारी—२३९१।

अबुध—वि. [सं.] अबोध, नादान।

अबूझ—वि० [सं० अबुद्ध, पा० अबुज्झ] अबोध, नासमझ, नादान।

अबेध—वि. [स. अविद्ध] जो छिदा न हो, अनबेधा।

अबेर—संज्ञा स्त्री. [सं. अवेला] विलंब, देर। उ०—(क) खेलन कौं हरि दूरि गयौ री। संग संग धावत डोलत है, कह धौ बहुत अबेर भयौ री—१०-२१६। (ख) आजु अबेर भई कहुँ खेलत, बोलि लेहु हरि कौ कोउ बाम री—१०-२३५।

अबेरौ—संज्ञा स्त्री [सं. अवेला, हिं. अबेर] देर, विलंब। उ.—चकित भई ग्वालिनि-तन हेरौ। माखन छाँडि गई मथि वैसैंहि, तब तैं कियो अबेरौ। देखै जाइ मटुकिया रीती, मैं राख्यौ कहुँ हेरि—१०-२७१।

अबेस—वि. [फा. बेश=अधिक] बहुत, अधिक। उ.—कीर कदंब मजुका पूरन सौरभ उडत अबेस। अगर धूप सोरभ नासा सुख बरषत परम सुदेस।

अबै—क्रि. वि. [हिं. अब] इसी समय, अभी-अभी। उ.—(क) हो रघुनाथ, निसाचर कै सँग अबै जात हौ देखो—६-६४। (ख) जसुमति देख आपनो कान। बर्ष सर को भयौ पूरन अबै ना अनुमान—सा० ११४। (ग) हरि प्रति अंग अंग की सोभा अँखियन मग ह्वै लेउ अबै—१३००।

अबोल—वि. [सं. अ=नहीं+हिं. बोल]। (१) मौन, अवाक्। (२) जिसके विषय में बोल न सकें, अनिर्वचनीय।

संज्ञा पु०—कुबोल, बुरा बोल।

अबोला—संज्ञा पुं. [स. अ=नहीं+हिं. बोलना] मान या रिस के कारण न बोलना।

अबोले—वि. [सं. अ=नहीं+हि० बोल]-मौन, अवाक्। उ०—कबहुँ न भयौ सुन्यौ नहिं देख्यौ तनु ते प्रान अबोले—२२७५।

अभंगी—वि. [स. अभंगिन्] (१) पूर्ण, अखंड। (२) जिसका कोई कुछ न ले सके। उ०—आए माई दुर्ग स्याम के सगी। .....। सूधी कहत सबन समुझावत, ते साँचे सरबंगी। औरन को सरवसु लै मारत आपुन भए अभंगी।

अभंगुर—वि. [सं.] (१) जो टूट न सके, दृढ़। (२) जो नाश न हो, अमिट।

अभच्छ—वि. [स० अभक्ष्य] (१) जिसके खाने का निषेध हो। उ०—भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धापी—१-१४०। (१) अखाद्य, अभोज्य।

अभय—वि. [सं०] निर्भय, निडर। उ०—जाकौं दीनानाथ निवाजै। भवसागर मैं कबहुँ न झूकै, अभय निसाने बाजै—१-३६।

मुहा०—अभय दयौ—शरण दी, निर्भय किया। उ०—ब्रह्मा रुद्रलोक हूँ गयो। उनहुँ ताहि अभय नहिं दयौ।

अभयदान—संज्ञा पु. [सं.] निर्भय करना, शरण देना, रक्षा का वचन देना। उ०—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हौ। अभयदान प्रह्लादहि दीन्हौ—७-२।

अभयपद—संज्ञा पुं. [स.] निर्भय पद, मोक्ष, मुक्ति। उ.—पिता-बचन खंडे सो पापी, सोइ प्रहलादहिं कीन्हौ। निकसे खभ-बीच तैं नरहरि, ताहि अभयपद दीन्हौ—१-१०४।

अभर—वि. [स. अ=नहीं+भार=बोझा] न ढोने योग्य।

अभरन—संज्ञा पु. [स. आभरण] गहना, आभूषण। उ.—(क) सूरदास कचन के अभरन लै झगरिनि पहिराई—१०-१६। (ख) इक अभरन लेहिं उतारि, देत न साक करैं—१०-२४।

अभरम—वि. [स. अ=नहीं+भ्रम] (१) अभूल, अचूक। (२) निशंक, निडर।

क्रि. वि.—निःसन्देह, निश्चय।

अभल—वि. [अ=नहीं+हि. भला] जो भला न हो, बुरा।

अभाऊ—वि. [स. अ=नहीं+भाव] जो अच्छा न लगे, अप्रिय। (२) जो न सोहे, अशोभित।

अभाग—संज्ञा पु. [स. अभाग्य] दुर्भाग्य, बुरा भाग्य।

अभागि—वि. स्त्री. [हि. अभागिनी] (१) भाग्यहीन। (२) स्त्रियों की एक गाली। उ.—कबहुँ बाँधति, कबहुँ मारति, महरि बडी अभागि—३८७।

अभागिनि—वि स्त्री. [स अभागिन्, हि. अभागिनी] भाग्यहीन। उ—तृष्ना बहिन, दीनता सहचरि, अधिक प्रीति बिस्तारी। अति निमक, निरलज्ज, अभागिनि, घर घर फिरत न हारी—१-१७३।

अभागे—वि. [हिं. अभागा] भाग्यहीन, प्रारब्धहीन।

अभागौ—वि. [स अभाग्य, हिं. अभागा] अभागा, भाग्यहीन, मन्दभाग्य। उ.—प्रभु जू हौं तो महा अधर्मी। अपत, उधार, अभागौ, कामी, विषयी निपट कुकर्मी—१-१८६।

अभाव—संज्ञा पु. [सं.] कुभाव, दुर्भाव, विरोध।

अभास—संज्ञा पुं. [स. आभास] (१) प्रतिबिंब,

झलक, समानता। उ०—(क) तहँ अरि पंथ पिता जुग उद्दित बारिज बिबि रंग भजो अभास—सा. उ० २८ और २७२३। (ख) नाथ तुम्हारी जोति अभास। करत सकल जग मैं परकास १०उ०-१२६।

अभिद—वि. [सं. अभेद्य, हिं. अभेद] **भेदशून्य, एकरूप, समान**। उ.—अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान—३-१३।

अभिन—वि. [स. अभिन्न] (१) **जो भिन्न न हो, एकमय**। (२) **मिला हुआ, सटा हुआ, संबद्ध**। उ.—अब इह वर्षा बीति गई।.........। उदित चारु चंद्रिका अवर उर अंतर अमृत मई। घटी घटा सब अभिन मोह मोद तमिता तेज हई—२८५३।

अभिमान—संज्ञा पुं. [सं] **गर्व, अहंकार, घमंड**।

मुहा.—बाँधे अभिमान—**गर्व से युक्त हैं**। उ.—आदि रसाल जगफल के सुत जे बाँधे अभिमान। सूरज सुत के लोक पठावत से सब करत नहान—सा. ७४।

अभिमानिनि—वि. [सं. अभिमानी+हिं. नि (प्रत्य.)] **अभिमानियों से, अहंकारियों से**। उ.—यह आसा पापिनी दहै।.........धन-मद-मूढनि, अभिमानिनि मिलि, लोभ लिए दुर्बचन सहै—१-५३।

अभिमानी—वि. [सं. अभिमानिन्] **अहंकारी, घमंडी, दर्पी**।

अभिरत—वि. [सं.] (१) **लीन, लगा हुआ**। (२) **युक्त, सहित**।

अभिरना—क्रि. स. [सं. अभि=सामने+रण=युद्ध] (१) **लड़ना, भिड़ना**। (२) **टेकना, सहारा लेना**।

अभिराम—वि. [स.] **आनंददायक, सुंदर, रम्य**। उ.—नैन चकोर सतत दरसन ससि, कर अरचन अभिराम—२-१२।

संज्ञा पु.—**आनंद, सुख**।

अभिरामिनि—वि. स्त्री. [हिं. अभिरामिनी] (१) **रमण करनेवाली, व्याप्त होनेवाली**। (२) **सुंदर, रम्य**। उ०—यमुना पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई यामिनि। सुंदर ससि गुन रूप राग निधि अंग अंग अभिरामिनि—पृ. ३४४।

अभिलाख—संज्ञा पुं. [सं. अभिलाष] **इच्छा, मनोरथ**।

अभिलाखना—क्रि. स. [सं. अभिलषण] **चाहना, इच्छा करना**।

अभिलाख्यौ—क्रि. स. [सं. अभिलषण, हिं. अभिलाखना] **इच्छा की, चाहा**। उ०—बिधि मन चकित भयौ बहुरि ब्रज कौं अभिलाख्यौ—४९२।

अभिलाष—संज्ञा पु. [सं.] **इच्छा, मनोरथ**। उ०—(क) पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो)। संपति दै बाकी पतिनी कौं, मन अभिलाष पुराए (हो)—१-७। (ख) पेम-तिय-रति अभिलाष निसादिन मन-पिटरी लै भरतौ—१-२०३।

अभिलाष्यौ—क्रि. स. भूत. [स. अभिलषण, हिं. अभिलाखना] **इच्छा की, चाहा**। उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरबाऊ—१०-२२१।

अभिलासी—वि. [सं. अभिलाषिन्, हिं. अभिलाषी] **चाह रखनेवाला, इच्छुक, रुचि रखनेवाला**। उ०—निर्गुन कौन देस कौ बासी।......... कैसो बरन भेष है कैसो केहि रस में अभिलासी—३०८२।

अभिलासा—संज्ञा पु. [स अभिलाषा] **इच्छा, चाह, कामना**।

अभिषेक—संज्ञा पुं. [सं.] **सविधि मंत्र-पाठ के साथ जल छिड़ककर अधिकार प्रदान करना**।

अभिसरन—संज्ञा पु. [सं. अभिशरण] **सहारा, आश्रय, शरण**।

अभिसरना—क्रि. अ. [स. अभिशरण] **जाना, प्रस्थान करना**।

अभिसार—संज्ञा पु. [सं.] (१) **सहारा, अवलंब**। (२) **नायक या नायिका का प्रेमिका या प्रेमी से मिलने के लिए संकेत-स्थल को जाना**।

अभिसारना—क्रि. अ. [सं. अभिसारणम्] (१) **जाना, घूमना** (२) **प्रिय से मिलने के लिए नायिका का संकेत-स्थल को जाना**।

अभिसारी—क्रि. अ. [सं. अभिसारणम्, हिं. अभिसारना] **घूमे-फिरे, विचरण किया, बिहार किया**। उ.—धनि गोपी धनि ग्वारि धन्य सुरभी बनचारी। धनि इह पावन भूमि जहाँ गोविंद अभिसारी—३४४३।

अभू—क्रि. वि. [हिं. अब+हू=भी] **अब भी**।

अभूखन--संज्ञा पु. [सं० आभूषण] **गहने, भूषण।**

अभूत--वि. [सं.] **अपूर्व, विलक्षण, अनूठी।** उ.--उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत उठाए। नील जलद पर उडुगन निरखत, तजि सुभाव मनु तड़ित छपाए--१०-१०४।

अभूषन--संज्ञा पु. [सं. आभूषण] **गहना, अलंकार।** उ०--करि आलिंगन गोपिका, पहिरैं अभूषन चीर--१०-२६।

अभेद--संज्ञा पु. [स.] (१) **अभिन्नता।** (२) **एक-रूपता, समानता।**

वि.-- (१) **भेदशून्य।** उ०-- इह अछेद अभेद अबिनासी। सर्ब गति अरु सर्ब उदासी--१२-४। (२) **एकरूप, समान।**

वि. [स. अभेद्य] **जिसको भेदा या छेदा न जा सके।**

अभेरा--संज्ञा पु. [स. अभि=सामने+रण=लड़ाई] **रगड़, टक्कर।**

अभेव--संज्ञा पु. [स अभेद] **अभेद, एकता, अभिन्नता।** वि.--**अभिन्न एक।**

अभै--वि० [स० अभय] **निर्भय, निडर।**

मुहा०--अभै (पद) दियौ--**निर्भयकर दिया।** उ०--(क) ध्रुवहिं अभै पद दियौ मुरारी--१-२८। (ख) सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ--१-१२१।

अभोग--वि० [स०] **जिसका भोग न किया गया हो, अछूता।**

अभोगी--वि. [स० अ=नहीं+भोगी=भोग करनेवाला] **इन्द्रियों के सुख से उदासीन।**

अभोज--वि. [स० अभोज्य] **न खाने योग्य, अखाद्य।**

अभ्यन्तर--वि. [स० अभि+अन्तर] **भीतरी, हृदय की।**

संज्ञा पुं० [स०] (१) **हृदय, अन्तःकरण।** उ०--अभ्यन्तर अन्तर बसे पिय मो मन भाए--१६६४। (२) **मध्य, बीच।** उ०--हमारी सुरत लेत नहिं माधो। तुम अलि सब स्वारथ के गाहक नेह न जानत आधो। निसि लौ मरत कोस अभ्यन्तर जो हिय कहो सु थोरी। भ्रमत भोर सुख भोर सुमन सँग कमल देत नहिँ कोरी--३२४४।

अभ्यास--संज्ञा पुं० [सं०] **बार बार एक काम को करना, अनुशीलन, आवृत्ति।** उ०--नाना रूप निसाचर अद्भुत, सदा करत मद-पान। ठौर-ठौर अभ्यास महाबल करत कुन्त-असि-बान--९-७५।

अभ्र--संज्ञा पुं० [स०] (१) **आकाश।** उ०--निरखि सुन्दर हृदय पर भृगु-पाद परम सुलेख। मनहुँ सोभित अभ्र-अन्तर सभुभूषन बष--६३५। (२) **मेघ, बादल।**

अमंगल--वि० [स०] **मंगलरहित, अशुभ।**

संज्ञा पु०--**अकल्याण, दुख, अशुभचिह्न।** उ०--(क) भागे सकल अमगल जग के--१०-३२। (ख) सूर अमंगल मन के भागे--२३६७।

अमंद--वि० [स० अ=नहीं] **जो धीमा न हो, तेज (प्रकाश वाला)।** उ०--रही न सुधि सरीर अरु मन की पीवति किरनि अमद--१०-२०३।

अमनिया--वि० [स० अ+मल, अथवा कमनीय] **शुद्ध, पवित्र, अछूतो।**

अमनैक--संज्ञा पुं० [स. आम्नायिक=वंश का, अथवा स० आत्मन। प्रा० अप्पण, हि० अपना से 'अपनैक'] (१) **अधिकारी।** (२) **ढीठ, साहसी।**

अमर--वि० [स०] **जो मरे नहीं, चिरजीवी।** उ०--(क) मेरे हित इतनौ दुख भरत। मोहिँ अमर काहे नहिँ करत--१-२२६। (ख) अज अबिनासी अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ--२-३६।

संज्ञा पुं०--**देवता, सुर।**

अमरख--संज्ञा पु० [स० अमर्ष=क्रोध] **कोप, रिस।**

अमरखी--वि० [सं० अमर्ष] **क्रोधी, बुरा माननेवाला।**

अमरपद--संज्ञा पु० [स०] **मोक्ष, मुक्ति।**

अमरपन--संज्ञा पु० [स०] **अमरत्व, अमरता।** उ०--ग्रह नछत्र अरु बेद अरघ करि खात हरष मन बाढो। तातै चहत अमर पद तन को समुझि समुझि चित काढो--स० ६५।

अमरपुर--संज्ञा पु [स.] **अमरावती।**

अमरपुरी--संज्ञा स्त्री० [स०] **अमरावती।**

अमरराज--संज्ञा पु. [स.] **देवताओं का राजा, इन्द्र।**

अमरा--संज्ञा स्त्री. [स.] **इन्द्रपुरी, अमरावती।**

अमराई, अमराव--संज्ञा स्त्री. [स. आम्रराजि] **आम का बगीचा।**

अमरराजसुत—संज्ञा पु. [सं. अमरराज=इंद्र + (इंद्र का) सुत=अर्जुन=पार्थ (पार्थ=पाथ=पंथ)] **मार्ग, रास्ता**। उ.—माधौ बिलम बिदेस रहो री। अमरराजसुत नाम रइनि दिन निरखत नीर बहो री—सा. उ.—५१।

अमरापति—संज्ञा पु. [सं.] **इंद्र**। उ.—अमरापति चरनन लै परयौ जब बीते जुग गुन की जोर—९९८।

अमल—वि [सं.] (१) **निर्मल, स्वच्छ**। उ.—भूषन सार सूर स्रम सीकर सोभा उडत अमल उजियारी—सा. ५१। (२) **निर्दोष, पापशून्य**। (३) **सुन्दर**। उ.—चपकली सी राधिका राजत अमल अदोष—२०६५।

संज्ञा पु. [अ] (१) **बान, टेव, आदत**। उ.—(क) आनँदकंद चद मुख निसि दिन अवलोकत यह अमल परचो। सूरदास प्रभु सो मेरी गति जनु लुब्धक कर मीन तरचो—१०-८६१। (ख) हरि दरसन अमल परचो लाज न लजानी। (२) **प्रभाव**। (३) **अधिकार, शासन**।

अमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **राधा की एक सखी गोपी का नाम**। उ—कहि राधा किन हार चुरायो। ब्रज युवतिनि सबहिन मैं जानति घर घर लै लै नाम बतायौ।......। अमला अवला कंजा मुकुना हीरा नीला प्यारि—१५८०।

अमातना—क्रि. स. [स आमंत्रण] **बुलाना, निमंत्रित करना, न्योता देना**।

अमाति—क्रि. स. [सं. आमंत्रण, हि. अमातना] **आमंत्रित करके, निमंत्रण देकर, आह्वान करके**। उ.—कह्यो महरि सौ करौ चडाई, हम अपने घर जाति। तुमहूँ करौ भाग सामग्री, कुल-देवता अमाति—८१३।

अमान—वि. [स.] (१) **अपरिमित, परिमाणरहित**। (२) **अनगिनती, बहुत**। (३) **गर्वरहित, निरभिमान, सीधा-सादा**। (४) **मानशून्य, अप्रतिष्ठित, अनादृत**।

अमाना—क्रि. अ. [स. अ=पूरा + मान = माप] (१) **समाना, अँटना**। (२) **फूलना, उमड़ना, इतराना**।

अमानी—वि. [सं. अमानिन्] **घमंडरहित, निरभिमानी**।

क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अमाना] **फूल गईं, इतराने लगीं**। उ.—करि कछु ज्ञान अभिमान जान दै है कैसी मति ठानी। तन धन जानि जाम जुग छाया भूलति कहा अमानी।

अमानुष—वि. [स.] (१) **जो मनुष्य से न हो सके**। (२) **जो मनुष्य के स्वभाव से बाहर हो**।

अमाप—वि. [सं] **जो मापा न जा सके, असीम, अपरिमित**। उ.—उलटी रीति नंदनंदन की घरि घरि भयौ सँताप। कहियो जाइ जोग आराधै अबिगत अकथ अमाप—२९७१।

अमाया—वि. [स.] (१) **मायारहित, निर्लिप्त**। उ.—आदि सनातन, हरि अविनासी। सदा निरतर घट-घट बासी।......। जरा भरन तै रहित अमाया। मातु पिता, सुत बंधु न जाया—१०-३। (२) **निस्वार्थ, निष्कपट, निश्छल**।

अमारग—संज्ञा पु. [सं.] (१) **कुमार्ग, कुराह**। उ०—माधौजू, यह मेरी इक गाय।.....। यह अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति—१-५१। (२) **बुरी चाल, दुराचरण**।

अमिट—वि. [सं. अ = नहीं + हिं. मिटना] **जो नष्ट न हो, स्थायी, अटल, अवश्यंभावी**।

अमित—वि. [सं.] (१) **अपरिमित, असीम, बेहद**। (२) **बहुत अधिक**। उ.—(क) अबिगत-गति कछु कहत न आवै। ज्यौं गूँगै मीठे फल कौ रस अतरगत ही भावै। परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै—१-२। (ख) अंग अग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावहि ठाउँ—६६३।

अमिय—संज्ञा पु. [सं. अमृत, प्रा. अमिअ] **अमृत**।

अमिरती—संज्ञा स्त्री. [स. अमृत, हि. इमरती] **इमरती नाम की मिठाई जो उर्द की फेंटी हुई महीन पीठी और चौरेठे की बनती है**।

अमिल—वि. [सं. अ=नहीं+हिं. मिलना] (१) **जो न मिल सके, अप्राप्य**। (२) **बेमेल, बेजोड़**। (३) **जिससे मेल-जोल न हो**। (४) **ऊबड़-खाबड़, ऊँचा-नीचा**।

अमी—संज्ञा पु. [सं. अमृत, प्रा. अमिअ, हिं. अमिय] (१) **अमृत**। (२) **अमृत के समान**। उ.—(क) अमी-बचन सुनि होत कुलाहल देवनि दिवि दुदुभी

बजाई—६-१६६। (ख) स्याम मनि से अंग चंदन, अमी से अबिसेक—सा. उ.—५।

अमीगलित—वि. [सं] **अमृत से हीन या रहित।** उ.—घट सुत असन समै सुत आनन अमीगलित जैसे मेत—सा. उ.—२६।

अमीकर—संज्ञा पु. [अमृतकर] **चंद्रमा।**

अमीत—सज्ञा पु. [स. अमित्र, प्रा. अमित्त] **जो मित्र न हो, शत्रु।**

अमीन—सज्ञा पुं. [अ.] **एक अदालती कर्मचारी।** उ.—नैन-अमीन अधर्मिनि कै बस, जहँ कौ तहाँ छयौ—१-६४।

अमूल्य—वि. [सं.] (१) **अनमोल।** (२) **बहुमूल्य।**

अमृत—संज्ञा पु. [सं.] **पुराणानुसार समुद्र से निकले चौदह रत्नों में एक जिसे पीकर जीव अमर हो जाता है।**

अमृतकुंडली—सज्ञा स्त्री. [स] **एक प्रकार का बाजा।**

अमेली—वि. [स. अमेलन] **अनमिल, असबद्ध।**

अमोघ—वि [स.] **अव्यर्थ, अचूक, वृथा न होनेवाला।** उ.—प्रभु तव माया अगम अमोघ है लहि न सकत कोउ पार—३४६४।

अमोचन—सज्ञा पु. [स.] **छुटकारा न होना।**

वि.—**न छूटने वाला, दृढ़।** उ०—मूँदि रहे पिय प्यारी लोचन अति हित बेनी उर परसाए बेष्टित भुजा अमोचन—पृ. ३१८।

अमोरि—संज्ञा स्त्री. [हि. अमोरी (आम+औरी-प्रत्य.] (१) **कच्चा आम, अँबिया।** (२) **आमड़ा, अम्मारी।** उ०—और सखा सब जुरि जुरि ठाढे आप दनुज सँग जोरि। फल को नाम बुझावन लागे हरि कहि दियौ अमोरि—२३७७।

अमोल—वि. [सं. अ=नहीं+हिं. मोल] **अमूल्य।**

अमोलक—वि. [सं. अ+हिं. मोल] **अमूल्य, बहुमूल्य।** उ०—लोभी, लंपट, बिषयिनि सो हित, यौ तेरी निबही। छाँडि कनक-मनि रतन अमोलक काँच की किरच गही—१-३२४।

अमोले—वि. [हिं. अमोल] **बहुमूल्य।** उ०—देखिबे की साध बहुत सुनि गुन बिपुल अतिहि सुदर सुने दोउ अमोले—२४६७।

अमोही—वि. [सं. अ=नहीं+मोह] (१) **विरक्त, उदासीन** (२) **निर्मोही, निष्ठुर।**

अम्मर—सज्ञा पु. [स. अबर] **वस्त्र।**

मुहा०—अम्मर लेत—**वस्त्र हरण करना, वस्त्र हटाना।** उ०—सुता दधिपति सौ क्रोध भरी। अम्मर लेत भई खिझि बालहिं सारँग सग लरी—२०७५।

अम्रित—सज्ञा पु. [स. अमृत] **सुधा, पियूष, अमृत।** उ०—हरि कह्यौ साग-पत्र मोहि अति प्रिय, अम्रित ता सम नाही—१-२४१।

अयन—सज्ञा पु. [सं.] **घर, वासस्थान।** उ०—जाको अयन जल मे तेहि अनल कैसे भावै—३१२६।

अयाचक—वि. [सं] (१) **न माँगनेवाला।** (२) **संतुष्ट।**

अयाची—वि. [स. अयाचिन्] (१) **जो न माँगे।** (२) **पूर्णकाम, सतुष्ट।** उ०—किए अयाची याचक जन बहुरि—१०उ.-२४।

अयान—वि [स. अजान] **अनजान, अज्ञानी।** उ०—सूरदास प्रभु कहौ कहाँ लागे है अयान मतिहीनी—३४४६।

अयानप, अयानपन—सज्ञा पु. [हि. अजान+प या पन] (१) **अनजानपन** (२) **भोलापन, सीधापन।**

अयाना—वि पु. [हि. अजान] **अज्ञानी, बुद्धिहीन, अनजान।**

अयानी—वि. स्त्री. [हिं. अजान, अयान (पु.)] (१) **अज्ञान, बुद्धिहीन।** उ०—मोहन कत खिझत अयाना लिए जाइ हिऐ नँदरानी—१०-१८३। (२) **मूर्छित, संज्ञाहीन, बेहोश।** उ०—द्रिगजापति पतिनी पति सुत के देखत हम मुर्झानी। उठि उठि परत धरनि पर सुदर मंदिर भई अयानी—सा० ५५।

अयाने—वि. [हि. अजान] **अजान, बुद्धिहीन।** उ०—(क) ऊधौ जाह तुम्है हम जानै।... ....बडे लोग न बिवेक तुम्हारे ऐसे भए अयाने—२६०६। (ख) जानत तीनि लोक की महिमा अबलनि काज अयाने—३२२१।

अयानो—वि. [हिं. अजान] **बुद्धिहीन, अज्ञानी।** उ.—जानि-बूझि कैहौ कत पठयौ सठ बाबरो अयानो—३४६७।

अयान्यौ—वि. [हिं. अजान] **अज्ञानता से युक्त, मूर्खता पूर्ण**। उ.—चूक परी मोको सबही अग कहा करौं गई भूलि सयान्यौ। वे उतही को गए हरषमन मेरी करनी समुझि अयान्यौ—१४६०।

अयोग—संज्ञा पु. [सं.] **(१) योग का अभाव। (२) कुसमय। (३) कठिनाई, संकट। (४) अप्राप्ति, असंभव।**

वि [सं.] **बुरा।**

वि [स.] **अयोग्य, अनुचित**। उ.—सिर पर कस मधुपुरी बैठो छिनकही मे करि डारौ सोग। फूँकि फूँकि धरणी पग धारौ अब लागी तुम ररन अयोग—१४६७।

अ ोग—वि. [स. अयोग्य] **जो योग्य न हो, निकम्मा, अपात्र।**

अयोपतिका—सज्ञा स्त्री. [सं. आगतपतिका] **अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक। ऐसी नायिका जिसका पति बाहर से आया हो**। उ.—सूर अनसंग तजत तावत अयोपतिका रूप—सा. ३९।

अरंग—संज्ञा पु. [स अर्घ्य=पूजा द्रव्य] **सुगंध, महक।**

अरंभ—सज्ञा पु [स. आरभ] **आरंभ, शुरू**। उ.—जग अरंभ करि नृप तहँ गयौ—९-३।

अरंभना—क्रि. स. [स. आ+रभ=शब्द करना] **बोलना, नाद करना।**

क्रि. स. [सं० आरभ] **आरंभ करना, शुरू करना।**

क्रि. अ. [सं० आरभ] **आरंभ होना, शुरू होना।**

अर—सज्ञा पु. [हिं. अड] **हठ, अड़, जिद**। उ.— हौ तौ न भयौ री घर, देखत्यौ तेरी यौ अर, फोरतौ बासन सब, जानति बलैया—३७२।

सज्ञा पु. [स. और] **शत्रु, वैरी**। उ.—निसि दिन कलमलात सुनि सजनी सिर पर गाजत मदन अर। सूरदास प्रभु रही मौन ह्वै कहि न सकति मैन के भर—२७६४।

अरक—सज्ञा पु. [सं.] **सेवार।**

अरकना—क्रि. अ. [अनु०] **टकराना, अररा कर गिरना।**

क्रि. अ. [हिं. दरकना] **फटना।**

अरगजा—संज्ञा पु. [हिं. अरग+जा] **शरीर में लगाने का एक सुगंधित द्रव्य**। उ.—खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन-अंग—१-३३२।

अरगजी—संज्ञा पुं. [हिं. अरगजा] **एक रंग जो अरगजे की तरह होता है।**

वि.—**(१) अरगजे रंग का। (२) अरगजा की सुगंध का**। उ.—उर धारी लटैं छूटी आनन पर भीजी फूलेलन सौं आली हरि सग केलि। सोधे अगरजी अरु मरगजी सारी केसरि खोरि बिराजति कहुँ कहुँ कुचनि पर दरकी अँगिया घन बेलि—१५८२।

अरगजे—सज्ञा पुं. [हिं. अरगजा] **एक सुगंधित द्रव्य**। उ.—भले हाजू जाने लाल अरगजे भीने मौल केसरि तिलक भाल मैन मत्र काचे—२००३।

वि.—**अरगजा की सुगंध से युक्त**। उ.—तही जाहु जहँ रैन बसे हो। काहे को दाहन हो आए अग अग देखति चिन्ह जैसे हो। अरगजे अग मरगजी माला बसन सुगंध भरे से हो—१९५३।

अरगट—वि. [हिं. अलगट] **अलग, भिन्न।**

अरगल—सज्ञा पु. [स. अर्गल] **ब्योंड़ा, गज।**

अरगाइ—क्रि. अ. [हिं. अलगाना] **(१) अलग, पृथक। (२) सन्नाटा खींचे हुए, मौन, चुप साधे हुए**। उ०—(क) ब्रह्मादिक सब रहे अरगाइ। क्रोध देखि कोउ निकट न जाइ—७-२। (ख) सूनै सदन मथनियाँ कै ढिग, बैठि रहे अरगाइ—१०-२६५। (ग) सुनि लीन्हो उनही को कह्यौ। अपनी चाल समुझि मन माही गुनि अरगाइ रह्यौ—३४६७।

मुहा—प्रान रहे अरगाइ—**प्राण सूख गए, विस्मित हो गए**। उ०—जासो जैसी भाँति चाहिए ताहि मिल्यौ त्यौ छाइ। देस देस के नृपति देखि यह प्रान रहे अरगाइ—१० उ १६२।

अरगाई—क्रि. अ. [हिं. अलगाना] **(१) सन्नाटा खीच कर, चुप्पी साधकर, मौन होकर**। उ०—एक समय पूजा कै अवसर नद समाधि लगाई। सालिग्राम मेलि मुख भीतर बैठ रहे अरगाई—१०-२६३। (ख) कुँवरि राधिका प्रात खरिक गई तहाँ कहूँ धौ कार खाई। यह सुनि महरि मनहिं मुसुक्यानी, अबहि रही मेरै गृह आई। सूरस्याम राधहिं कछु कारन, जसुमति समुझि रही अरगाई—७५४। (ग) जननी अतिहि भई रिसिहाई। बार-बार कहै कुँअरि राधिका री मोती श्री कहाँ गँवाई। बूझे ते तोहि ज्वाब न आवै कहाँ

चीन्हों। आपु भए पति वह अरधंगी। गोपिन नाव धरयौ नवरंगी—२६७५।

अरध—वि. [सं. अर्द्ध] **आधा, अपूर्ण**। उ.—(क) अंत औसर अरध-नाम-उच्चार करि सुम्रत गज ग्राह तैं तुम छुडाए—१-११६। (ख) कहै तौ जनक गेह दै पठवौं अरध लंक कौ राज—६-७६।

क्रि. वि. [सं. अधः] **अन्दर, भीतर**।

अरधधाम—संज्ञा पुं. [सं. अर्द्ध =आधा+धाम=घर (घर का आधा=पाखा) (पाखा=पक्ष=दो सप्ताह)] **पक्ष**। उ.—सखी री सुनु परदेसी की बात। अरध बीच दै गयौ धाम को हरि अहार चलि जात—सा. २३।

अरधांगी—संज्ञा स्त्री. [स. अर्द्धांगिनी] **पत्नी**।

अरनि—संज्ञा स्त्री. [सं. अल = वारण करना, हिं. अडना] **हठ, टेक**। उ.—बरषि निकरे मेघ पाइक बहुत कीने अरनि। सूर सुरपति हारि मानी तब परे दुहुँ चरनि—६६५।

अरन्य—संज्ञा पुं [सं. अरण्य] **वन, जंगल**। उ.—भली कही यह बात कन्हाई, अतिहीं सघन अरन्य उजारि—४७२।

अरपन—संज्ञा पुं [सं. अर्पण] (१) **देना, दान**। (२) **भेंट**।

अरपना—क्रि. स [सं. अर्पण] **भेंट करना, देना**।

अरपित—वि. [सं. अर्पित] **अर्पण किया हुआ**।

अरपी—क्रि. स. [सं. अर्पण, हिं. अरपना] **अर्पण की, भेंट की, दान दी**। उ.—जाबवती अरपी कन्या भरि मनि राखी समुहाय। करि हरि ध्यान गयौ हरि पुर कौ जहाँ जोगेस्वर जाय।

अरपै—क्रि. स. [सं. अर्पण, हिं. अरपना] **अर्पण किये**। मुहा.—प्रान अरपै—**प्रान सूख गये, विस्मित होगये। अर्पणकर दिये**। उ—तड़ित आघात तरराात उतपात सुनि नर-नारि सकुचि तनु प्रान अरपै—६४६।

अरप्यौ—क्रि स. भूत. [सं. अर्पण, हिं. वर्त. अरपना] **अर्पण किया, भोग लगाया**। उ.—(क) पट अन्तर दै भोग लगायौ, आरति करी बनाइ। कहत कान्ह, बाबा तुम अरप्यौ, देव नहीं कछु खाइ—१०-२६१। (ख) हम प्रतीति करि सरबस अरप्यौ गन्यौ नहीं दिन राती—३४१८।

अरबर—वि. [अनु.] (१) **ऊटपटाँग, असंबद्ध**। (२) **कठिन**।

अरबराइ—क्रि अ. [हिं. अरबराना] **लड़खड़ाकर, लटपटाकर, अड़बड़ाकर**। उ.—(क) सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया—१०-११५। (ख) गहे अँगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत। अरबराइ गिरि परत हैं, कर टेक उठावत—१०-१२२।

अरबराना—क्रि. अ. [हिं. अरबर] (१) **घबड़ाकर, व्याकुल होकर**। (२) **लटपटाकर, अड़बड़ाकर**।

अरबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. अरबर] **घबड़ाहट, हड़बड़ी**।

अरबिंद—संज्ञा पु [स. अरविंद] **कमल**।

अरबीला—वि. [अनु.] **भोलाभाला, अंडबंड**।

अरभक—वि. [सं. अर्भक] **छोटा, अल्प**।

संज्ञा पुं.—**बच्चा, लड़का**।

अरररात—क्रि. स [हि. अरराना (अनु.)] **टूटने या गिरने का अररर शब्द करके गिरते** (हुए)। उ.—अरररात दोउ बृच्छ गिरे धर। अति अघात भयौ ब्रज भीतर—३६१।

अरराई—क्रि. स. [हि. अरराना (अनु)] **टूटने या गिरने का अररर शब्द करके**। उ.—तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। जर सहित अरराइ कै, आघात सब्द सुनाइ—३८७।

अरराात—कि. स. [हि. अरराना (अनु.)] **अररर शब्द करते हैं**। उ—(क) बरत बन पात, भहरात, झहरात अरराात तरु महा धरनी गिरायौ—५६६। (ख) घटा घनघोर घहरात अरराात दरराात सरराात ब्रज लोग डरपे—६४६।

अरराना—क्रि. स. [अनु] (१) **टूटने या गिरने का अररर शब्द करना**। (२) **तुमुल शब्द करके गिरना**। (३) **सहसा गिर पड़ना**।

अरवाती—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओलती] **छाजन का किनारा जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है। ओलती, ओरौनी**। उ०—सजनी नैना गये भगाइ। अरवाती को नीर बेरडी कैसे फिरिहै धाइ—पृ. ३३१।

अरस—वि. [स.] **नीरस, फीका। (२) गँवार, अनाड़ी।**

संज्ञा पुं. [सं. अलस] **आलस्य।** उ०—नहिं दुरत हरि पिय कौ परस। मन को अति आनंद, अधरन रँग, नैनन को अरस—२१०८।

सज्ञा पु. [अ. अर्श] **(१) छत, पाटन। (२) धरहरा, महल।** उ०—मार मार कहि गारिहे धृग गाय चरैया। कंस पास ह्वै आइयै कामरी उढैया। बहुरि अरस तै आनि कै तब अंबर लीजै। .....। अरस नाम है महल को जहाँ राजा बैठे। गारी दै दै सब उठे भुज निज कर ऐंठे—२५७५।

अरसना—क्रि. अ. [सं. अलस] **शिथिल पड़ना, ढीला होना, मंद होना।**

अरसना परसना—क्रि. स. [स. स्पर्शन] **छूना। (२) मिलना, भेंटना, आलिंगन करना।**

अरस परस—क्रि स. [सं. स्पर्शन, हि. अरसना-परसना] **छूकर, मिलकर, लिपटकर, झपटकर।** उ०—(क) खलत खात गिरावही, झगरत दोउ भाई। अरस-परस चुटिया गहै, बरजति है माई—१०-१६२। (ख) चलत गति करि रुनित किंकिनि घूँघरू झनकार। मनो हंस रसाल बानी अरस परस बिहार—पृ० ३४६। (ग) जो जेहि बिधि तासो तैसेहि मिलि अरस परस कुसलात—२९४१।

सज्ञा पु [स. स्पर्श] **आँखमिचौनी का खेल, छुआछुई।**

अरसि परसि—क्रि. स. [सं. स्पर्शन] **मिल-भेंटकर, आलिंगन करके।** उ०—काहू के मन कछु दुख नाही। अरसि परसि हँसि हँसि लपटाही।

अरसाना—क्रि. अ. [स. अलस] **अलसाना, निद्राग्रस्त होना।**

अरसाय—क्रि. अ [स. अलस, हिं. अरसाना, अलसाना] **अलसाकर, निद्राग्रस्त होकर।** उ०—मरगजे हार बिथुरै बार देखियत आइ गई एक याम यामिनी। और सोभा सोहाई अंग अंग अरसाय बोलति है कहा अलसामिनी—१५८१।

अरसी—सज्ञा पु [सं. अतसी] **अलसी, तीसी।**

अरसीला—वि. [स. अलस] **आलस्ययुक्त।**

अरसौंहाँ—वि. [स. आलस्य] **आलस्ययुक्त।**

अरहना—सज्ञा स्त्री. [स. अर्हण] **पूजा।**

अराज—वि [सं. अ+राजन्] **बिना राजा का।** उ.—जग अराज ह्वै गयौ, रिषिनि तब अति दुख पायौ। लै पृथ्वी कौ दान, ताहि फिरि बनहिं पठायौ—९-१४।

अराधन—सज्ञा पु [स. आराधन] **पूजा, उपासना।**

अराधना—क्रि. स. [सं. आराधन] **(१) उपासना करना। (२) पूजा करना। (३) ध्यान करना।**

अराधा—सज्ञा स्त्री. [हिं. आराधना] **सेवा, पूजा, उपासना।** उ.—जेहि रस सिव सनकादि मगन भए सभु रहत दिन साधा। सो रस दिए सूर प्रभु तोको सिवा न लहति अराधा—१२३४।

अराध्यौ—क्रि. स. [हि. आराधना] **उपासना की।** उ.—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ—३०१४।

अराअरी—सज्ञा स्त्री. [हि. अड़ना] **अड़ाअड़ी, होड, स्पर्धा।**

अरिंद—संज्ञा पु. [सं. अरि+इंद्र] **शत्रु।**

अरिंदम—वि. [सं.] **(१) शत्रु का दमन करनेवाला। (२) विजयी।**

अरि—सज्ञा पु. [सं.] **शत्रु, बैरी।**

क्रि. अ. [हिं. अडना] **अड़कर, हठ करके।** उ.—को कर-कमल मथानी धरिहै को माखन अरि खैहै—२५१२।

अरिकेसी—संज्ञा पु. [सं. अरि+केशी] **केशी दैत्य का शत्रु, कृष्ण।**

अरियाना—क्रि. स. [सं. अरे] **'अरे' कहकर बुलाना, तिरस्कार करना।**

अरिष्ट—संज्ञा पु. [सं.] **एक राक्षस का नाम जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।** उ.—अघ-अरिष्ट, केसी, काली मथि, दावानलहिं पियौ—१-१२१।

वि. [सं.] **(१) दृढ, अविनाशी। (२) शुभ। (३) बुरा, अशुभ।**

अरी—अव्य. [स. अयि] **संबोधनार्थक अव्यय जिसका प्रयोग प्रायः स्त्रियों के लिए ही होता है।** उ.—अरी अरी सुदर नारि सुहागिनि, लागौं तेरैं पाउँ—९-४४।

क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अडना] **अड गयी, फँसी,**

उलझी। उ.—खेवनहार न खेवत मेरैं, अब मो नाव अरी—१-१८४।

अरुंधति—संज्ञा स्त्री. [सं. अरुधती] **वशिष्ट मुनि की स्त्री**। उ.—रमा, उमा अरु सची अरुधति निसि दिन देखन आवै—पृ. ३४५।

अरु—सयो. [हिं. और] **शब्दों या वाक्यों को जोड़ने वाला संयोजक शब्द**। उ.—बिद्रुम अरु बंधूक बिब मिलि देत कबिन छबि दान—सा. उ.-१५।

अरुचि—संज्ञा स्त्री. [स.] **रुचि का न रहना, अनिच्छा**।

अरुझत—क्रि. अ. [हिं. अरुझना] **उलझते हैं, फँसते हैं**। उ.—इक परत उठत अनेक अरुझत मोह अति मनसा मही—१० उ.-२४।

अरुझति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अरुझना] **लड़ती-झगड़ती है**। उ.—कहौ तुमहि हमको कहा बूझति। लै लै नाम सुनावहु तुमही मोसो काहे अरुझति—११०६।

अरुझाइ—क्रि. स. [हिं. अरुझाना] **उलझाकर, फँसा कर**। उ.—(क) बाबा नद, झखत किहिँ कारन, यह कहि मयामोह अरुझाइ। सूरदास प्रभु मातु-पिता कौ, तुरतहिँ दुख डारचौ बिसराइ—५३१। (ख) नागरि मन गई अरुझाइ। अति बिरह तन भई ब्याकुल, घर न नैंकु समाइ—६७८।

अरुझाई—क्रि. स. [हिं. अरुझना] **उलझाकर, फँसाकर**।

यौ.—रहे अरुझाई-**उलझा रहे हैं, फँसा रहे हैं**। उ.—कहत सखा हरि सुनत नही सो, प्यारी सौं रहे चित अरुझाई—७१७।

अरुझाए—क्रि. स. [हिं. अरुझना, अरुझाना] (१) **उलझा दिये, फँसा दिये**। उ.—भक्त बछल बानो है मेरौ, बिरुदहिँ कहा लजाऊँ। यह कहि मया-मोह अरुझाए सिसु ह्वै रोवन लागे—१०-४। (२) **लटका दिये, टाँग दिये**। उ.—लीन्हे छीनि बसन सबही के सबही लै कुजनि अरुझाए—१०६३।

अरुझाने—क्रि. स. [हिं. अरुझना] **उलझा दिया। फँसा दिया**। उ.—मन हरि लीन्हो कुँवरि कन्हाई ....। कुटिल अलक भीतर अरुझाने अब निरुवारि न जाई—१४७७।

अरुझानो—क्रि. अ. [हिं. अरुझना] **उलझ गया, फँस गया**। उ.—मेरौ मन हरि चितवनि अरुझानो—१२०६।

अरुझावत—क्रि. स. [हिं. अरुझाना] **उलझाते हो, फँसाते हो, रोकते हो**। उ.—सूरस्याम माखन दधि लीजै जुवतिन कत अरुझावत—११०४।

अरुझाहीं—क्रि. अ. [हिं. अरुझना] **उलझते हैं, झगड़ते हैं**। उ.—जाइ न मिलो सूर के प्रभु को अरुझेन सो अरुझाही—पृ० २३८।

अरुझि—क्रि. अ. [हिं. अरुझना] **उलझ गया, फँसा,**

यौ.—अरुझि परयो (रह्यो) **उलझ गया, फँस गया**। उ०—(क) ग्वाल-बाल सब संग लगाए, खेलत मैं करि भाव चलत। अरुझि परचौ मेरौ मन तब तै, कर झटकत चक-डोरि हलत—६७१ (ख) क्यौ सुरझाऊँ री नंदलाल सौं अरुझि रह्यौ मन मेरौ—४१७०।

अरुझी—क्रि. अ. [हिं. अरुझना] (१) **उलझ गयी, फँस गयी**। उ.—खसि मुद्रावलि चरन अरुझी। गिरी धरनि बलही—३४५१। (२) **लिपटी है, उलझी है**। उ.—रसना जुगल रसनिधि बोलि। कनक-बेलि तमाल अरुझी सुभुज बंध अखोलि—सा० उ.—५।

अरुझे—क्रि. अ. बहु० [हिं. अरुझना] **उलझ गये, फँसे**। उ.—(क) प्रगटी प्रीति न रही छपाई। परी दृष्टि बृषभानु-सुता की, दोउ अरुझे, निरुवारि न जाई—७२०। (ख) मन तो गयौ नैन है मेरे। ....क्रम क्रम गए, कह्यौ नहि काहू स्याम सग अरुझे रे—पृ० ३२०। (ग) चंचल द्रग अंचल-पट-दुति छबि झलकत चहुँ दिसि झालरी। मनु सेवाल कमल पर अरुझे भँवंत भ्रमर भ्रम चाल री—१०-१४०।

अरुझ्यौ—क्रि. अ. [हिं. अरुझना (उलझना,) **उलझा, फँसा, अटका**। उ—दधि-सुत जामे नँद-दुवार। निरखि नैन अरुझ्यौ मनमोहन, रटत देहु कर बारंबार—१०-१७३।

अरुन—वि. पु [सं. अरुण] **लाल**। उ०—नील खुर अरु अरुन लोचन, सेत सीग सुहाइ—१-५६।

संज्ञा पु.—**सूर्य** । उ.—उगत अरुन बिगत सर्वरी, ससाँक किरनहीन, दीपक सु - मलीन, छीन दुति समूह तारे—१०-२०५ ।

अरुनता—संज्ञा स्त्री. [सं. अरुणता] (१) **ललाई, लालिमा, लाली** । उ.-(क) नान्ही एड़ियनि अरुनता, फल-बिंब न पूजै—१३४ । (ख)—सूर स्याम छबि अरुनता (हो) निरखि हरष ब्रज-बाल—१०-४२ ।

अरुनाई—सं. स्त्री. [हिं. अरुणाई] **लालिमा, रक्तता, लाली** । उ.—लछिमन, रचौ हुतासन भाई ।······ आसन एक हुतासन बैठी, ज्यो कुंदन-अरुनाई—९-१६२ ।

अरुनाए—क्रि. अ. [सं. अरुण,] **लाल रंगे हुये** । उ.—नीलाबर, पाटबर, सारी, सेत, पीत, चूनरी, अरुनाए—७८४ ।

अरुनानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. अरुनाना] **लाल हो गयी** । उ.—बोले तमचुर चारो याम को गजर मारचौ पौन भयौ सीतल तमतमता गई । प्राची अरुनानी भानि किरनि उज्यारी नभ छाई उडगन चंद्रमा मलिनता लई—१६१० ।

अरुनित—वि. [सं. अरुणित] **लाल रंग का, लाल किया हुआ** ।

अरुनिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. अरुणिमा] **लाली, लालिमा** ।

अरुनाना—क्रि. अ. [सं. अरुण] **लाल होना** ।

क्रि. स.—**लाल करना** ।

अरुनारा—वि. [सं. अरुण+आरा (प्रत्य.)] **लाल, लाल रंग का** ।

अरुनोदय—संज्ञा पुं. [सं. अरुण+उदय] **सूर्योदय, उषाकाल** ।

अरुराना—क्रि० स० [हिं० अरुरना] (१) **मरोड़ना** । (२) **सिकोड़ना** ।

अरुलना—क्रि० अ० [सं० अरुस्=घाव] **छिलना, चुभना** ।

अरूप—वि० [सं०] **रूप या आकार से रहित** ।

अरूरना—क्रि० अ० [सं० अरुस्=घाव] **दुखित होना** ।

अरे—अव्य० [सं०] **सम्बोधनार्थक अव्यय ; रे, ऐ, ओ** । उ०—(क) सुनि अरे अंध दसकध, लै सीय मिलि, सेतु करि बंध रघुबीर आयौ—९-१२८ ।

क्रि० अ० [सं० अल=वारण करना, हिं० अड़ना] **(१) रुक गये, ठहरे । (२) अड़ गये, हठ करने लगे, ठान लिया** । उ०—(क) कलबल कै हरि आइ परे । नव रँग बिमल नबीन जलधि पर, मानहुँ द्वै ससि आनि अरे—१०-१४१ । (ख) पठवति हौं मव तिनहिं मनावन निसि दिन रहत अरे री—१४४२ । (ग) को जानै काहे ते सजनी हम सो रहत अरे—१८४१ । (घ) लंपट लवनि अटक नहिं मानत चंचल चपल अरे रे—पृ० ३२५ । (३) **उमड़ कर आये** । उ०—(क) को करि लेइ सहाइ हमारौ प्रलय काल के मेघ अरे—९५३ । (ख) बादर ब्रज पर आनि अरे—९६८ ।

अरेरना—क्रि० स० [हिं.] **रगड़ना** ।

अरै—क्रि० अ० [सं० अल=वारण करना, हिं० अड़ना] **(१) हठ करता है, टेक पकड़ता है** । उ०—जब दधि मथनी टेकि अरै । आरि करत मटुकी गहि मोहन, बासुकि संभु डरै—१४२ । (२) **भिड़ता है, लड़ता है, रगड़ता है** । उ०—कह्यौ न काहू को करै बहुरि अरै एक ही पाइ दै इक पग पकरि पछारचौ —१० उ०-५२ ।

संज्ञा पुं० [सं० हट=जिद] **हठ, टेक, जिद** । उ.- जा कारन तै सुनि सुत सुन्दर, कीन्ही इती अरै । सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माँहि परै—१०-१९५ ।

अरो—क्रि० अ० [हिं० अडना] **अड़ गया, हठ किया, ठान लिया** । उ०—क्यो मारों दोउ नन्द ढोटौना ऐसी अरनि अरो—२४६१ ।

अरोगना—क्रि० अ० [हिं० आरोगना] **खाना** ।

अरोगैं—क्रि. अ. [सं. आ+रोगना (रुज=हिंसा), हिं अरोगना] **खाते हैं, भोजन करते हैं** । उ.—नन्द-भवन मैं कान्ह अरोगैं । जसुदा ल्यावै षटरस भोगै—३९६ ।

अरोच—संज्ञा पुं० [सं. अरुचि] **रुचि का अभाव, अनिच्छा** ।

अरोहना—क्रि० अ० [आरोहण] **चढ़ना, सवार होना** ।

अरौ—क्रि० अ० [हिं० अडना] **रुकते हो, ठहरते हो, अड़ते हो** । उ०—हित की कहत कुहित की लागत इहाँ बेकाज अरौ—३०६६ ।

अर्क—संज्ञा पु० [सं०] **सूर्य**। उ०—बेदन अर्क बिभूषित सोभा बेदी रिच्छ बखानो—सा० १०३।

अरगजा—संज्ञा पु. [हि० अरगजा] **एक सुगन्धित लेप**।

अर्घ—संज्ञा पु. [सं.] (१) **षोड्शोपचार में से एक, जल दूध आदि मिलाकर देवता पर चढ़ाना (२) जलदान। (३) भेंट।**

अर्चन—संज्ञा पु० [सं०] (१) **पूजा। (२) आदर, सत्कार।**

अर्चमान—वि० [सं०] **पूजा करने के योग्य, पूजनीय।**

अर्चित—वि. [सं०] **पूजित।**

अर्जन—संज्ञा पु [स.] (१) **पैदा करना, उपार्जन। (२) संग्रह, संग्रह करना।**

अर्जुन—संज्ञा पु. [स.] (१) **मझले पांडव का नाम। ये परम वीर और धनुर्विद्या में निपुण थे। श्रीकृष्ण से इनकी बडी मित्रता थी। (२) एक वृक्ष। (३) दो वृक्ष जो गोकुल में थे। नारद ऋषि के शाप से कुबेर के दो पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव इन पेड़ों के रूप में जन्मे थे। श्रीकृष्ण ने इनका उद्धार किया था।** उ.—जमल अर्जुन तोरि तारे, हृदय प्रेम बढाइ—४६८। (४) **सहस्रार्जुन। (५) सफेद कनैल। (६) मोर।**

अर्थ—संज्ञा पुं [स.] (१) **शब्द का अभिप्राय, भाव, संकेत।** उ.—एकन कर है अगर कुमकुमा एकन कर केसर लै घोरी। एक अर्थ सो भाव दिखावति नाचति तरुनि बाल बृद्धि भोरी—२४३६। (२) **अभिप्राय, प्रयोजन। (३) हेतु, निमित्त। (४) इंद्रियों के पाँच विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। (५) चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) में से एक, धन सपत्ति।** उ.—कहा कमी जाके राम धनी। ...। अर्थ, धर्म अरु काम मोक्ष फल चारि पदारथ देत गनी—१-३९।

अर्थपति—संज्ञा पु. [सं.] (१) **प्रयोजन का कारण या स्वामी, श्रीकृष्ण।** उ.—हम तौ बँधी स्याम गुन सुदर छोरनहार न कोई। जो ब्रज तजो अर्थपति सूरज सब सुखदायक जोई—सा. १०५। (२) **अर्थापत्ति नामक अलंकार। इसमें एक बात के कहने से दूसरी की सिद्धि आप से आप हो जाती है। उक्त उदाहरण का आशय है—ब्रज में ऐसा कोई नहीं है जो अपने अर्थपति कृष्ण को छोड़ दे जो सब सुखों के दाता है। इससे सिद्ध हो गया कि बिना कृष्ण के सुख नहीं मिल सकता।**

अर्थना—क्रि. स. [स.] **माँगना।**

अर्थाना—क्रि. स. [सं. अर्थ+आना (प्रत्य.)] **अर्थ समझाकर कहना।**

अर्थी—वि. [स. अर्थिन] (१) **चाह रखनेवाला। (२) याचक।**

अर्दना—क्रि. स. [सं. अर्दन=पीडन] **पीड़ित करना।**

अर्धांगिनि—संज्ञा स्त्री. [स. अर्द्धांगिनी] **पत्नी, भार्या।** उ.—कहाँ स्याम की तुम अर्धांगिनी मै तुम सर की नाहीं—२९३७।

अर्धंगी—संज्ञा स्त्री. [सं. अर्द्धंगिनी] **पत्नी, भार्या।** उ—ऐसी प्रीति की बलि जाउँ। सिंहासन तजि चले मिलन कौ सुनत सुदामा नाउँ।......। अर्धंगी बूझत मोहन को कैसे हितू तुम्हारे—१० उ.-६२।

अर्द्धांग—संज्ञा पु. [सं.] **आधा अंग। (२) शिव।**

अर्द्ध—वि. [सं] **दो समभागों में से एक, आधा।**

अर्ध—वि. [सं. अर्द्ध] **आधा।** उ.—अर्ध निसा तिनकौ लै गयौ—१-२८४।

अर्धांगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. अर्द्धांगिनी] **पत्नी भार्या।** उ.—ऊधो यह राधा सो कहियौ।......। कहा स्याम की तुम अर्द्धांगिनी, मै तुम सर की नाही—२९३७।

अर्पत—क्रि. स. [स. अर्पण, हि. अर्पना] **अर्पण करता है, भेंट देता है।** उ—गाँडे नहिँ भोग लगावन पावे। करि करि पाक जबै अर्पत हैं, तबही तब छ्वै आवै—१०-२४९।

अर्पन—संज्ञा पु. [सं. अर्पण] **अर्पण करने की क्रिया, देना।** उ.—सिव-संकर हमकौं फल दीन्हौ। पुहुप, पान, नाना फल, मेवा, षटरस अर्पन कीन्हौ—७६८।

अर्पना—क्रि. स. [स. अर्पण] **अर्पण करना, देना।**

अर्पि—क्रि. स. [स. अर्पण, हि. अर्पना, अरपना] **अर्पण करके, भेंट देकर।** उ.—अगनित तरु फल सुगध-मृदुल-मिष्ट-खाटे। मनसा करि प्रभुहिँ अर्पि, भोजन करि डाटे—९-९६।

अर्पैं—क्रि. स. [सं. अर्पण, हिं. अरपना] **अर्पण करने पर, भोग लगाने पर, भेंट देते हैं।** उ.—बदत बेद-उपनिषद छहौं रस अर्पैं भुक्ता नाहिं। गोपी-ग्वालनि के मडल मैं हँसि-हँसि जूठनि खाहिं—४८७।

अर्यौ—क्रि अ. भूत. [स. अल=वारण करना, हिं. अडना] **(१) अड़ गया, ठान लिया।** उ.—जैसे गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अरयौ-२-२६। (२) **टिकाकर, अड़ाकर, जमाकर।** उ.—लपकि लीन्हो धाइ दबकि उर रहे दोउ भ्रम भयौ जगहिं कहाँ गए वैधौं। अरयौ दै दसन धरनी कढे बीर दोउ कहत अबही याहि मारै कैधौं—२५६२।

अलंबन—संज्ञा पु. [स. अवलंबन] **आश्रय, सहारा, अवलंब।** उ.—अब लगि अवधि अलंबन करि करि राख्यौ मनहिं सवाहि। सूरदास या निर्गुन सिंधुहिं कौन सकै अवगाहि—३१४५।

अलंकार—सज्ञा पु. [सं.] **(१) आभूषण, गहना। (२) शब्द और अर्थ में विशेषता लाने की युक्ति।**

अलंकित, अलंकृत—वि [स] **(१) विभूषित, आभूषणों से युक्त।** उ.—(क) भूषन बार सुधार तासु रग अँग अगन दीपत ह्वैहै। यह बिधि सिद्ध अलंकृत सूरज सब बिधि सोभा छैहै—सा० ६७। (ख) सूर स्याम के हेत अलंकृत कीनो अमल सुमिल हितकारी —सा० ६८। **(२) सजाया हुआ, सुन्दर।** उ०—यो प्रतपेद अलंकृत जबहू सुमुखी सरस सुनायौं। सूर कहो मुसुकाय प्रानप्रिय मो मन एक गनायौ—सा. ६५। **(३) काव्यालंकार से युक्त।** उ.—करत बिग ते बिग दूसरी जुक्त अलकृत माँहीं—सा० ८७।

अल—सज्ञा पु. [स.] **(१) बिच्छू का डंक। (२) विष, जहर।** उ.—अति बल करि-करि काली हारयौ। लपटि गयौ सब अग-अग प्रति, निर्विष कियौ सकल अल (बल) झारयौ—५७४।

अलक—सज्ञा पु. [सं.] **इधर-उधर लटकते हुए छल्लेदार बाल।**

अलक लड़ैता—वि. [हिं. अलक=आल, लाड=दुलार (लडैता=दुलारा)] **दुलारा, लाड़ला।**

अलकलड़ैतौ—वि. [हिं. अलकलडैता] **लाड़ला, दुलारा।** उ.—सूर पथिक सुन, मोहि रैन दिन बढयौ रहत उर सोच। मेरो अलकलडैतो मोहन ह्वैहै करत सँकोच—२७०७।

अलकसलोरा—वि. पु. [सं. अलक=आल+हि. सलोना=अच्छा] **लाड़ला, दुलारा।**

अलकसलोरी—वि. स्त्री. [हि. पु. अलकसलोरा] **लाड़ली, दुलारी।** उ.—हम तेरे नित ही प्रति आवैं सुनहु राधिका गोरी हो। ऐसो आदर कबहुँ न कीन्हो मेरी अलकसलोरी हो—पृ० ३१६।

अलकावलि—संज्ञा स्त्री. [स.] **केश, बालों की लटें।**

अलकैं—संज्ञा पु. बहु० [स. अलक] **मस्तक के इधर-उधर लटकते हुए घुँघराले बाल।** उ.—बिथुरि अलकैं रही मुख पर बिनहि बपन सुहाइ—१०-२२५।

अलख—वि. [सं. अलक्ष्य] **(१) ईश्वर का एक विशेषण।** उ.—(क) अलख-अनत-अपरिमित महिमा, कटितट कसे तूनीर—९-२६। (ख) ब्रह्मभाव करि मैं सब देखौ। अलख निरजन ही को लेखौ—३३०८। **(२) अगोचर, इंद्रियातीत।** उ.—(क) जोपै अलख रह्यौ चाहत तौ बादि भए ब्रजनायक—३३९३। (ख) पूरन ब्रह्म अलख अबिनासी ताके तुम हो ज्ञाता —२९१९। **(३) अदृश्य, अप्रत्यक्ष।**

अलखित—वि. [सं. अलक्षित] **(१) अप्रकट, अज्ञात। (२) अदृश्य। (३) अचिह्नित।**

अलगाइ—क्रि. अ. [हिं. अलग, अलगाना] **अलग हो गये, बिछुड गये।** उ.—कह्यौ मयत्रेय सो समुझाइ, यह तुम बिदुरहिं कहियौ जाइ। बदरिकासरम दोउ मिलि आइ। तीरथ करत दोउ अलगाइ—३-४।

अलगाना—क्रि. स. [हिं. अलग+आना (प्रत्य.)] **(१) छाँटना, बिलगाना। (२) दूर करना।**

अलच्छ—वि. [स. अलक्ष्य] **(१) जो देख न पड़े। (२) जिसका लक्षण न कहा जा सके।**

अलज—वि. [स. अ=नहीं+लज्जा] **निर्लज्ज, बेहया।**

अलप—वि. [स. अल्प] **थोड़ा, कम, न्यून, छोटे।** उ.—(क) अँग फरकाइ अलप मुसुकाने—१०-४६। (ख) सोभित सुकपोल-अधर, अलप-अलप दसना—१०-९०। (ग) चपल द्रग, पल भरे अँसुवा, कछुक

ढरि ढरि जात। अलप जल पर सीप द्वै लखि मीन मनु अकुलात—३६०।

अलबेला—वि. पु. [स. अलभ्य+हिं. ला (प्रत्य.)] (१) **बाँका, बना-ठना**। (२) **अनूठा, सुंदर**। (३) **मनमौजी**।

अलबेली—वि. स्त्री. [हि. अलबेला (पु.)] (१) **बनी-ठनी**। (२) **अनोखी, सुन्दर**। उ.—आजु राधिका रूप अन्हायौ। देखत बनै कहत नहि आवै मुखछबि उपमा अंत न पायौ। अलबेली अलक तिलक केसरि कौ ता बिच सेंदुर बिन्दु बनायौ—१०६३। (३) **अल्हड़, मनमौजी** उ.—इहाँ ग्वालि बनि बनि जुरी सब सखी सहेली। सिरनि लिए दधि-दूध सबै यौवन अलबेली—१००७।

अलस—वि. [स.] **आलस्ययुक्त, अलसाया हुआ**। उ.—(क) कन्हैया हालरौ हलरोइ। हौ वारी तव इंदु-बदन पर, अति छवि अलस भरोइ—१०-५६। (ख) कुंजभवन तै आजु राधिका अलस, अकेली आवत—सा० १३।

अलसाई—क्रि. अ. [हि अलसाना] **अलसा जाती है, क्लांत होती है, शिथिलता का अनुभव करती है**। उ.—काया हरि कै काम न आई। भाव-भक्ति जहँ हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई—१-२६५।

अलसात—क्रि. अ. [स. अलस, हिं. अलसाना] **आलस्य दिखाना, उदासीनता दिखाना**। उ०—अब मोसो अलसात जात हौ अधम-उधारनहारे—१२५।

अलसान—सज्ञा-स्त्री. [सं. आलस्य] **आलस**।

अलसाना—क्रि. अ. [सं. अलस] **आलस्य या शिथिलता का अनुभव करना**।

अलसाने—क्रि. अ. बहु. [स. अलस, हि. अलसाना] **थक गये, क्लांत हुए, शिथिल हो गये**। उ.-बल मोहन दोऊ अलसाने—१०-२३०।

अलसामिनी—सज्ञा स्त्री. [हि. अलसाना] **वह युवती जो अलसायी हुई या निद्रामग्न हो**। उ०—नरगजे हार बियुरि बार देखियत आइ गई, एक याम यामिनी। औरै सोभा सोहाई अग अंग अरसाय बोलति हैं कहा अलसामिनी—१५८१।

अलिबाहन को प्रीतम बाला ता बाहन रिपु—संज्ञा पु. [सं. अलिबाहन (कमल)+प्रियतम (कमल का प्रियतम=समुद्र)+बाला (समुद्र की बाला=समुद्र की स्त्री=गगा)+वाहन (गंगा का वाहन करनेवाला=शिव)+रिपु (शिव का रिपु=काम)] **कामदेव, काम**।

अलिसुत—संज्ञा पु. [सं.] **भौंरा**। उ.—अलिसुतप्रीति करी जलसुत सौं सपुट माँझ गह्यौ—२८०६।

अलसेट—संज्ञा पुं. [सं. आलस] (१) **ढील-ढाल, व्यर्थ की देर**। (२) **बाधा, अड़चन**। (३) **टाल-मटूल**।

अलसौंहैं—वि. पुं. [स अलस+औहाँ (प्रत्य.)] **आलस्ययुक्त, क्लांत, शिथिल**।

अलिसौंहैं—वि. [स. अलस+औहाँ (प्रत्य.)] **क्लांत, आलस्ययुक्त, शिथिल**। उ.—जावक भाल नागरस लोचन मसिरेखा अधरनि जो ठए। बलि या पीठि बचन अलिसौंहैं बिन गुन कंदक हार बनए—२०६१।

अलाप—संज्ञा पु. [सं. आलाप] (१) **बातचीत**। (२) **स्वर-साधन, तान**।

अलापना—क्रि. अ. [हिं. अलापना] (१) **बातचीत करना**। (२) **तान लगाना, सुर खींचना**। (३) **गाना**।

अलापति—क्रि. स. स्त्री. [हि. अलापना] (१) **गाती है**। उ.—गावत स्याम स्यामा रग। सुघरगतिनागरि अलापति सुर धारति पिय संग—पृ. ३५१ (७६)। (२) **सुर खींचती है, तान लगाती है**।

अलापि—क्रि. अ. [हि. अलापना] **सुर खींचकर, तान लगाकर** उ.—नटवर बेप धरे ब्रज आवत। अधर अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत—२३४६।

अलापी—वि. [सं. आलापी] (१) **बोलनेवाला**। (२) **गानेवाला**।

अलाभ—सज्ञा. स्त्री. [सं.] **लाभ का उलटा, हानि**। उ.—दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहि मरत हौ रोइ—१-२६२।

अलायक—सज्ञा. पु. [सं. अ=नही+अ. लायक] **अयोग्य**।

अलार—संज्ञा पु [सं अलात] **अलाव, अँवाँ, भट्ठी।**

अलाल—संज्ञा पु. [स. अलात=अंगार] **घास-फूस से जलायी हुई आग जिसको गाँव के लोग तापते हैं, कौड़ा।**

अलिगन—संज्ञा पु. [सं. आलिंगन] **हृदय से लगाने की क्रिया, परिरंभण।** उ.—(क) करि अलिगन गोपिका, पहिरै अभूषन-चीर—१०-२६। (ख) सूर लरचौ गोपाल अलिगन सकल किए कचन घट—८९०।

अलिंद—संज्ञा पु. [स. अलीन्द्र] **भौंरा।**

अलि—संज्ञा पु. [सं.] **भौंरा, भ्रमर।**

संज्ञा स्त्री.—**श्यामता।** उ—छिति पर कमल कमल पर कदली पंकज कियौ प्रकास। तापर अलि सारँग प्रति सारँग रिपु लै कीनो बास—सा. उ. २८।

संज्ञा स्त्री [स. आली, हिं. अली] **सखी, सहचरी।** उ.—हौ अलि केतने जतन बिचारौ। वो मूरत वाके उर अतर बसी कौन बिधि टारौ—सा. ६७।

अलिप्त—वि [स.] (१) **जो लिप्त न हो, जो कोई सबंध न रखे, बेलौस, निर्लिप्त।** उ.—जीवन-मुक्त रहै या भाइ। ज्यौं जल-कमल अलिप्त रहाइ—३-१३। (२) **राग-द्वेष से मुक्त, अनासक्त।** उ.—देहऽभिमानी जीवहिं जानै। ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै—५-४।

अलिवाहन—संज्ञा पु. [सं. अलि=भौंरा+वाहन=सवारी] **कमल।**

अली—संज्ञा स्त्री. [स. आली] (१) **सखी, सहचरी, सहेली।** उ.—(क) गुन गावत मगलगीत, मिलि दस-पाँच अली—१०-२४। (ख) का सतरात अली बतरावत उतन नाच नचावै—सा. ८४। (ग) बन ते आजु नदकिसोर। अली आवत करत मुरली की महाधुनि घोर—सा. ३९। (२) **श्रेणी, पंक्ति।**

संज्ञा पु. [स. अलि] **भौंरा।**

अलीक—संज्ञा पु. [स. अ=नही+हिं लीक] **अप्रतिष्ठा।**

वि.—**अप्रतिष्ठित।**

वि. [स.] **मिथ्या, झूठा।**

अलीगन—संज्ञा पु. [सं. अलि=भौंरा+गण (भौंरो का समूह। भौंरे काले होते है, इसलिए अलीगन से अर्थ लिया गया कालिमा=श्यामता=काजल)] **अंजन, काजल।** उ.—चारि कीर पर पारस बिद्रुम आजु अलीगन खात—सा ६।

अलीन—वि. [स. अ=नही+लीन=रत] (१) **अग्राह्य, अनुपयुक्त।** (२) **अनुचित।**

अलीह—वि. [स. अलीक] **मिथ्या, असत्य।**

अलुझना—क्रि. अ. [स. अवरुधन, प्रा अारुज्झन, हिं. उलझना] (१) **फँसना, अटकना।** (२) **लिपट जाना।** (३) **लीन होना।** (४) **लड़ना, झगडना।**

अलुटना—क्रि. अ. [सं. लुट=लोटना=लडखडाना] **लडखडाना, गिर पडना।**

अलूप—वि. [स. लुप्त=अभाव] **लुप्त, अदृश्य।**

अलूला—संज्ञा पु. [हि. बुलबुला, बलूला] **भभूका, लपट, उद्गार।**

अलेख—वि. [स.]। (१) **दुर्बोध, अज्ञेय।** (२) **अनगिनती, बहुत अधिक।**

वि. [स. अलक्ष्य] **अदृश्य।**

अलेखनि—वि [स. अलख] (१) **अनगिनती, बहुत अधिक।** (२) **व्यर्थ, निष्फल।**

अलेखा—वि [स अलेख] (१) **जो गिना न जा सके।** (२) **व्यर्थ, निष्फल।**

अलेखी—वि. [स. अलेख] **अधेर करनेवाला, अन्यायी।**

अलेखे—वि. [स. अलेख, हि अलेखा] (१) **अनगिनती, बेहिसाब।** उ.—दिवत धूम उपहास जहाँ तहँ अपयस स्रवन अलेखे—३०१४। (२) **व्यर्थ, निष्फल।** उ.—सूरदास यह मति आए बिन, सब दिन गए अलेख। कहा जानै दिनकर की महिमा, अंध नैन बिन देखे।—२-२५। (३) **असत्य, बेसमझे-बूझे।** उ.—कहा कहति तुम बात अलखे। मोसो कहति स्याम तुम देखे तुम नीके करि देखे—१३११।

अलेखै—वि. [सं. अलेख] **व्यर्थ, निष्फल।** उ.—अरु जो जतन करहुग हमको ते सब हमहिं अलेखै। सूर सुमन सा तव सुख मानै कमलनैन मुख देखै—३३९३।

अलोक—वि [स.] (१) **जो देखने में न आवे, अदृश्य।** (२) **जहाँ कोई न हो, निर्जन।**

संज्ञा पु.—**अनदेखी बात, मिथ्या दोष, कलंक।**

अलोकना—क्रि. स. [सं. आलोकन] **देखना, ताकना।**

अलोना—वि. [सं. अलवण] (१) **जिसमें नमक न हो। (२) स्वादरहित, फीका।**

अलोल—वि. [स. अ=नहीं+लोल=चंचल] **जो चल न हो, स्थिर।**

अलोलिक—संज्ञा पु. [स. अलोल] **स्थिरता, धीरता।**

अलौकिक—वि. [सं.] (१) **इस लोक से परे, लोकोत्तर। (२) असाधारण, अद्भुत।**

अल्प—वि. [सं.] (१) **थोड़ा, कम, न्यून। (२) छोटा।**

संज्ञा पु.—**एक अलंकार जिसमें आधेय की तुलना में आधार की अल्पता का वर्णन हो।** उ.—नैन सारँग सैन मीतन करी जानि अधीर। आठ रवि ते देत तब ते परत नाहि गम्हीर। अल्प सूर सुजान का सो कहो मन की पीर—सा. ४८। [यहाँ नेत्रो को अपेक्षा रास्ते की अल्पता का वर्णन होने से 'अल्प' अलंकार है।]

अल्लाना—क्रि. अ. [सं. अर्=बोलना] **जोर से बोलना, चिल्लाना।**

अवकलना—क्रि. स. [सं. अवकलन=ज्ञात• होना] **समझ पड़ना, विचार में आना।**

अवगतना—क्रि. स. [सं. अवगत+हिं. ना (प्रत्य.) **सोचना, समझना, विचारना।**

अवगनना—क्रि. अ. [सं. अवगणन] (१) **निंदा करना, अपमान करना। (२) नीचा दिखाना, पराजित करना। (३) गिनना।**

अवगारना—क्रि. स. [सं. अव+गृ] **समझाना-बुझाना, जताना।**

अवगारे—क्रि. स. [स. अव+गृ, हिं. अवगारना] **समझावे-बुझावे, जतावे।** उ.—कहा कहत रे मधु मतवारे। ·······। हम जान्यौ यह स्याम सखा है यह तो औरे न्यारे। सूर कहा याके मुख लागत कौन याहि अवगारे—३२६८।

अवगाह—वि. [सं. अवगाध] **अथाह, बहुत गहरा, अत्यंत गंभीर।** उ.—(क) उर-कलिद तै धँसि जल-धारा उरर-धरनि परबाह। जाहि चली धारा ह्वै अध कौ, नाभी-हृद अवगाह—६३७। (ख) बिहरत मानसरस कुमारि। कैसेहुँ निकसत नही, हो रही करि मनुहारि। मौन पारि अपार रचि अवगाह अंस जु वारि—२०२८। (२) **अनहोनी, कठिन।**

संज्ञा पु.—(१) **गहरा स्थान। (२) कठिनाई।**

संज्ञा पु.—**जल में प्रवेश करके स्नान करना।**

अवगाहत—क्रि. अ. [स. अवगाहन, हिं. अवगाहना] **खोजते हैं, ढूँढ़ते हैं, छानबीन करते हैं।** उ०—कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौ, कर सौ पकरन चाहत। किलकि हँसत राजत द्वै दँतियाँ, पुनि पुनि तिहिं अवगाहत—१०-११०। (२) **सोचते-विचारते हैं, समझते हैं।** उ०—(क) नागरि नागर पथ निहारै। ·····। अग सिँगार स्याम हित कीने वृथा होन यइ चाहन। सूर स्याम आवहिँ की नाही मन मन यह अवगाहत—१९९८। (ख) कहा होन अबही यह चाहत। जहँ तहँ लोग इहै अवगाहत—१०४६। (३) **धारण करते हैं, ग्रहण करते हैं, अपनाते हैं, स्थापित करते हैं।**

अवगाहन—संज्ञा पु. [सं.] (१) **निमज्जन। (२) मथन, मथना। (३) थहाना, खोज, छानबीन। (४) लीन होकर विचार करना।**

अवगाहना—क्रि. अ. [स. अवगाहन] (२) **धँसना, मग्न होना। (२) निमज्जन करना।**

क्रि. अ.—(१) **छानबीन करना। (२) मथना। (३) सोचना, विचारना (४) धारण करना, ग्रहण करना।**

अवगाहि—क्रि. स. [सं. अवगाहन, हिं. अवगाहना] (१) **सोच-विचार कर, समझ-बूझ कर।** उ.—जब मोहिं अंगद कुसल पूछिहै, कहा कहौगो ताहि। या जीवन तै मरन भलौ है, मै देख्यौ अवगाहि—९-७५। (ख) यह देखत जननी मन ब्याकुल बालक मुख कहा आहि। नैन उघारि, बदन हरि मूँद्यौ, माता मन अवगाहि—१०-२५३।

अवगाहैं—क्रि. अ. बहु. [स अवगाहन, हिं. अवगाहना] **सोचते-विचारते हैं।** उ.—कोउ कहै देहँ दाम, नृपति जेतौ धन चाहै। कोउ कहै जैऐ सरन, सबै मिलि बुधि अवगाहैं—५८९।

अवगाहै—क्रि. स. [सं. अवगाहन, हिं. अवगाहना]

ग्रहण करता है, धारण करता या अपनाता है। उ.—(क) तमोगुनी चाहै या भाइ। मम बैरी क्यौंहूँ मरि जाइ। सुद्धा भक्ति मोहि कौ चाहै। मुक्तिहुँ कौं सो नहि अवगाहै—३-१३। (ख) तमोगुनी रिपु मारिबौ चाहै। रजोगुनी धन कुटँब्यवगाहै—३-१३।

अवगाहौं—क्रि. अ. [सं. अवगाहन, हिं. अवगाहना] (१) **निमज्जित होता हूँ, धँसता या पैठता हूँ, मग्न होता हूँ।**

क्रि. स. (१) **थहाता या छानबीन करता हूँ।** (२) **मथता हूँ, हलचल करता हूँ।** (३) **चलाता या हिलाता-डुलाता हूँ।** (४) **सोचता-विचरता हूँ।** (५) **धारण या ग्रहण करता हूँ।**

अवगुन—सज्ञा पु [स अवगुण] (१) **दोष, दूषण।** (२) **अपराध, बुराई।**

अवग्रह—सज्ञा पुं. [सं.] (१) **रुकावट, अड़चन।** (२) **प्रकृति, स्वभाव।**

अवघट—वि. [स. अव+घट्ट=घाट] **अटपट, विकट, कठिन, दुर्घट।** उ.—घाट-बाट अवघट जमुना तट बातैं कहत बनाय। कोऊ एसौ दान लेत है कौने सिख पढाय—१०२६।

अवचट—सज्ञा पु. [सं. अव=नहीं+हि. चट=जल्दी। अथवा स. अव=थोडा+हिं. चित्त] **अनजान, अचक्का।**

अवछंग—सज्ञा पु. [स. उत्संग, प्रा. उच्छंग, हिं. उछंग] **गोद, क्रोड, कोरा।** उ.—इक-इक रोम बिराट किए तन, कोटि-कोटि ब्रह्मांड। सो लीन्हो अवछंग जसोदा, अपनै भरि भुजदंड—४८७।

अवज्ञा—सज्ञा पु. [स.] (१) **अपमान, अनादर।** (२) **आज्ञा का उल्लंघन, अवहेला।** (३) **अपमान, अनादर, तिरस्कार।** उ.—जोपै हृदय माँझ हरी। तो पै इती अवज्ञा उनपै कैसे सही परी—३२००।

अवटना—कि. स. [सं. आवर्त्तन, प्रा. आवट्टन] (१) **मथना।** (२) **औटाना।**

अवटि—क्रि. स. [हिं. अवटना] **औटाकर, आँच पर गरमाने से गाढ़ा करके।**

अवडेर—सज्ञा पु. [हि. अव=रार या राड] **झंझट, बखेड़ा।**

अवडेरना—क्रि. स. [हि. अवड़ेर+ना (प्रत्य.)] **चक्कर में डालना, फँसाना।**

अवडेरा—वि. [हिं. अवडेर] (१) **घुमाव-फिरावदार, चक्करदार।** (२) **बेढब।**

अवढर—वि. [स. अव+हि. ढार या ढाल] **जैसी मौज हो, वैसा ही करनेवाला, मनमौजी।** उ.—लच्छ सौ बहु लच्छ दीन्हौ, दान अवढर-ढरन—१-२०२।

अवतंस—सज्ञा पु. [सं.] (१) **भूषण, अलंकार।** (२) **मुकुट, श्रेष्ठ।**

अवतरतौ—क्रि अ [स. अवतरण, हि. अवतरना] **प्रकट होता, जन्मता, उत्पन्न होता।** उ.—जौ हरि कौ सुमिरन तू करतौ। मेरैं गर्भ आनि अवतरतौ—४-९।

अवतरना—क्रि. अ. [सं. अवतरण] **प्रकट होना, उपजना, जन्मना।**

अवतरते—क्रि. अ. [हि. अवतरना] **जन्मते, प्रकट होते, अवतार लेते।** उ.—जो प्रभु नर देही नहि धरते। देवै गर्भ नहीं अवतरते—११८६।

अवतरि—क्रि. अ. [स. अवतरण, हि. अवतरना] **अवतरे, उत्पन्न हुए, जन्म लिया।** उ.—धनि माता, धनि पिता, धन्य सो दिन जिहि अवतरि—५८६।

अवतरिहउँ—क्रि. अ. [हिं. अवतरना] **जन्म लूँगा, प्रकट होऊँगा।**

अवतरी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. अवतरना] **प्रकट हुई, जन्मी।** उ.—बहुरि हिमाचल कै अवतरी। समय पाइ सिव बहुरौ बरी—४-५।

अवतरे—क्रि. अ. [हि अवतरना] **प्रकट हुए, अवतार लिया, जन्मे।** उ.—विष्नु-अस सौं दत्त अवतरे—४-३।

अवतरैं—क्रि. अ. [हिं. अवतरना] **प्रकट हों, उपजें, जन्म लें।** उ.—याकै गर्भ अवतरै जे सुत, सावधान ह्वै लीजै—१०-४।

अवतर्‍यौ—क्रि. अ. [हि. अवतरना] **प्रकटा, जन्मा, उपजा, पैदा हुआ।** उ.—धन्य कोखि वह महरि जसोमति, जहाँ अवतर्‍यौ यह सुत आई—७६१।

अवतार—सज्ञा पु. [स.] (१) **उतरना, नीचे आना।** (२) **जन्म, शरीर-ग्रहण।** उ.—नहिं ऐसो जनम

बारंबार। पुरबलो लौं पुन्य प्रगट्यौ, लह्यौ नर अव-तार—१-८८। (३) **विष्णु का संसार में जन्मना।** (४) **सृष्टि, शरीर-रचना।**

मुहा.—लीन्हौ अवतार—**जन्म लिया, शरीर ग्रहण किया।** उ.—तुम्हरे भजन सबहिं सिंगार। ····। कलिमल दूरि करन के काजै, तुम लीन्हो जग मैं अवतार—१-४१। अवतार धरना—**जन्म ग्रहण करना।** अवतार करना—**शरीर धारण किया।**

अवतारा—संज्ञा पु. [स. अवतार] **जन्म, शरीर-ग्रहण।** उ.—परसुराम जमदग्नि गेह लीनौ अवतारा—९.१४।

अवतारी—वि. [सं. अवतार] (१) **अवतार ग्रहण करनेवाला।** उ.—त्रिभुवन नायक भयौ आनि गोकुल अवतारी—४९२। (२) **देवांशधारी, अलौकिक।** उ.—(क) बारबार बिचारति जसुमति, यह लीला अवतारी। सूरदास स्वामी की महिमा, कापै जात बिचारी—१०-३८८। (ख) कहत ग्वाल जसुमति धनि मैया बडौ पूत तैं जायौ। यह कोउ आदि पुरुष अवतारी भाग्य हमारे आयौ।

क्रि स. [हिं. अवतारना] **जन्म दिया।** उ—धन्य कोख जिहिं तोको राख्यौ, धन्य घरी जिहिं तू अवतारी—३०३।

अवतारना—क्रि. स. [सं अवतारण] (१) **उत्पन्न करना, रचना।** (२) **जन्म देना।**

अवतारे—क्रि स [हिं. अवतारना] **रचे, बनाये, उत्पन्न किये।** उ.—आपु स्वारथी की गति नाहीं। बिधिना ह्याँ काहे अवतारे जुवती गुनि पछिताहीं—पृ ३२०।

अवतार्‌यौ—क्रि स. [हिं. अवतारना] **उत्पन्न किया, रचा, बनाया।** उ.—अब यह भूमि भयानक लागै बिधिना बहुरि कंस अवतार्‌यौ—२८३२।

अवदात—वि [स] (१) **उज्ज्वल, श्वेत।** (२) **स्वच्छ, निर्मल।** (३) **पीत, पीला।**

अवध—संज्ञा पु. [स. अयोध्या] (१) **कोशल देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी।** (२) **अयोध्या नगरी।** उ.—दसरथ चले अवध आनंदत—९-२७।

संज्ञा स्त्री. [स. अवधि] (१) **सीमा, हद, पराकाष्ठा।** उ.—यह निरंबित की अवध बाम तू भइ सूर हुत सखी नवीन—सा. ९६। (२) **निर्धारित समय, मियाद।** उ.—(क) लोचन चातक जीवो नहि चाहत। अवध गए. पावस की आसा क्रम क्रम करि निरबाहत—२७७१। (ख) सूर प्रान लटि लाज न छाँडत सुमिरि अवध आधार—२८८८।

वि [स. अबध्य] **न मारने योग्य।** उ—सिव न अवध सुदरी बधो जिन—१६८७।

अवधपुर—संज्ञा पुं. [स अयोध्या] **अयोध्या नगरी।**

अवधपुरी—संज्ञा स्त्री [सं.] **अयोध्या नगरी।**

अवधा—संज्ञा स्त्री [हिं.] **राधा की एक सखी का नाम।** उ—सुखमा सीला अवधा नंदा बृंदा जमुना सारि—१५८०।

अवधारना—क्रि. स. [स. अवधारण] **धारण करना, ग्रहण करना।**

अवधि—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **सीमा, हद, पराकाष्ठा।** उ.—यह ही मन आनन्द अवधि सब। निरखि सरूप बिवेक नयन भरि, या सुख तैं नहिं और कछू अब—१-६९। (२) **निर्धारित समय, प्रतिज्ञात काल।** उ.—(क) इतनेहिं मे सुख दियो सबन कौ मिलिहै अवधि बताइ—२५३३। (ख) दिवस-पति सुतमात अवधि विचार प्रथम मिलाइ—सा. ३२। (३) **अंत समय, अंतिम काल।** उ.—तेरी अवधि कहत सब कोऊ तातै कहियत बात। बिनु बिस्वास मारिहै तोकौं आजु रैन कै प्रात।

मुहा.—अवधि बदी—**समय नियत किया।** उ.—निसि बसिबे की अवधि बदी—मोहि साँझ गएँ कहि आवन। सूर स्याम अनतहि कहुँ लुबधे नैंन भए दोउ सावन। अवधि देना—**समय निश्चित करना।**

अव्य. [सं.] **तक, पर्यन्त।**

अवधिमान—संज्ञा पु. [स.] **समुद्र।**

अवधूत—संज्ञा पु. [सं.] (१) **एक संन्यासी, योगी।** (२) **साधुओं का एक भेद।**

अवधेस—संज्ञा पु. [सं. अवध+ईश] **श्रीरामचन्द्र।** उ.—दै सीता अवधेस पाइँ परि, रहु लकेस कहावत—९-१३३।

अवन, अवनु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **प्रसन्न करना।** (२) **रक्षण, बचाव।**

संज्ञा पु. [स. अवनि] (१) **भूमि**। (२) **राह, सड़क**।

अवना—कि. अ. [सं. आगमन] **आना**।

अवनि—संज्ञा स्त्री. [स.] **पृथ्वी, जमीन**। उ.—हमारी जन्मभूमि यह गाउँ। सुनहु सखा सुग्रीव-बिभीषन, अवनि अजोध्या नाउँ—९-१६५।

अवनिधरि—संज्ञा पु. [स. अवनि=पृथ्वी+हि. धरि=धारण करनेवाला] **शेषनाग**। उ.—भृकुटि को दंड अवनिधरि चपला बिबस ह्वै कीर अरचौ—सा. उ. १४।

अवनी—संज्ञा स्त्री. [स. अवनि] **पृथ्वी**। उ.—कुटिल अलक बदन की छबि, अवनी परि लोले—१०-१०१।

अवनीप—संज्ञा पु. [स. अवनि+प=पति] **राजा**।

अवर—वि. [हि. और] **अन्य, दूसरा, और**। उ.—(क) नहि मोतै कोउ अवर अनाथा—१०६९। (ख) नवमो छोड अवर नहिं ताकत दस जिन राखै साल—सा. २९। (२) **अधम, नीच**।

वि. [स. अ=नहीं+बल] **निर्बल, बलहीन**।

अवराधक—वि. [स. आराधक] **पूजा या आराधना करनेवाला**।

अवराधन—संज्ञा पुं. [स. आराधन] **उपासना, पूजा**। उ.—जोग ज्ञान ध्यान अवराधन साधन मुक्ति उदासी। नाम प्रकार कहा रुचि मानहि जो गोपाल उदासी—३१०१।

अवराधना—क्रि. स. [स. आराधन] **उपासना करना, पूजा या सेवा करना**।

अवराधहु—क्रि. स. [हिं अवराधना] **उपासना या पूजा करो**।

अवराधा—क्रि. स. [हिं. अवराधना] **उपासना की, सेवा-अर्चना की**। उ.—जननी निरखि चकित रही ठाढी, दंपति-रूप अगाधा। देखति भाव दुहुँनि कौ सोई, जो चित करि अवराधा—७०५।

अवराधि—क्रि. स. [हि. अवराधना] **उपासना या पूजा-सेवा करके**। उ.—जोगी जन अवराधि फिरत जिहिं ध्यान लगाए। ते ब्रजबासिनि संग फिरत अति प्रेम बढ़ाए—४९२।

अवराधी—वि. [स. आराधन] **उपासक, पूजक**।

अवराधै—क्रि. स. [हिं. अवराधना] **उपासना करते हैं, पूजते हैं**। उ.—पति कै हेत नेम, तप साधै। संकर सौ यह कहि अवराधै—७९९।

अवराधो—क्रि. स. [हि. अवराधना] **उपासना या पूजा करो**। उ.—एसो बिधि हरि का अवराधो।

अवरेखना—क्रि. स. [स. अवलेखन] (१) **लिखना, चित्रित करना**। (२) **देखना**। (३) **अनुमान करना, सोचना**। (४) **मानना, जानना**।

अवरेखत—क्रि. स. [हिं. अवरेखना] (१) **अनुमान या कल्पना करता है, सोचता है**। (२) **मानता है, जानता है**।

अवरेखिए—क्रि. स. [हि. अवरेखना] (चित्र) **खींचिए या बनाइए, चित्रित कीजिए**। उ.—स्याम तन देखि री आपु तन देखिए। भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिए—१०-३०७।

अवरेखी—वि. [हि. अवरेखना] **लिखित, चित्रित, खचित**। उ.—चपक-पुहुप-बरन-तन-सुदर, मनौ चित्र-अवरेखी। हो रघुनाथ, निसाचर कै संग अबै जात हौ देखी—९-६४।

क्रि. स.—**देखी**। उ.—फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम बेली। अहो बंधु काहू अवरेखी (अवलोकी) इहि मग बधू अकेली—९-६४।

अवरेखु—क्रि. स. [हिं. अवरेखना] **लिखी है, चित्रित है**।

अवरेखे—वि. [हिं. अवरेखना] **लिखे हुए, रँगे हुए, चित्रित**। उ.—एसे मेघ कबहुँ नहिं देखे। अतिकारे काजर अवरेखे—१०४८।

अवरेखैं—क्रि. स. [हि. अवरेखना] **अनुमान या कल्पना करते हैं, सोचते हैं**।

अवरेख्यौ—क्रि. स. [हिं. अवरेखना] **देखा**। उ०-ऐसे कहत गए अपने पुर सबहि बिलक्षण देख्यौ। मनिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेख्यौ।

अवरेब—संज्ञा पु. [स. अव=विरुद्ध+रेव=गति] (१) **वक्र गति, तिरछी चाल**। (२) **पेंच, उलझन** (३) **बिगाड़, खराबी**। (४) **झगड़ा, विवाद**। (५) **वक्रोक्ति**।

अवरे—वि. [हि. अवर] **अन्य, दूसरे, बदले हुए।** उ०—(क) ऊधौ हरि के अवरै ढंग—३३२७ (ख) ऊधौ अवरे कान्ह भए—३३८४।

अवरोधना—क्रि. स. [सं. अवरोधन] **रोकना, मना करना।**

अवरोहना—क्रि. अ. [सं. आरोहण] **उतरना, नीचे आना।**

क्रि. अ. [सं. आरोहण] **चढ़ना, ऊपर जाना।**

क्रि. स. [हिं. उरेहना] **अंकित या चित्रित करना।**

क्रि. स. [सं. अवराधना, प्रा. अवरोहन] **रोकना, घेरना।**

अवर्त—संज्ञा पु. [सं. आवर्त्त] (१) **भँवर, नाँद।** (२) **घुमाव, चक्कर।**

अवलंघना—क्रि स. [सं. अव+लंघना] **लाँघना, फाँदना।**

अवलंघ्यौ—क्रि. स. [सं. अव+लंघना, हि. अवलघना] **लाँघ लिया, पार कर लिया।** उ०—राम-प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव-कन्धार। तिहि अधार छिन म अवलघ्यौ, आवत भई न बार—९-८६।

अवलंब—संज्ञा पु [सं.] **आश्रय, सहारा।**

अवलंबन—संज्ञा पु. [सं.] (१) **आश्रय, आधार, सहारा।** उ.—वै उत रहत प्रम अवलंबन इत ते पठयौ योग—३४९२। (२) **धारण, ग्रहण।**

अवलंबना—क्रि. स. [सं. अवलंबन] **आश्रय लेना, टिकना।**

अवलंबित—वि. [सं. अवलंबन] (१) **आश्रित, सहारे पर स्थित, टिका हुआ।** उ.—एसे और पतित अवलंबित ते छिन माहिं तरे—१-१९८। (२) **निर्भर।**

अवलंबिये—क्रि स. [हिं अवलंबना] **सहारा लीजिए, आश्रित होइए।**

अवला—संज्ञा स्त्री. [देश.] **राधा की एक सखी गोपी का नाम।** उ.—ब्रज जुवतिनि सबहिन मैं जानति घर-घर लै-लै नाम बतायौ ···· ···। अमला अवला कंजा मुकुता हीरा नीला प्यारि—१५८०।

अवलि—संज्ञा स्त्री. [सं. आवलि] **समूह, झुंड।** उ— (क) मुख आँसू अरु माखन-कनुका, निरखि बैन छवि देत। मानौ स्रवत सुधानिधि मोती उडुगन अवलि-समेत—३४६। (ख) अति रमनीक कदब छाँह-रुचि परम सुहाई। राजत मोहन मध्य अवलि बालक छवि पाई—४९२।

अवली—संज्ञा स्त्री. [सं. आवलि] (१) **पंक्ति, पाँति।** उ.—अति सुदेश मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई। मानौ प्रगट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई—१०१०८। (२) **समूह, झुंड।**

अवलेखना—क्रि. स. [सं. अवलेखन] (१) **खोदना, खुरचना।** (२) **चिह्नित करना, लकीर खींचना।**

अवलेखो—क्रि. स. [हि. अवलेखना] **चिह्नित करो।**

अवलेप—संज्ञा पु. [सं. अवलेपन] (१) **उबटन, लेप।** उ.—कुच कुकुम अवलेप तरुनि किए सोभित स्यामल गात। (२) **घमंड, गर्व।**

अवलोकत—क्रि. स. [हिं. अवलोकना] (१) **दिखाई देता है, सूझता है, निहारते से।** उ०—(क) हृद बिच नाभि, उदर त्रिबली बर, अवलोकत भव-भय भाजै—१-६९। (ख) भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ। ······। अति गभीर तीर नहिं नियरैं किहिं बिधि उतरयौ जात। नहि अधार नाम अवलोकत, जित-तित गोता खात—१-१७५। (२) **जाँचता हुआ, खोजता हुआ।** उ.—फिरत बृथा, भाजन अवलोकत सूनै भवन अजान—१-१०३।

अवलोकन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **देखना।** (२) **जाँच, निरीक्षण।** उ.—रबि करि बिनय सिवहिं मन लीन्हौ। हृदय माँझ अवलोकन कीन्हौ—७९९।

अवलोकनि—संज्ञा स्त्री. [सं. अवलोकन] (१) **आँख, दृष्टि।** (२) **चितवन।** उ.—(क) मैं बलि जाऊँ स्याम-मुख-छवि पर। ···· ·· । बलि-बलि जाऊँ चारु अवलोकनि, बलि-बलि कुडल-रबि की—६६४। (ख) उ.—मृदु मुसुकानि नेक अवलोकनि हृदये ते न हरै—१८०३। (ग) देखि अचेत अमृत अवलोकनि चले जु सींचि हियौ—२८८६।

अवलोकना—क्रि. स. [सं. अवलोकन] (१) **देखना** (२) **जाँचना, खोज करना।**

अवलोकहु—क्रि. स. [हिं. अवलोकना] **देखो, निहारो।** उ.—चित दै अवलोकहु नँदनंदन पुरी परम रुचिरूप। सूरदास प्रभु कंस मारि कै होउ यहाँ के भूप—२५६१।

अवलोकि—क्रि. स. [हिं. अवलोकना] **देखकर, निहार**

कर। उ.—अँतरौटा अवलोकि कै, असुर महामद माते (हो)—१-४४।

अवलोकित—वि. [हिं. अवलोकना] **देखी हुई, ताकती हुई।**

अवलोकी—क्रि. स. [स. अवलोकन, हिं. अवलोकना] **देखी है, निहारी है।** उ.—फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली। अहो बधु, काहूँ अवलोकी इहिं मग बधू अकेली—९-६४।

अवलोके—क्रि. स. [हिं. अवलोकना] **देखे, निहारे।** उ.—चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै ६-५३।

अवलोक्यौ—क्रि. स. [हिं. अवलोकना] **देखा, निरीक्षण किया।** उ.—लुब्ध्यौ स्वाद मीन-आमिष ज्यौ अवलोक्यौ नहिं फद—१-१०२।

अवलोचना—क्रि. स. [स. आलोचन] **दूर करना।**

अवशेष—वि. [सं.] (१) **बचा हुआ।** (२) **समाप्त।**

अवसर—सज्ञा पु. [सं.] (१) **समय, काल।** उ.—सूरस्याम सग बिसेसोक्ति कहि आई अवसर साँझ—सा. ३७। (२) **अवकाश।**

मुहा.—अवसर के चूकें—**अवसर का लाभ न उठाने पर, मौका हाथ से निकल जाने पर।** उ.—सूरदास अवसर के चूकें, फिरि पछितैहौ देखि उघारी—१-२४८।

अवसाद—सज्ञा पुं. [सं.] (१) **नाश, क्षय।** (२) **विषाद।** (३) **दीनता।**

अवसान—संज्ञा पु. [स.] (१) **सुध-बुध, होश-हवास, चेत, धैर्य।** (क) सुरसरी-सुवन रनभूमि आए। बान बरषा लगे करन अति क्रुद्ध ह्वै, पार्थ अवसान तब सब भुलाए—१-२७१। उ.—(ख) पूछ लीन्ही झटकि धरनि सौं गहि पटकि फुकरयौ लटकि करि क्रोध फूले। पूछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि सब साँप-अवसान भूले—५५२। (ख) झिरकि नारि, दै गारि, आपु अहि जाइ जगायौ। पग सौ चाँपी पूछ सबै अवसान भुनायौ—५८९। (ग) तनु बिष रह्यौ है छहरि।...... । गए-अवसान, भीर नहिं भावै, भावै नही चहरि—७५०। (घ) बिछुरत उमँगि नीर भरि आई अब न कछू अवसान—२७७५। (२) **विराम, ठहराव।** (३) **समाप्ति, अन्त।**

अवसि—क्रि. वि. [स. अवश्य] **अवश्य, निश्चय करके; निस्संदेह।** उ.—रिषि कह्यौ, मै करिहौ जहँ जाग। दैहौ तुमहिँ अवसि करि भाग—९-३।

अवसेर—संज्ञा स्त्री. [सं. अवसेर=बाधक] (१) **अटकाव, उलझन।** उ.—भयौ मन माधव की अवसेर। मौन धरे मुख चितवत ठाढी ज्वाब न आवै फेर—१२१५। (२) **देर, विलंब।** उ.—(क) महरि पुकारत कुँअर कन्हाई। माखन धरयौ तिहारै कारन आज कहाँ अवसेर लगाई। (ख) अब तुमहूँ जनि जाहु सखा इक देहु पठाई। कान्हहिँ ल्यावैं जाइ आजु अवसेर लगाई—५८९। (३) **चिन्ता, व्यग्रता।** उ.—(क) आजु कौन बन गाइ चरावत, कहँ धौ भई अबेर। बैठ कहूँ सुधि लेउँ कौन बिधि, ग्वारि करत अवसेर—४५८। (ख) श्रीमुख कह्यौ जाहु घर सुन्दरि बड़े महर बृषभानुदुलारी। अति अवसेर करत सब ह्वैहै, जाहु बेगि दैहै पुनि गारी—१२२९। (४) **बेचैनी, व्याकुलता हैरानी।** उ.—दिन दस घोष चलहु गोपाल। गाइन की अवसेर मिटावहु लेहू आपने ग्वाल। नाचत नही मोर ता दिन ते बोल न बरषा काल—३४६३।

अवसेरत—क्रि. स. [हिं. अवसेर, अवसेरना] (१) **देर लगाते हैं।** (२) **चिन्ता करते हैं।**

अवसेरन—सज्ञा स्त्री. सवि. [हिं. अवसेर] **चिन्ता में, व्यग्रता के कारण।** उ.—मधुकर ए मन एसौ बैरन। अहो मधुप निसिदिन मरियतु है कान्ह कुवर अव सैरन—३२७७।

अवसेरना—क्रि. स. [हिं. अवसेर] **तंग करना, दुख देना।**

अवसेरि—सज्ञा स्त्री. [हिं. अवसेर] (१) **देर, विलम्ब।** उ.—(क) महरि पुकारति कुँवर कन्हाई। माखन धरयौ तिहारेहि कारन, आजु कहाँ अवसेरि लगाई—५४६।

अवसेरी—सज्ञा स्त्री [हिं. अवसेर] **चिन्ता, व्यग्रता।** उ.—(क) तेरे बस री कुँअरि कन्हाई करति कहा अवसेरी। सूरस्याम तुमकौ अति चाहत तुम प्यारी

हरि केरी—२४५७। (ख) सखी रही राधा मुख हेरी। चकृत भई कछु कहत न आवै, करन लगी अवसेरी—१६५२। (ग) जब ते नयन गए मोहिं त्यागि। इंद्री गई, गया तन ते मन उनहिं बिना अवसेरी लागि—१८८४।

अवसेरें—संज्ञा स्त्री. [हि अवसेर] **चिन्ता, व्यग्रता।** उ.—ढूँढति है द्रुमबेली बाला भईं बेहाल करनि अवसेरे—१८१३।

अवसेष—वि. [सं. **बचा हुआ, शेष।** उ.—सो हौ एक अनेक भाँति करि सोभित नाना भेष। ता पाछे इन गुननि गए त, रहिहौ अवसेष—२-३८।

अवसेस—वि. [स. अवशेष]। (१) **बचा हुआ, शेष।** उ.—बिपति-काल पाडव-बधु बन मैं राखी स्याम ढरी। करि भोजन अवसेस जज्ञ कौ त्रिभुवन-भूख हरी—१-१६। (२) **समाप्त।**

संज्ञा पु—(१) **शेष या बची हुई वस्तु।** (२) **समाप्ति, अन्त।**

अवस्था—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **आयु, उम्र।** (२) **समय, काल।** उ.—नरन अवस्था को नृप जानै। तौ हूँ धर न मन मैं आनै—४-१२।

अवहेलना—क्रि. स. [स. अवहेलन] **तिरस्कार करना, अवज्ञा करना।**

अवाँ—संज्ञा पु. [स. आपाक=हि. आवा] **वह गढ़ा जिसमें कुम्हार बर्तन पकाते हैं।**

अवाई—संज्ञा स्त्री. [स. आयन=आगमन] **आगमन।**

अवागी—वि. [सं अवाग्विन्=अपटु] **मौन, चुप।**

अवाज—संज्ञा स्त्री. [फा. आवाज] **ध्वनि, शब्द।** उ.—(क) अबलौ नान्हे-नुन्हे तारे, ते सब बृथा-अकाज। साँचे बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज—१-९६। (ख) कहियत पतित बहुत तुम तारे, स्रवननि सुनी अवाज—१-१०८। (ग) त्राहि त्राहि द्रौपदी पुकारी, गई बैकुंठ-अवाज खरी—१-२४९।

अवाजैं—संज्ञा स्त्री. [फा. आवाज] **ध्वनि, शब्द।** उ.—ब्रज पर सजि पावस-दल आयौ।......। चातक मोर इतर पर दागन करत अवाजैं कोयल। स्याम घटा गज असन बाजि रथ चित बगपाँति सजोयल—२८१९।

अवाया—वि. [स. अवार्य] **उच्छृङ्खल, उद्धत।** उ.—अकरम अबिधि अज्ञान अवाया (अवज्ञा) अनमारग अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२९।

अवारजा—संज्ञा पु. [फा] (१) **जमा खर्च की बही।** (२) **संक्षिप्त लेखा या वृत्तांत।** उ.—करि अवारजा प्रम-प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावे। दूजे करज दूरि करि दयत, नैकु न तामैं आवै—१-१४२।

अवास—संज्ञा पु. [स. आवास] **निवास स्थान, घर।** उ.—(क) भयौ पलायमान दानव-कुल, व्याकुल सायक-त्रास। पजरत धुजा, पताक, छत्र, रथ, मनिमय कनक-अवास—९-८३। (ख) बाजत नद-अवास बधाई। बैठे खेलत द्वार आपने सात बरस के कुँअर कन्हाई—९१२।

अवासा—संज्ञा पुं. [स. आवास] **घर, निवासस्थान।** उ.—चितवत मन्दिर भए अवासा। महल महल लाग्यौ मनि पासा—२६४३।

अविकल—वि. [स.] (१) **पूर्ण, पूरा।** (२) **अव्याकुल, शांत।**

अविकार—वि. [स.] **विकाररहित, निर्दोष।**

संज्ञा पु. [स.] **विकार का अभाव।**

अविकारी—वि. [स. अविकारिन] **जिसमें विकार न हो, निर्दोष।**

अविगत—वि. [स] (१) **जो जाना न जाय।** (२) **अज्ञात। अनिर्वचनीय।** (३) **जो नष्ट न हो, नित्य।**

अविचर—वि. [स. अविचल] **जो विचलित न हो। सदा बनी रहनेवाली, अटल, स्थिर।** उ.—ख त नवल किसोर किसोरी।......। देति असीस सकल ब्रज जुवती जुग-जुग अबिचर जोरी—२३९३।

अविचल—वि. [स.] **अचल, स्थिर, अटल।**

अविजन—संज्ञा पु. [स.] **कुल, वंश।**

अविद्य—वि. [स. अविद्यमान] **नष्ट।**

अविद्या—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) **मिथ्या ज्ञान, मोह।** (२) **माया।** (३) **माया का एक भेद।**

अविनय—संज्ञा पु. [स.] **विनय का अभाव, उद्दंडता।**

अविनासी—संज्ञा पु. [सं. अविनाशिन, हिं. अविनाशी]

ईश्वर, ब्रह्म। उ.—सूर मधुपुरी आइकै ये भए अबिनासी।

वि.—(१) जिसका विनाश न हो, अक्षय। (२) नित्य, शाश्वत।

अविरल—वि. [सं.] (१) जो भिन्न न हो, सटा हुआ (२) घना, सघन।

अविरोध—संज्ञा पु. [सं.] मेल, संगति।

अविर्था—क्रि. वि. [सं. वृथा] व्यर्थ ही, निष्प्रयोजन ही, वृथा ही। उ.—...रहे अविर्था सुरपति—१०३६।

अविहड—वि. [सं. अ+विघट] जो खंडित न हो, अनश्वर।

अव्यक्त—वि. [सं.] (१) अप्रत्यक्ष, अगोचर। (२) अज्ञात, अनिर्वचनीय।

संज्ञा पु.—(१) विष्णु। (२) शिव। (३) प्रकृति।

अवेश—वि [सं. आवेश] उन्मत्त, मतवाले, आवेशयुक्त। उ.—आयौपर समझै नहीं हरि होरी है। राजा रंक अवेश अहो हरि होरी है—२४५३।

संज्ञा पुं.—(१) आवेश, मनोवेग। (२) चेतनता। (३) भूत लगना या चढना।

अशन—संज्ञा पु. [सं.] (१) भोजन, आहार। उ.—गरल अशन अहि भूषण धारे—८३७। (२) भोजन की क्रिया।

अशनि—संज्ञा पु. [सं.] वज्र बिजली।

अशुन—संज्ञा पु. [सं. अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र।

अशेष—वि. [सं.] (१) पूरा, सब। (२) अनंत, अपार, अनेक।

अषाढ़—संज्ञा पुं. [सं. आषाढ] आषाढ़ नामक महीना जो ज्येष्ठ के पश्चात् और श्रावण के पूर्व आता है।

अष्ट—वि. [सं.] आठ।

अष्टकृष्ण—संज्ञा पु. [सं.] वल्लभकुल में मान्य आठ कृष्ण—श्रीनाथ, नवनीतप्रिय मथुरानाथ, विट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचंद्र, मदनमोहन।

अष्टम—वि. पु. [सं.] आठवाँ। उ.—अष्टम मास सँपूरन होइ—३-१३।

अष्टमग्रह—संज्ञा पु. [सं. अष्टम (=आठवाँ)+ग्रह (सूर्य से आठवाँ ग्रह 'राहु', फिर 'राहु' शब्द से राह या रास्ता अर्थ हुआ)] राह, रास्ता। उ.—आवत थी वृषभानु नंदिनी आजु सखी के संग। गृह अष्टम में मिली नंदसुत अंग अनंग उमंग—सा. ८२।

अष्टमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आठवीं तिथि, आठैं।

अष्टसुर—संज्ञा पु. [सं. अष्ट (=आठ=वसु, क्योंकि वसु आठ माने जाते हैं)+सुर (=देव) (वसु+देव से बना वसुदेव)] श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव।

अष्टसुरन-सुत—संज्ञा पुं. [सं. अष्ट (=आठ, 'वसु' आठ होते हैं अतएव अष्ट=वसु) + सुर (=देव—दोनों को मिलाने से बना 'वसुदेव') + सुत (=वसुदेव के पुत्र)] श्रीकृष्ण। उ.—ये हैं हेमसुर अष्टसुरनसुत दिनपति ही को बास—सा. ९५।

अष्टांग—संज्ञा पु. [सं.] योग-क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। उ.—भक्तिपंथ को जो अनुसरै। सो अष्टांग जोग को करै—२-२१।

अष्टाकुल—संज्ञा पु. [सं. अष्टाकुल] पुराणानुसार सर्पों के आठ कुल—शेष, वासुकि कंबल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक। दूसरों के मत से आठ कुल ये हैं—तक्षक, महापद्म, शंख, कुलिक, कंबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र और बलाहक। उ.—चिंता मानि, चित अंतरगति, नाग-लोक को धाए। पारथ-सहित सोधि अष्टाकुल तब यदुनंदन ल्याए—१-२९।

अष्टाक्षर—संज्ञा पु. [सं.] (१) आठ अक्षरों का मंत्र। (२) वल्लभ-संप्रदाय में मान्य—श्रीकृष्णः शरणं मम।

अष्टौ—वि. [सं. अष्ट] आठौ। उ—भोजन सब लै धरे छहौ रस कान्ह संग अष्टौ सिधि—९२३।

असंक—वि. [सं. अशंक] निर्भय, निडर।

असंख—वि. [सं. असंख्य] अगणित, बहुत अधिक।

असंग—वि. [सं.] (१) अकेला, एकाकी। (२) किसी से संबंध न रखनेवाला, न्यारा, निर्लिप्त, मायारहित। उ.—मृग-तन तजि, ब्राह्मन-तन पायौ। पूर्व-जन्म-सुमिरन तहँ आयौ। मन मैं यहै बात ठहराई। होइ असंग भजौ जदुराई—५-३। (३) अलग, पृथक।

असंगत—वि. [सं.] (१) अयुक्त, जो ठीक न हो।

(२) अनुचित। उ.—भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल—१-१५३।

असंत—वि. [सं.] **खल, दुष्ट बुरा।** उ.—यह पूरन हम निपट अधूरी, हम असंत यह संत—१३२४।

असंतुष्ट—वि. [सं.] (१) **जो संतुष्ट न हो।** (२) **जो अघाया न हो, अतृप्त।** (३) **अप्रसन्न।**

असंभार—वि. [सं.] (१) **जिसकी सम्हाल या देख-भाल न हो सके।** (२) **अपार, बहुत बडा।**

असंभाव—वि. [सं. असंभाव्य] **न कहने योग्य।**

संज्ञा पु.—**बुरा बचन, खराब बात।** उ.—असंभाव बोलन आई है, ढीठ ग्वालिनी प्रात—१०-२६०।

असंभु—संज्ञा पुं [सं. अ=नहीं+शंभु=कल्याण] **अशुभ, अमंगल।** उ. नसै धर्म मन बचन काय करि संभु असंभु करई (सिंधु अचभौ करई)। अचला चलै चलत पुनि थाकै, चिरजीवि सो मरई—९-७८।

अस—वि [सं. एष=यह, अथवा ईदृश] (१) **ऐसा, इस प्रकार का।** उ.—(क) जौ हरि-ब्रत निज उर न धरैगौ। तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावँ पकरैगौ—१-७५। (ख) धन्य नंद, धनि धन्य जसोदा, जिन जायौ अस पूत—१०-३६। (२) **तुल्य, समान।**

असक्त—वि. [सं. आसक्त] **अनुरक्त, लीन, लिप्त।** उ.—ज्वाला-प्रीति, प्रगट सन्मुख हठि, ज्यौं पतंग तन जारयौ। बिषय-असक्त, अमित अघ व्याकुल, तबहूँ कछु न सँभारयौ—१-१०२।

असगुन—संज्ञा पु. [सं. अशकुन] **बुरा शकुन, बुरा लक्षण।**

असत—वि. [सं. असत्] (१) **खोटा, असाधु, असज्जन।** उ.—साधु-सील सद्रूप पुरुष कौं, अपजस बहु उच्चरतौ। औघड-असत-कुचीलनि सौं मिलि, माया-जल मैं तरतौ—१-२०३।

वि. [सं. अ=नहीं+सत्य] **मिथ्या।**

असत्कार—संज्ञा पु. [सं.] **अपमान, निरादर।**

असद्व्यय—संज्ञा पुं. [सं.] **बुरे कामों में खर्च।** उ.—हुतौ आढ्य तब कियौ असदव्यय करी न ब्रज-बन-जात्र। पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र—१-२१६।

असन—संज्ञा पु. [सं अशन] **भोजन, आहार।** उ.—असन, बसन बहु बिधि दए (रे) औसर-औसर आनि—१-३२५।

असनान—संज्ञा पु [सं. स्नान] **स्नान।** उ.—नृपति सुरसरी कैं तट आइ। कियौ असनान मृत्तिका लाइ—१-३४१।

असभई—संज्ञा स्त्री. [सं. असभ्यता] **अशिष्टता।**

असमंत—संज्ञा पु. [सं. अश्मंत] **चूल्हा।**

असम—वि. [सं.] (१) **जो सम या तुल्य न हो।** (२) **ऊँचानीचा, ऊबड-खाबड।**

असमबान—संज्ञा पु. [सं. असमबाण] **कामदेव।**

असमय—संज्ञा पु [सं.] **विपति का समय।**

वि.—**कुअवसर, कुसमय।**

असमर्थ—वि. [सं. असमर्थ] (१) **सामर्थ्यहीन, अशक्त।** (२) **अयोग्य।**

असमसर—संज्ञा पु. [सं. असमशर] **कामदेव।** उ.—अंजन रंजित नैन, चितवनि चित चोरै, मुख-सोभा पर वारौं अमित असमसर—१०-१५१।

असमेध—संज्ञा पु. [सं. अश्वमेध] **अश्वमेध।**

असयाना—वि. [सं. अ=नहीं+हि. सयाना] (१) **भोलाभाला, सीधासादा।** (२) **अनाडी, मूर्ख।**

असरन—वि. [सं अशरण] **जिसे कहीं शरण या आश्रय न हो, अनाथ।** उ.—प्रभु, तुम दीन के दुख-हरन। स्यामसुंदर, मदनमोहन, बान असरन-सरन १-२०२।

असरनसरन—संज्ञा पु. [सं. अशरण+शरण] **जिसे कहीं आश्रय न हो उसे शरण देने वाले, अनाथ के आश्रय दाता।** उ.—जो श्रीपति जुग-जुग सुमिरन-बस, बद बिमल जस गावै। असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै—१-१७।

असरार—क्रि. वि. [हि. सर सर] **निरंतर, लगातार, बराबर।** उ.—कहो नंद कहाँ छाँडे कुमार। करुना करै जसोदा माता नैनन नीर बहै असरार—२६७१।

असल—वि. [अ.] (१) **सच्चा, खरा।** (२) **उच्च, श्रेष्ठ।** (३) **बिना मिलावट का, शुद्ध।**

संज्ञा पु. [अ.] (१) **जड, मूल, बुनियाद, तत्व।** (२) **मूल धन।** उ.—बट्टा काटि कसूर भरम कौ, फरद तजे लै डारै। निहचै एक असल पै राखै, टरै

न कबहूँ टारे। करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावै—१-१४२।

संज्ञा पु [सं शल्य] **बाण, भाला।**

असवार—वि. [फा. सवार] **सवार होकर, चढ़कर।** उ.—(क) नृपति रिषिन पर ह्वै असवार। चल्यो तुरंत सची कैं द्वार—६ ७। (ख) करि अँतरधान हरि मोहिनी-रूप कौं, गरुड असवार ह्वै तहाँ आए—८ ८।

असवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. सवारी] **सवारी, चढ़ना।** उ.—अमरन कह्यौ, करौ असवारी गनपत कौ लेहु हुँकारी—१०६६।

क्रि. अ.—**सवार होकर, सवारी करके।** उ.—निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैस्रवा के पोर—१० उ.-६।

असह्—वि. [सं. असह्य] **जो सहा न जा सके।**

असही—वि. [सं. असह] **दूसरे को बढ़ती न सहन करनेवाला, ईर्ष्यालु।**

असाँच—वि. [सं. असत्य, प्रा. असच्च] **असत्य, झूठ।**

असाध—वि. [सं. असाध्य] **जिसका साधन न हो सके, कठिन, दुष्कर।**

वि. [सं. असाधु] **दुष्ट, बुरा।**

असाधु—वि [सं.] **दुष्ट, दुर्जन।** उ.—महादेव कौं भाषत साध। मै तौ देखौ बडो असाधु—४-५।

असार—वि. [सं.] (१) **साराहीन, व्यर्थ, निरर्थक।** उ. यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार। सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार—१-६८। (२) **शून्य, खाली।** (३) **तुच्छ।**

असि—संज्ञा स्त्री. [सं.] **तलवार, खड्ग।**

असित—वि. [सं.] (१) **जो सित (सफेद) न हो, काला।** उ.—(क) असित-अरुन-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै—१०-९५। (ख) उज्जवल अरुन असित दीसति हैं, दुहूँ ननि की कोर—३५९। (२) **दुष्ट, बुरा।** उ.—हमारे हिरदै कुलसैं जत्यौ। ... । हमहूँ समुझि परी नीकैं करि यहै असित तन रीत्यौ—२८८४। (३) **टेढ़ा, कुटिल।**

असिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **यमुना नदी।**

असी—वि. [सं. अशीति, प्रा. असीति, हिं. अस्सी] **अस्सी।** उ.—(क) तासौं सुत निन्यानबे भए। भरतादिक सब हरि-रँग रए। तिनमैं नव-नव-खँड अधिकारी। नव जोगेस्वर ब्रह्म-बिचारी। असी इक कर्म बिप्र कौ लियौ। रिषभ ज्ञान सबही कौ दियौ—५-२। (ख) असी सहस किंकर-दल तेहिके, दौरे मोहि निहारि—६-१०४।

असीस—संज्ञा स्त्री. [सं. आशिष] **आशीर्वाद।** उ.—इक बदन उघारि निहारि, देहिं असीस खरी—१०-२४।

असीसना—क्रि स [सं. आशिष] **आशीर्वाद देना।**

असीसैं—क्रि. स. [हिं. असीसना] **आशीर्वाद देती हैं।** उ.—जोरि कर बिधि सौं मनावति असीसैं लै नाम। न्हात बार न खसै इनको कुसल पहुँचैं धाम—२५६५।

असुचि—वि [सं. अशुचि] (१) **अपवित्र।** (२) **गंदा, मैला।**

असुर—संज्ञा पु [सं.] **दैत्य, राक्षस।**

असुरगुरु—संज्ञा पु. [सं.] **शुक्राचार्य।**

असुराई—संज्ञा स्त्री. [सं. असुर+हिं. आई (प्रत्य.)] **खोटाई, बुराई।**

असूझ—वि [सं. अ+हिं. सूझना] (१) **अंधकारमय** (२) **अपार, बहुत बिस्तृत।** (३) **विकट, कठिन।**

असूत—वि. [सं. असूत्र] **विरुद्ध, असंबद्ध।**

असूया—संज्ञा स्त्री [सं.] **ईर्ष्या, एक संचारी भाव।** उ.—चंद्र भाग सँग गयौ सुधाकर-रिपु सब सुख बिसराई। एक अबल करि रही असूया सूर सुतन कह चाई—सा. ४९।

असैला—वि. [सं. अ=नहीं+शैली=रीति] (१) **रीति विरुद्ध कर्म करनेवाला, कुमार्गी।** (२) **रीति विरुद्ध, अनुचित।**

असोकी—वि. [सं. अ=नहीं+शोक+हिं. ई (प्रत्य.)] **शोकरहित।**

असोच—वि [सं. अ=नहीं+शोच] **निश्चिंत, बेफिक्र।** उ.—माधौ जू, मन सबही बिधि पोच। अति उन्मत्त निरंकुस मैगल, चिंता रहित असोच—१-१०२।

असोज—संज्ञा पु. [सं. अश्वयुज] **आश्विन, क्वार।**

असोस—वि. [सं. अ=नहीं+शोष] **न सूखनेवाला।**

असौच—वि. [सं. अशौच] **अपवित्र**। उ.—हौं असौच अकृत, अपराधी, सनमुख होत लजाऊँ—१-१२८।

असौंधि—संज्ञा पु. [सं. अ=नहीं+हिं. सौंध=सुगंध] **दुर्गन्धि**।

असेस—वि. [सं. अशेष] (१) **पूरा, सब**। (२) **अपार, अधिक, अनंत**। उ.—गगन गर्जत बीजु तरपत मधुर मेह असेस—२२६०।

अस्त—वि. [सं.] (१) **छिपा हुआ**। (२) **अदृश्य, डूबा हुआ**। (३) **नष्ट, ध्वस्त**।

संज्ञा पु. [सं.] **तिरोधान, लोप**।

अस्तन—संज्ञा पु. [सं. स्तन] **स्त्रियों की छाती जिनमें दूध रहता है**।

मुहा०—अस्तन-पान कराई—**दूध पिलाती है**। उ.—बालक लियौ उछंग दुष्टमति, हरषित अस्तन-पान कराई—१०-५०।

अस्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. अस्थि] **हड्डी**। उ.—बहुरि हरि आवहिंगे किहि काम। । सूर स्याम ता दिन ते बिछुरे अस्ति रही कै चाम—२८२३।

अस्तुत—संज्ञा स्त्री. [सं. अ=नहीं+स्तुति] **निंदा**। उ.—ह्वै गए सूर सून सूरज बिरह अस्तुत फेर—सा. ३३।

अस्तुति—संज्ञा स्त्री. [सं. स्तुति] **स्तुति, विनती, प्रार्थना**। उ.—मुनि सिव ब्रह्म अस्तुति करी—४-५।

अस्त्र—संज्ञा पु. [सं.] (१) **फेंककर शत्रु पर चलाये जानेवाले हथियार, जैसे बाण, शक्ति**। (२) **वह हथियार जिससे दूसरे अस्त्र फेंके जायँ जैसे धनुष, बंदूक**। (३) **शत्रु के हथियारों की रोक करने वाले हथियार, जैसे ढाल**। (४) **मंत्र द्वारा चलाये जाने वाले हथियार**। उ.—अस्वत्थामा बहुरि खिसाइ। ब्रह्म-अस्त्र को दियौ चलाइ—१-२८३।

अस्थल—संज्ञा पु. [सं. स्थल] **स्थल, स्थान**। उ.—अस्थल लीपि, पात्र सब धोए, काज देव के कीन्हे—१०-२६०।

अस्थान—संज्ञा पु. [सं. स्थान] **स्थान, ठौर, आश्रय**। उ.—पतितपावन जानि सरन आयौ। उदधि-संसार सुभ नाम-नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ—१-११६।

अस्थामा—संज्ञा पु. [सं. अश्वत्थामा] **द्रोणाचार्य का पुत्र**। उ.—भीषम द्रोन करन अस्थामा सकुनि सहित काहूँ न सरी—१-२४६।

अस्थि—संज्ञा स्त्री. [सं.] **हड्डी**।

अस्थिर—वि. [सं.] (१) **जो स्थिर न हो, चंचल**। (२) **बेठौर-ठिकाने का**। (३) **स्थिर, अचंचल**। उ.—भक्तनि हाट बैठि अस्थिर ह्वै हरि नग निर्मल लेहि। कामक्रोध मद-लोभ मोह तू, सकल दलाली देहि—१-३१०।

अस्नान—संज्ञा पु. [सं. स्नान] **स्नान**। उ.—करि अस्नान नंद घर आए—१०-२६०।

अस्पर्स—संज्ञा पु. [सं. स्पर्श] **स्पर्श, छूना**। उ.—जब गजेंद्र कौ पग तू गैहै। हरि जू ताकौं आनि छुटैहै। भए अस्पर्स देव-तन धरिहै। मेरौ कह्यौ नाहिं यह टरिहै—८-२।

अस्म—संज्ञा पुं. [सं. अश्मन्, अश्म] **पत्थर**। उ.—(क) कौर-कौर कारन कुबुद्धि, जड, किते सहत अपमान। जँह-जँह जात तही तहिं त्रासत अस्म, लकुट, पदत्रान—१-१०३। (ख) आपुन तरि तरि औरन तारत। अस्म अचेत प्रकट पानी मैं, बनचर लै लै डारत—९-१२३।

अस्मय—संज्ञा पु. [सं. असमय] **विपत्ति का समय, बुरा समय**।

क्रि. वि—**कुअवसर पर**।

अस्व—संज्ञा पुं. [सं. अश्व] **घोड़ा, तुरंग**।

अस्वथाम, अस्वत्थामा—संज्ञा पु. [सं. अश्वत्थामा] **द्रोणाचार्य का पुत्र**। उ—अस्वत्थामा भय करि भग्यौ। । अस्वत्थाम न जब लगि मारी। तब लगि अन्न न मुख मैं डारौं—१-२८९।

अस्वमेध—संज्ञा पु. [सं. अश्वमेध] **एक महान् यज्ञ जिसमें घोड़े के मस्तक पर जय-पत्र बाँध कर भूमंडल की दिग्विजय की जाती थी। पश्चात्, घोड़े की चर्बी से हवन किया जाता था जो साल भर में समाप्त होता था।**

अस्विनिसुत—संज्ञा पु. [सं. अश्विनीसुत] **त्वष्टा की पुत्री प्रभा नामक स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र। एक बार सूर्य का तेज सहन करने में असमर्थ हो, यम-यमुना नामक पुत्र पुत्री के पास अपनी छाया छोड़, प्रभा भाग**

गयी और घोड़ी बन कर तप करने लगी। इस छाया से भी सूर्य को शनि और ताप्ती नामक दो संतति हुईं। पश्चात्, प्रभा की छाया ने अपनी संतान से प्रेम और प्रभा के पुत्र-पुत्री का तिरस्कार करना आरंभ किया। फलतः प्रभा के भाग जाने की बात खुल गयी। तब सूर्य अश्वरूप में अश्विनी रूपिणी प्रभा के पास गये। इस संयोग से दोनों अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई।

अहं—सर्व. [सं] **अहंकार, अभिमान**। उ.—ज्यौं महाराज या जलधि तैं पार कियौ, भव-जलधि पार त्यौं करौ स्वामी। अहं-ममता हम सदा लागी रहै, मोह-मद-क्रोध-जुत मद कामी—८-१६।

अहँकार, अहंकार—संज्ञा पु. [सं. अहंकार] (१) **अभिमान, गर्व**। (२) **मैं और मेरा का भाव, ममत्व**।

अहंकारी—वि. [सं. अहंकारिन] **अभिमानी, घमंडी**।

अहंभाव—संज्ञा पु. [सं.] **अपने को सब कुछ समझने का भाव, अहंकार, अभिमान**। उ.—अहंभाव तैं तुम बिसराए, इतनहिं छूट्यौ साथ—१-२०८।

अहंवाद—संज्ञा पुं. [सं.] **डींग मारना**।

अह—संज्ञा पुं. [सं. अहन्] **दिन**। उ.—मही एक अह अरु निसि दुखी—१० उ.-१३८।

यौ. अहनिसि [सं. अहर्निश] **दिनरात**। उ.—तृष्णा-तडित चमकि छनहीं-छन, अहनिसि यह तन जारौ—१-२०६।

अहकना—क्रि. सं. [हिं. अहक+ना (प्रत्य.)] **इच्छा करना, चाहना**।

अहटाना—क्रि. अ. [हिं. आहट] (१) **आहट लगना, पता चलना**। (२) **टोह लगना**।

क्रि अ. [सं. आहत] **दुखना**।

अहल्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] **गौतम ऋषि की पत्नी**।

अहदी—वि. पु. [अ.] (१) **आलसी**। (२) **अकर्मण्य**।

संज्ञा पु. [अ.] **अकबर के समय के ऐसे सिपाही जो विशेष आवश्यकता के अवसर पर काम में लगाये जाते थे, शेष समय बैठे खाते थे। मालगुजारी वसूलने जाकर ये अकर बैठ जाते थे और बकाया लेकर ही लौटते थे**। उ.—घेरयौ आय कुटुम-लसकर मैं, जम अहदी पठयौ। सूर नगर चौरसी भ्रमि भ्रमि घर घर कौ जु भयौ—१-६४।

अहना—क्रि. स. [सं. अस्ति] **वर्तमान रहना, होना**।

अहनिसि—क्रि. वि. [सं अहर्निश] **दिन रात**।

अहने—संज्ञा पु. [सं. आह्वान, हि. अहान,] **पुकार, शोर, चिल्लाहट**।

अहमिति—संज्ञा स्त्री. [सं. अहम्मति] (१) **अहंकार**। (२) **अविद्या**। उ.—रे मन जनम अकारथ खोइसि। हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्ही, उदर भरे परि सोइसि। निस-दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि—१-३३३।

अहलना—क्रि. अ. [सं. आहलनम्] **हिलना, काँपना**।

अहलाद—संज्ञा पु. [सं. आह्लाद] **आनंद, हर्ष**। उ.—(क) ताको पुत्र भयौ प्रहलाद। भयौ असुर-मन प्रति अहलाद—७-२। (ख) आनंदित गोपी-ग्वाल नाचै कर दै दै ताल, अति अहलाद भयौ जसुमति माइ कैं—१०-३१। (ग) हंस साखा सिखर पर चढि करत नाना नाद। मकरनि जु पद निकट बिहरत मिलन अति अहलाद—सा. उ०-५।

अहवान—संज्ञा. पु. [आह्वान] **बुलाना, आवाहन**।

अहार—संज्ञा पु. [सं. आहार] **भोजन**।

अहारना—क्रि. स. [सं. आहरणम्] **खाना, भोजन करना**।

अहारी—वि. [सं. आहारिन्, हि. आहारी] **खानेवाला**। उ.—अपद-दुपद-पसु भाषा बूझत अबिगत अल्प अहारी—८-१४।

अहि—संज्ञा पु. [सं.] **साँप**।

अहिइंद्र—संज्ञा पु. [सं.] **कालियनाग**। उ.—यह कह्यौ नंद, नृप बंदि, अहि इंद्र पै गयौ मेरौ नंद, तुव नाम लीन्हौ—५८४।

अहित—संज्ञा पु [सं.] **बुराई, अकल्याण**। उ.—दुरबासा दुरजोधन पठयौ पाडव-अहित बिचारी। साक पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी—१-१२२।

वि.—(१) **शत्रु, बैरी**। (२) **हानिकारी**। उ.—छहौ रस जौ धरौ आगै, तउ न गंध सुहाइ। और अहित भच्छ अभच्छति कला बरनि न जाइ—१-५६।

अहिनाह—संज्ञा पु. [सं. अहिनाथ] **शेषनाग**।

अहिपति-सुता-सुवन—संज्ञा पु [स (अहि=नाग)

अहिपति=(ऐरावत=वशी कौरव्य नाग)+सुता (=कौरव्य नाग की कन्या उलूपी)+ सुवन (उलूपी का पुत्र बभ्रुवाहन)] **बभ्रुवाहन जो अर्जुन का पुत्र था और जिसने युद्ध मे पिता को मूर्छित कर दिया था।** उ.—अहिपति-सुता-सुवन सन्मुख ह्वै बचन कह्यौ इक हीनौ। पारथ बिमल बभ्रुबाहन कौ सीस खिलौना दीनौ—१-२६।

अहिनी—संज्ञा स्त्री. [स. अहि (पु.)] **साँपिन, सर्पिणी** उ.—चंदन खौरि ललाट स्याम के निरखत अति सुखदाई। मानहुँ अर्धचंद्र तट अहिनी सुधा चारावन आई—१३५०।

अहिबेल—संज्ञा स्त्री [सं. अहिवल्ली, प्रा. अहिवेली] **नागबेलि, पान।**

अहिर—संज्ञा पु. [स. आभीर, हिं. अहीर] **अहीर, ग्वाला।**

अहिराइ—संज्ञा पु. [हि. अहिराय] **कालियनाग।** उ.—उरग लियौ हरिकौ लपटाइ। गर्व-बचन कहि-कहि मुख-भाखत, मोकौ नहिं जानत अहिराइ—५५५।

अहिराज—संज्ञा पु. [सं.] **कालियनाग।** उ.—सूर के स्याम, प्रभु-लोक अभिराम, बिनु जान अहिराज बिष-ज्वाल बरसै—५५२।

अहिलता—संज्ञा स्त्री. [स.] **नागबेलि, पान।** उ.—अहिलता रग मिट्यौ अधरन लग्यौ दीपकजात—२१३०।

अहिल्या—संज्ञा स्त्री. [स. अहल्या] **गौतम ऋषि की पत्नी जिसका सतीत्व इन्द्र ने भ्रष्ट किया था और जो पति के शाप से पत्थर की हो गयी थी। श्री रामचन्द्रजी के चरण-स्पर्श से इसका उद्धार हुआ।**

अहिवात—संज्ञा पु. [स. अभिवाद्य, प्रा. अहिवाद] **सौभाग्य, सोहाग।** उ.—(जब) कान्ह काली ले चले, तब नारि बिनवै देव हो। चेरि कौ अहिवात दीजै, करै तुम्हरी सेव हो—५७७।

अहिसायी—संज्ञा पु. [स. अहि+हिं. शायी (स. शायिन्)] **शेषनाग की शैया पर सोनेवाले विष्णु।** उ.—हरिहर संकर नमो नमो। अहिसायी, अहिअंग-बिभूषन, अमित दान, बल-बिष-हारी—१०-१७१।

अहीर—संज्ञा पु. [सं. अभीर] **ग्वाला।**

अहीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. अहीरिन] **ग्वालिन।** उ.—नैकहूँ न थकत पानि, निरदई अहीरी—३४८।

अहुटना—क्रि. अ. [स. हठ, हिं. हटना] **हटना, दूर होना।**

अहुटै—क्रि. अ. [हिं. अहुटना] **दूर हो, हटे।** उ.—हम अबला अति दीन-हीन मति तुमही हो बिधि योग। सूर बदन देखत ही अहुटै या सरीर को रोग।

अहुटाना—क्रि. स. [हि. अहुटना] **हटाना, दूर करना, भगाना।**

अहुठ—वि. [स. अध्युष्ठ, अर्द्ध मा. अद्धुट्ठ] **साढ़े तीन, तीन और आधा।** उ.—(क) गिरि-नगर परत, जाति नहि उलँघी, अति स्रम होत नघावत। अहुठ पैग बसुधा सब कीनी, धाम अवधि बिरमावत १०-१२५। (ख) जब मोहन कर गही मथानी। . . . । कबहुँक अहुठ परग करि बसुधा, कबहुँक देहरि उलँघि न जानी।

अहेर—संज्ञा पु. [स. आखेट] (१) **शिकार, मृगया।** (२) **वह जिसका शिकार खेला जाय।**

अहेरी—संज्ञा पु. [हिं. अहेर] **शिकारी, आखेटक।** उ.—लयौ घेरि मनो मृग चहुँ दिसि त अचूक अहेरी नहिं अजान—२८३८।

अहेरौ—संज्ञा पु. [स. आखेट, हिं. अहेर] **अहेर, शिकार, भोजन।** उ.—केतिक सख जुगै जुग बीत, मानव असुर अहेरौ—६-१३२।

अहै—क्रि. अ. [स. अस्ति, हि. अहना] **वर्तमान है।** उ.—(क) राखन हार अहै कोउ और, स्याम धरे भुज चारि—७-३। (ख) मुरली मे जीव-प्रान बसत अहै मेरौ—१०-२८४।

अहो—अव्य, [सं.] **विस्मयादिबोधक अव्यय जिसका प्रयोग करुणा, खेद, प्रशंसा, हर्ष, विस्मय आदि सूचित करने के लिए होता है। कभी कभी संबोधन की तरह भी यह प्रयुक्त होता है।** उ.—(क) जिन तन-मन मांहि प्रान समरपे, सील, सुभाव, बडाई। ताको बिषम बिचार अहो मुनि मोपै सह्यौ न जाई—६-७। (ख) अहो महरि पालागन मेरौ, मैं तुमरौ सुत देखन आई—१०-५१। (ग) नद कह्यौ घर जाहु कन्हाई। गो

मे तुम जैहो जिनि कहुँ अहो महरि सुत लेहु बुलाई--९१२।

अहौ –संज्ञा पु [सं. अहि] **सर्प, साँप** । उ.—सुधि न रही अति गलित गात भयौ जनु डसि गयौ अहौ--२६६७।

आ

आ—देवनागरी वर्णमाला का दूसरा अक्षर । यह 'अ' का दीर्घ रूप है ।

आंक--संज्ञा पु. [सं अंक] (१) **अंक, चिह्न** । (२) **दाग, धब्बा** । उ.—कनर मिलो लोचन बरषत अति पुरा मुख के छबि रोयो । राहु केतु मानो सुमीढ़ि मिधु आँक छुटावत धोयो—३४८२ । (३) **संख्या का चिह्न** । (४) **अक्षर** (५) **निश्चय, सिद्धांत** । (६) **अंश, भाग, हिस्सा** । (७) **बार, दफा** । उ.—एकहु आँक न हरि भजे, (रे) रे सठ, सूर गँवार—१-३२५ ।(८) **गोद** ।

आँकना—क्रि. स. [स. अकन] (१) **चिह्नित या अंकित करना** । (२) **मूल्य अनुमानना** । (३) **निश्चित करना, ठहराना** ।

आँकरो--वि. [स. आकर=खान (गहरी), हिं. आँकर] (१) **गहरा** । (२) **बहुत अधिक** ।

आँकुस--संज्ञा पु. [स. अकुश] **अंकुश** ।

आँख--संज्ञा स्त्री. [स. अक्षि, प्रा. अक्खि, प. अँक्ख] **लोचन, नेत्र, नयन** ।

आँखड़ी--संज्ञा स्त्री [हिं. आँख+डी (प्रत्य.)] **आँख** ।

आँखि—संज्ञा स्त्री. [हिं आँख] **नेत्र, लोचन** । उ.—हरि ग्वालनि मिलि खेलन लागे बन मे आँखि मिचाइ—२३७८ ।

मुहा०—आवत न आँखि तर—**आँख तले नहीं आता, तुच्छ मानता है, कुछ नही समझता** । उ.—नख-सिख लौ मेरी यह देही है पाप की जहाज । और पतित आवत न आँखि तर देखत अपनौ साज—१ ९६ । आँखि गडि लागत—(१) **खटकता है, चुभता है, बुरा लगता है** । (२) **मन में बसता है, ध्यान पर चढ़ता है, पसंद आता है** । उ.—जाहु भले हो कान्ह दान अँग-अँग को माँगत । हमरौ यौवन रूप आँखि इनके गडि लागत—१०२५ । आँखि दिखावत--**सक्रोध देखता है, क्रोध से घूरता है, कोप जताता है** । उ.—आँखि दिखावत हौ जु कहाँ तु। करिहौ कहा रिसाय । हम अपनो भायौ करि लैहै छाहु कुँअरि के पाय—२४४७ (७) । आँखि धूरि दनी—**धोखा दिया, भ्रम में डाला** । उ.—हरि की माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीनी । लाल ढिगनि की सारी ताको पीत उढनियाँ कीनी—९९४ । धूरि दै आँखि—**आँख में धूल झोंककर, धोखा देकर, भ्रम में डालकर** । उ.—सोइ अमृत अब पीवति मुरली सबहिन के सिर नाखि । लिए छँडाइ निडर सुनि सूरज बेनु धरि दै आँखि । आँखि लगी--(१) **प्रीति हुई** । (२) **टकटकी बँधी, दृष्टि जम गयी** । (३) **नींद आयी, झपकी लगी** । उ.—बहुरचौ भूलि न आँखि लगी । सुपेनेहू के सुख न सहि सकी नीद जगाइ भगी—२७६० । देखौ भरि आँखि—**आँख भरकर देखूँ, इच्छा भर देखूँ, देखकर अघा जाऊँ** । उ.—अबकै जौ परचौ करि पावौ अरु देखो भर आँखि । सूरदास सोने कै पानी मढौ चोच अरु पाँखि—९-१३४ । आँखि नहिं मारत—**पलक नहीं झपकाते, जरा नहीं थकते, विश्राम नहीं करते, भयभीत नहीं होते** । उ —जाहि जल तृन, पसु दारु बूडि, अपनै सँग औरन पारत । तिहि जल गाजत महाबीर सब तरत आँखि नहिं मारत—९-११२ ।

आँखिनि--संज्ञा स्त्री सवि. [हि. आँख+नि (प्रत्य.)] **आँखों में, नेत्रों मं** ।

मुहा०—आँखिनि धूरि दई—**आँखों में धूल झोंकी, सरासर धोखा दिया, भ्रम में डाला** । उ.—ज्यौं मधुमाखी सँचति निरतर, बन की ओट लई । ब्याकुल होइ हरे ज्यौ सरबस आँखिनि धूरि दई—१-५० ।

आँखी—संज्ञा स्त्री [हि. आँख] **नेत्र, लोचन** ।

आँग—संज्ञा पु [स. अंग] (१) **अंग, शरीर** । (२) **कुच, स्तन** ।

आँगन—संज्ञा पु. [स. अगण] **घर का चौक, अजिर** ।

आँगिरस—संज्ञा पु. [सं.] **अंगिरा के पुत्र बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त** ।

आँगी—संज्ञा स्त्री. [सं. अंगिका, प्रा. अंगिआ] **अँगिया, चोली।**

आँगुर—संज्ञा पु. [सं. अंगुली] **अगुल।**

आँगुरी—संज्ञा स्त्री. [स. अगुली, हि. उँगली] **उँगली।** उ.—कहाँ मेरे कान्ह की तनक सी आंगुरी, बडे बडे नखनि के चिन्ह तेरे—१०-३०७।

आँच—संज्ञा स्त्री. [स. अर्चि=आग की लपट, पा. अच्चि] (१) **गरमी, ताप।** उ.—मेरे दधि को हरि स्वाद न पायो। चोरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर आँच मे औटि सिरायो। (२) **आग, अग्नि।** (३) **ताव।** (४) **तेज, प्रताप।** (५) **विपति, सकट, संताप।** उ.—बाएँ कर बाजि-बाग दाहिने है पैठ। हाँकत हरि हाँक देत, गरजत ज्यौ ऐंठ। छाता लौ छाँह किए साभित हरि छाती। लागन नहि देत कहूँ समर आँच ताती—१-२३। (६) **प्रेम, मोह।**

आँचना—क्रि. स. [हि. आँच] **जलाना, तपाना।**

आँचर—संज्ञा पु. [स. अचल हि. आँचल,] **अंचल, आँचल।** उ.—स्रवन मूँदि, मुख आचर ढाँप्यौ, अरे निसाचर, चोर—६-८३।

आँचल—संज्ञा पु. [स. अचल] (१) **स्त्रियों की धोती, साडी आदि का सामने का भाग जो छाती पर रहता है।** (२) **पल्ला, छोर।**

आँची—संज्ञा स्त्री. [हि. आँच] (१) **तेज, प्रताप।** (२) **क्रोध।** उ.—ब्रह्म रुद्र डर डरत काल कैं, काल डरत भ्रू भंग की आँची—१-१८।

आँचे—क्रि. स. [हि. आँच, आँचना] **जलाया, तपाया।** उ.—प्रीति के बचन बाच बिरह अनल आँचे अपनी गरजे का तुन एक पाइ तावे—२००३।

आँजति—क्रि. स. [सं. अजन] **अंजन लगाती है।** उ.—(क) रबि ससि कोटि कला अवलोकत त्रिविध ताप छय जाइ। सो अंजन कर लै सुत-चच्छुहिं आँजति जसुमति माइ—८८७। (ख) निमिष निमिष मे धावति आँजति सिखए आवत रग—पृ० ३२५।

आँजन—संज्ञा पु. [हि. अजन] **काजल, अजन।**

आँजना—क्रि स. [हि. अजन] **अजन लगाना।**

आँजि—क्रि. स. [स. अजन, हि. अँजना] **अंजन लगाकर।** उ.—कान्हैं गरे सोहति मनि-माला, अग अभूषन अँगुरिनि गोल। सिर चौतनी, डिठौना दीन्हौ आँखि आँजि पहिराइ निचोल—१०-९४।

आँजै—क्रि. स. [हि. अंजन, आँजना] **अंजन या काजल लगाकर।** उ.—सूरदास सोभा क्यो पावत आँखि आधरी आँजे—३२३०।

आँट—संज्ञा पु. [हि. अटी] (१) **दाँव, वश।** (२) **गाँठ, गिरह।**

आँटना—क्रि. अ. [हि. अँटना] (१) **समाना, अँटना।** (२) **मिलना।** (३) **पहुँचना।**

आँदू—संज्ञा पु. [स. अदू=बडी] (१) **लोहे का कड़ा, बेड़ी।** (२) **बाँधने की जंजीर।**

आँध—संज्ञा स्त्री. [सं. अध] (१) **अँधेरा, धुध,** (२) **अंधा।** (३) **मतवाला, कामांध।** उ.—सुरपुर का मन हर्यौ कामिनी, सेज छाडि भू सोयौ। चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख-सिख तैं रोयौ—१-४३।

आँधना—क्रि. अ. [हि. आँधी] **सवेग आक्रमण करना।**

आँधर, आँधरा—वि. [स. अंध] **अंधा, नेत्रहीन।**

आँधरि, आँधरी—संज्ञा स्त्री. [हि. आँधरी] **अधी स्त्री।** उ.—(क) कच खुवि आँधरि काजर कानी नकटी पहिरे बसरि—३०२५। (ख) सूरदास सोभा क्यौं पावत आँखि आँधरी आँजें—३२३०।

आँधरो—वि. [सं. अंध, हि. अधा] **अंधा।** उ.—सूर, कूर, आँधरौ, मैं द्वार परचौ गाऊँ—१-१६६।

आँधारंभ—संज्ञा पु. [हि. अंधेर+आरंभ] **अंधेरखाता।**

आँधी—संज्ञा स्त्री. [सं. अंध=अँधेरा] **अंधड़, अंधबाव।**

आँब—संज्ञा पु. [स. आम्र, हि. आम] **आम।** उ.—(क) सालन सकल कपूर सुबासत। स्वाद लेत सुंदर हरि ग्रासत। आँब आदि दै सबै सँधाने। सब चाखे गोबर्द्धन-राने—३९६। (ख) नीब लगाइ आँब क्यो खावै—१०४२। (ग) मनो आँब दल मोर देखिकै कुहुकि कोकिला बानी हो—१५५६।

आँवड़ना—क्रि. अ. [हि. उमडना] **उमड़ना।**

आँवड़ा—वि. [हि. उमडना] **गहरा।**

आँवरे—संज्ञा पु. बहु. [स. आमलक, प्रा. आमलओ, हि. आँवला] **आँवले।**

आँवा—संज्ञा पु. [सं. आपाक] **गड्ढा जिसमें कुम्हार मिट्टी के बरतन पकाते हैं।**

आँस—संज्ञा स्त्री. [सं. काश=क्षत, हि. गाँस] **वेदना, पीड़ा।**

आँसी—संज्ञा स्त्री. [सं. अंश=भाग] **इष्ट-मित्रों के यहाँ भेजी जानेवाली मिठाई, भाजी।**

आँसु—संज्ञा पुं. [सं. अश्रु, पा० प्रा. अस्सु] **अश्रु।** उ.-निज कर चरन पखारि प्रेम-रस आनँद-आँसु ढरे-९-१७१।

आँसुवनि—संज्ञा पुं. बहु० [सं. अश्रु, पा. प्रा० अस्सु, हि. आँसू] **आँसुओं से।**

मुहा०—आँसुवनि मुख धोवै—**बहुत रो रहा है, बड़ा विलाप कर रहा है।** उ.-देखो माई कान्ह हिलकियनि रोवै। इतनक मुख माखन लपटान्यौ, डरनि आँसुवनि धोवै-३४७।

आँसू—संज्ञा पु० [सं. अश्रु, पा० प्रा० अस्सु] **अश्रु।**

आ—अव्य० [सं.] **सीमा, व्याप्ति आदि सूचक अव्यय** जैसे—आमरण, आजीवन।

उप—**यह प्राय. 'गति' सूचक धातुओं के पूर्व जुड़कर अर्थ में विशेषता लाता है।** जैसे—आगमन।

संज्ञा पुं.—**ब्रह्मा।**

आइ—क्रि. अ. [हिं आना] **आकर, पहुँचकर।** उ.—(क) कहा बिदुर की जाति बरन है, आइ साग लियौ मंगी-१-२१। (ख) सुख मे आइ सबै मिलि बैठत, रहत चहुँदिसि घेरे—१-७९।

मुहा०—आइ परै-**आ जाय, उपस्थित हो, सहना पड़े।** उ.-सुख दुख कीरति भाग आपने आइ परै सो गहियै-१-६२।

संज्ञा स्त्री० [सं. आयु] **आयु, उम्र।** उ.-(क) सतयुग लाख बरस की आइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ-१-२३०। (ख) पाँच बरस की भई जब आइ। सडामर्कहि लियौ बुलाइ—७-२। (ग) बीतै जाम बोलि तब आयौ, सुनहुँ बंस तव आइ सरयौ—१०-५९।

आइयै—क्रि. अ. [हि आना] **(आदरसूचक संबोधन) आगमन कीजिए, पधारिए।** उ.-टेरत हैं बार-बार आइयै कन्हाई—६११।

आइयाँ—क्रि. अ. [हि. आना] **आये है।** उ.-कंस-कारन गेंद खेलत कमल कारन आइयाँ—५७७।

आइस, आइसु—संज्ञा स्त्री [सं. आयसु] **आज्ञा।**

आइहैं—क्रि. अ. भवि. बहु. [हि. आना] **आवेंगे।**

यौ.—लै आइहैं—**ले आवेंगे।** उ.—नाग नाथि लै आइहैं, तब कहियौ बलराम—५८९।

आइहै—क्रि. अ. भवि. एक. [हि आना] **आयगा।** उ.-सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरै निकट—८-१६।

आई—क्रि. अ. स्त्री. [हि० आना] **स्थल-विशेष पर एकत्र हुई या पहुँचीं।** उ.—आजु बधायौ नंदराइ कैं, गावहु मंगलचार। आईं मंगल-कलस साजिकै, दधि फल नूतन-डार—१०-२७।

आई—क्रि. अ. [पु. हि. आवना, हि. आना] **'आना' क्रिया का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप।** उ.-बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुण्ठ पठाई-१-३।

मुहा०—जो मुख आई-**बिना सोचे-समझे जो बात ध्यान में आयी, कह दी।**-उ-भवन गई आतुर ह्वै नागरि जे आई मुख सबै कही-२१४२।

संज्ञा स्त्री—[सं. आयु] **आयु, जीवन।**

आउ—क्रि. अ. [हि. आना] **आ, आ जा, आओ।** उ.—हरि की सरन महँ तू आउ—१-३१४।

संज्ञा स्त्री. [सं. आयु] **आयु, उम्र, जीवन।**

आउज—संज्ञा पुं [सं. वाद्य, प्रा. वज्ज] **ताशा नामक बाजा।** उ.—वीना-झाँझ-पखाउज-आउज और राजसी भोग। पुहुप-प्रजंक परी नवजोवनि, सुखपरिमल-संजोग—९-७५।

आउबाउ—संज्ञा पुं. [सं. वायु=हवा] **अंड-बंड, निरर्थक प्रलाप।**

आऊँ—क्रि अ. [हि. आना] **आगमन करूँ।** उ—नौका हौ नाही लै आऊँ—९-४१।

आऊँगो—क्रि. अ. भवि [हि. आना] **आऊँगा।** उ—स्याम बाम को सुख दै बोले रैनि तुम्हारे आऊँगो—१९४४

आऊ—क्रि. अ. [हिं. आना]। **आये, आओ।** उ.—मैया बहुत बुरौ बलदाऊ। कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ—४८१।

आए—क्रि. अ. [पु हि. आवना, हि. आना] **'आना' क्रिया का भूतकालिक बहुवचन अथवा आदरसूचक**

रूप । उ.—संतत भक्तमीत-हितकारी, स्याम बिदुर कैं आए—१-१३ ।

आऐं—क्रि. अ. [हि. आना] **आने पर, आ जाने से ।** उ.—पकरयौ चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलख बदन भइ डौलै । जैसें राहु नीच ढिग आऐं, चन्द्र-किरन झक-झौलै—१-२५६ ।

आक—संज्ञा पुं. [सं अर्क, प्रा. अक्क] **मदार, अकौआ ।** उ.—जिहि दुहि धेनु औटि पय चाख्यो ते मुख परसै छाक । ज्यौ मधुकर मधुकमलकोश तजि रुचि मानत है आक—पृ. ३३३ ।

आकबाक—संज्ञा पुं. [सं. वाक्य] **अंडबंड या ऊटपटाँग बात ।**

आकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **खानि, उत्पत्ति-स्थान ।** (२) **भंडार ।** (३) **भेद, प्रकार ।**

वि०—(१) **श्रेष्ठ, उत्तम ।** (२) **अधिक ।** (३) **दक्ष, कुशल ।**

आकरखना—क्रि. स. [हिं. आकर्षना] **आकर्षित करना ।**

आकरषन—संज्ञा पुं. [सं. आकर्षण] **खिंचाव ।**

क्रि. प्र.—**करी—खींची ।** उ.—तिन माया आकरषन करी । तब वह दृष्टि नृपति कै परी—६-२ ।

आकरषि—क्रि. स. [सं. आकर्षण, हि, आकर्षना] **खींचकर । आकर्षित करके ।** उ.—सूर-प्रभु आकरषि ताते सकर्षन है नाम—२५८२ । (ख) कालिंदी को निकट बुलायो जल-क्रीड़ा के काज । लियौ आकरषि एक छन में हलिकति समरथ यदुराज ।

आकर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] **खिंचाव ।**

आकर्षक—वि. [स] **अपनी ओर खींचनेवाला ।**

आकर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] **खिंचाव ।**

आकर्षन—संज्ञा पुं. [सं. आकर्षण] **खिंचाव ।**

आकर्षना—क्रि. स. [सं. आकर्षण] **खींचना ।**

आकर्ष्यौ—क्रि. स. [स. आकर्षण , हि. आकर्षना] **आकर्षित किया, खींचा ।** उ.—(क) सजन कुटुंब परिजन बढ़े (रे) सुत-दारा-धन-धाम । महामूढ़ विषयी भयौ, (रे) चित आकर्ष्यौ काम—१-३२५ । (ख) चित आकर्ष्यौ नंद-सुत मुरली मधुर बजाइ—११८२ ।

आकलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **ग्रहण, लेना ।** (२) **संग्रह, संचय ।** (३) **गिनती करना ।**

आकली—संज्ञा स्त्री. [सं. आकुल + ई (प्रत्य.),] **आकुलता, बेचैनी ।**

आकसमात, आकस्मात—क्रि. वि. [सं. अकस्मात्] **सहसा, एकाएक ।**

आकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बनावट, संघटन ।** उ.—(क) सागर पर गिरि, गिर पर अंबर, कपि घन कैं आकार—६-१२४ । (ख) इत धरनि उत ब्योम के बिच गुहा कै आकार । पैठि बदन बिदारि डारयौ अति भये बिस्तार—४२७ । (२) **आकृति, मूर्ति ।** (३) **तरह, भाँति, प्रकार, रूप ।** उ.—सुंदर कर आनन समीप अति राजत इहि आकार । जलरुह मनौ बैर बिधु सौं तजि, मिलत लए उपहार—१०-२८३ । (४) **डील-डौल ।**

आकारि—संज्ञा पुं. [सं. आकार] **स्वरूप, आकृति, मूर्ति, रूप ।** उ.—एक मास यह ह्वैहै नारि । दूजे मास पुरुष आकारि—६-२ ।

आकारी—वि. [सं. आकारण=आह्वान] **बुलानेवाला ।**

आकास—संज्ञा पुं [सं. आकाश] (१) **अंतरिक्ष, गगन ।** (२) **शून्य स्थान जहाँ चंद्र, सूर्य आदि स्थित है ।** उ.—लंका राज बिभीषन राजै, ध्रुव आकास बिराजैं—१-३६ ।

मुहा.—बाँधति आकास—**अनहोनी या असंभव बात कहती हो ।** उ.—कहा कहति डरपाइ कछू मेरे घटि जैहै । तुम बाँधति आकास बात झूठी को सैहै ।

आकासकुसुम—संज्ञा पुं. [सं. आकाशकुसुम] (१) **आकाश का फूल ।** (२) **अनहोनी या असंभव बात ।**

आकाशबानी—संज्ञा स्त्री. [सं. आकाशवाणी] **देववाणी, आकाशवाणी ।** उ.—सूर आकासबानी भई तबै तहँ यहै बैदेहि है, करु जुहारा—६-७६ ।

आकुलता—संज्ञा स्त्री. [सं०] **व्याकुलता, घबराहट ।** उ.—कबहुँक बिरह जरति अति ब्याकुल आकुलता मन मो अति —१६४६ ।

आकुलित—वि. [सं०] (१) व्याकुल घबराया हुआ। (२) व्याप्त।

आकृति—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) बनावट, गढ़न, ढाँचा, अवयव। (२) मूर्ति, रूप। उ.—जानु सुजघन करभ-कर आकृति, कटि-प्रदेश किंकिनि राजै—१-६६। (३) मुख (४) मुख का भाव, चेष्टा।

आक्रमण—संज्ञा पुं. [सं०] (१) चढाई, धावा। (२) आक्षेप करना, निंदा करना।

आक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] कोसना, गाली देना।

आक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरोप, दोष लगाना। (२) कटूक्ति, निन्दा।

आखत—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत, प्रा० अक्खत] अक्षत।

आखना—क्रि. स. [सं० आख्यान, प्रा० अक्खान, पं० आखना] कहना, बोलना।

क्रि० स० [सं० आकांक्षा] चाहना, इच्छा करना।

क्रि० स० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि = आँख] देखना, ताकना।

आखर—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर, प्रा. अक्खर] अक्षर। उ.—गौरि गनेस्वर बीनऊ (हो) देवी सारद तोहि। गावौं हरि कौ सोहिलौ (हो), मन-आखर दै मोहि—१०-४०।

आखा—वि. [सं. अक्षय, प्रा. अक्खय] (१) कुल, पूरा। (२) अनगढ़ा।

आखिर—वि. [फा. आखिर] (१) अंतिम, पिछला। (२) समाप्त।

संज्ञा पुं—अंत। (२) परिणाम, फल।

क्रि. वि.—(१) अंत में, अंत को। उ.—औरन सी मोहू को जानति मोते बहुरि रमवैगी। सूर स्याम तोहि बहुरि मिलैहौ आखिर हौ प्रगटावैगी—२१७७। (२) हार मानकर, लाचार होकर। (३) अवश्य। (४) भला, अच्छा, खैर।

आखेट—संज्ञा पुं. [सं] अहेर, शिकार।

आखेटक—संज्ञा पुं. [स.] अहेर, मृगया।

वि.—शिकारी, अहेरी।

आखो—वि. [सं. अक्षय, प्रा. अक्खय, हि. आखा] कुल, पूरा, समस्त। उ.—कहिबे जीय न कछू सक राखो। लावा मेलि दए हैं तुमको बकत रहो दिन आखो —३०२१।

आख्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कीर्ति, यश। (२) व्याख्या।

आख्यात—वि. [सं.] (१) प्रसिद्ध, विख्यात। (२) कहा हुआ।

आख्यान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वर्णन, वृत्तांत। (२) कथा, कहानी।

आख्यानक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वर्णन, वृत्तांत। (२) कथा, कहानी। (३) पूर्व विवरण।

आगंतुक—संज्ञा पुं. [सं.] अतिथि, पाहुना, आनेवाला व्यक्ति।

आग—संज्ञा स्त्री. [सं. अग्नि, प्रा. अग्गि] अग्नि, वसुंदर। उ.—तप कीन्हैं सो देहैं आग। ता सेती तुम कीनौ जाग—९-२।

संज्ञा पुं. [सं. अग्र] ऊख का अगौरा। उ.—मिल्यौ सुहायौ साथ स्याम कौ कहाँ हंस कहाँ काग। सूरदास प्रभु ऊख छाँड़ि कै चतुर चचोरत आग—३०९५।

आगत—वि. [सं] आया हुआ, प्राप्त, उपस्थित।

संज्ञा पुं.—मेहमान, अतिथि।

आगत स्वागत—संज्ञा पुं. [सं. आगत+स्वागत] आये हुए व्यक्ति का आदर-सत्कार, आवभगत। उ.—मेरी कही साँचि तुम जानो कीजै आगत स्वागत। सूर स्याम राधावर ऐसे प्रीति हिये अनुरागत—१४८२।

आगम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अवाई, आगमन। उ.—(क) श्री मथुरा ऐसी आजु बनी। देखहु हरि जैसे पति आगम सजति सिंगार धनी—२५६१। (ख) अविनासी कौ आगम जान्यौ सकल देव अनुरागी—१०-४। (ग) गिरि गिरि परत बदन तै उर पर हैं दधि-सुत के बिंदु। मानहुँ सुभग सुधाकन बरसत प्रियजन आगम इंदु—१०-२८३। (घ) स्याम कह्यौ सब सखन सौ लावहु गोधन फेरि। सध्या कौ आगम भयौ ब्रज तन हाँकौ हेरि। (ङ) निसि आगम श्रीदामा के सँग नाचत प्रभुहि देखावौ—३४१०। (२) आनेवला समय। (३) होनहार,

भवितव्यता। (४) समागम, संगम। (५) शास्त्र। उ.—भजि मन नंदनंदन चरन। परम पकज अति मनोहर, **सकल** सुख के करन। सनक संकर ध्यान धारत, निगम-आगम बरन—१-३०८। (६) **उत्पत्ति।** उ.—प्रथम समागम आनँद आगम दूलह वर दुलहिनी दुलारी—१० उ.-३६। (७) **नीति।**

वि. [सं] **आनेवाला, आगामी।** उ.-दर्सन दियौ कृपा करि मोहन बेगि दियौ बरदान। आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान।

आगमन—संज्ञा पुं. [सं] **अवाई, आना।**

आगमवाणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **भविष्यवाणी।**

आगमी—संज्ञा पुं. [सं. आगम=भविष्य] **ज्योतिषी।**

आगर—संज्ञा पुं. [सं आकर=खान] (१) **खान, आकर।** (२) **समूह, ढेर।** उ.—सूर स्याम ऐसे गुन-आगर नागरि बहुति रिझाई (हो)-७००। (३) **कोष, निधि।** उ—सूर स्याम बिनु क्यौं मन राखौ तन जोबन को आगर—२६८०।

संज्ञा पुं. [सं. अर्गल=ब्योंड़ा] **ब्योंड़ा, अगरी।** उ.—आगर एक लोहजरित लीन्हो बलबंड। दुहूँ करन असुर हयौ भयौ माँस पिंड—६-६६।

संज्ञा पुं. [सं. आगार=घर] (१) **घर।** (२) **छप्पर, छाजन।**

वि. [सं. आकर=श्रेष्ठ] (१) **श्रेष्ठ, उत्तम।** उ.-(क) सोचि बिचारि सकल स्रुति-सम्मति हरि तैं और न नागर-१-६१। (ख)द्वारैं ठाढ़े हैं द्विजबावन। चारौ बेद पढ़त मुख आगर, अति सुकंठ सुर गावन-८-१३। (२) **चतुर, दक्ष, कुशल।**

आगरी—संज्ञा. स्त्री. [सं. आकर=खान, हि. पुं.आगर] **समूह, ढेर।** उ.-(क) मोहन तेरे अधीन भये री। इति रिस कबते कीजत री गुन आगरी नागरी—२२५०। (ख) मोहन ते रसरूप आगरी करति न जानि निकाई—१२३५।

वि.—**समृद्ध, संपन्न, पूर्ण, भरी-पुरी।** उ.—तेरे अनउत्तर सुनि सुनि स्याम हँसि हँसि देत नैक चितै इत भाग आगरी—२२५०।

आगरे—संज्ञा पुं. [सं. आकर=खान, हि, आगर] **समूह, ढेर।** उ.-(क) सूर एक ते एक आगरे वा मथुरा की खानि—३०५१। (ख) मधुकर जानत हैं सब कोऊ। जैसे तुम अरु सखा तिहारे गुनन-आगरे दोऊ—३३५३।

आगल—संज्ञा पुं. [सं अर्गल] **अगरी, ब्योंड़ा।**

आगवन—संज्ञा पुं. [सं. आगमन] **आना।**

आगा—संज्ञा पुं. [सं अग्र, प्रा. अग्ग] (१) **छाती, वक्षस्थल।** (२) **ललाट, माथा।**

आगान—संज्ञा पुं. [स. आ+गान=बात] **प्रसंग, वृत्तांत।**

आगामी—वि. [सं. आगामिन्] **होनहार, आनेवाला।**

आगार—संज्ञा पुं. [सं] (१) **घर, मंदिर।** (२) **स्थान।** (३) **निधि, कोष।**

आगि—संज्ञा स्त्री. [सं. अग्नि, हि. आग] **आग, आँच।** उ.-इहि उर आनि रूप देखे की आगि उठै अगि-आई-३३४३।

आगिल—वि. [हि. आगे] (१) **आगे का, अगला।** (२) **भावी, होनेवाला।**

आगिला—वि. [हि. अगला] (१) **आगे का।** (२) **आनेवाला।**

आगिलौ—वि. [हि. आगे, अगला] **भविष्य का होने वाला, आगे आनेवाला।** उ.—जौ तू राम-नाम धन धरतौ। अबकौ जन्म, आगिलौ तेरौ, दोऊ जनम सुधरतौ-१-२६७।

आगिवर्त—संज्ञा पुं. [सं. अग्निवर्त] **एक प्रकार के मेघ।** उ.-सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए। जल-वर्त, वारिवर्त, पवनवर्त, बज्रवर्त आगिवर्त, जलद संग आए।

आगी—क्रि. वि. [सं. अग्र, प्रा. अग्ग, हि. आगे] **आगे, पहले, प्रथम।** उ.-ग्वालनि संग तुरत वै धाई। अपने मन मैं हर्ष बढ़ाई। काहू पुरुष निवारयौ आइ। कहाँ जाति है री अतुराइ। तिन तौ कह्यौ न कीन्हौ कानी। तन तजि चली बिरह अकुलानी। धन्य धन्य वै परम सभागी। मिलीं जाइ सबहिनि तैंआगी-८००।

आगे—क्रि. वि. [सं. अग्र, प्रा. अग्ग०] (१) **और दूर पर, और बढ़कर।** (२) **जीते जी, जीवन में।** **भविष्य के लिए।** उ.-पछिले कर्म सम्हारत नाही करत नहीं

कछु आगें–१–६१। (४) समक्ष, सम्मुख, सामने। उ.—(क) श्रीदामा चले रोइ जाइ कहिहौं नँद आगे —५८६। (ख) माँगि लेहु एही बिधि मोसे मो आगे तुम खाहू–१००४। (ग) अब न देहि उराहनो जसुमतिहि आगे जाइ–२७५६। (५) अनंतर, बाद। (६) पूर्व, पहले। उ.–आगे हूँ के लोग भले हो पर-हित लागे डोलत–३३६३। (७) अतिरिक्त, अधिक। (८) तुलना, समता, बराबरी। उ.–पूजत सुरपति तिनके आगे–१०१६।

मुहा.—आगेकियौ–आगे बढाया, चलाया। उ.–चक्र सुदर्सन आगे कियौ। कोटिक सूर्य प्रकासित भयौ। आगे लेन सिधायौ–स्वागत किया, अभ्यर्थना की। उ.–हरि आगमन जानि कै भीषम आगे लेन सिधायौ। आगे ह्वै लयौ–आगे बढ़कर स्वागत किया। उ.–तब ब्रजराज सहित सब गोपिन आगे ह्वै लयौ—३४४४।

आगैं—क्रि. वि [सं अग्र, प्रा. अग्ग, हि. आगे] (१) समक्ष, सम्मुख, सामने। उ.–माधौ जू, यह मेरी इक गाइ। ......। अब आज तैं आप आगैं दई, लै आइए चराइ—१–५१। (ख) माधौ, नैंकु हटकौ गाइ। ... छहौ रस जौ धरौ आगैं, तऊ न गंध सुहाइ १–५६। (ग) दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हे गई महरि के आगे—१०–३१७। (२) भविष्य में, आगे चलकर। उ.–(क) कहत हे आगैं जपिहैं राम। बीचहिं भई और की औरे, परयौ काल सौं काम–१–५७। (ख) पाछैं भयो न आगैं ह्वैहै, सब पतितनि सिरताज–१९६। (ग) यह तौ कथा चलैगी आगैं सब पतितनि मैं हाँसी–१–१६२। (३) और दूर, और बढ़कर। उ.–यह कहि ऊधव आगैं चले—३–४।

आगौन—संज्ञा पुं- [सं. आगमन, प्रा. आगवन] अवाई, आना।

आग्नेय—वि. [सं.] (१) अग्नि का (२) अग्नि से उत्पन्न, अग्नि-जनित।

आग्यौ—क्रि. वि. [सं. अग्र, प्रा, अग्ग, हिं. आगे] आगे, भविष्य में।

वि. [हि. आग] दग्ध, दुखित, पीड़ित।

उ.–तौ तुम कोऊ तारयौ नाहिंन जौ मोसौं पतित नं दाग्यौ। स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारौ आग्यौ–१–७३।

आग्रह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनुरोध, हठ। (२) तत्परता। (३) बल, आवेश।

आघ—संज्ञा पुं. [सं. अर्घ, प्रा. अग्घ=मूल्य] मूल्य, दाम, कीमत।

आघात—संज्ञा पु. [सं] (१) धक्का, ठोकर। (२) शब्द, ध्वनि, गूँज, गरज। उ.–(क) चढ़ि गिरि–सिखर सब्द उचरयौ, गगन उठ्यौ आघात—६–७४। (ख) सागर पर गिरि, गिरि पर अंबर, कपि घन कैं आकार। गरज किलक आघात उठत, मनु दामिनि पावक झार—६–१२४। (ग) महाप्रलय के मेघ उठि करि जहाँ तहाँ आघात—१०–६४। (२) मार, प्रहार, चोट, आक्रमण। उ.–सुनत घहरानि ब्रज लोग चकित भये, कहा आघात धुनि करत आवै–१०–६२।

आघ्राण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूँघना (२) अघाना, तृप्ति।

आचमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल पीना। (२) शुद्धि के लिए मुँह में जल डालना।

आचरज—संज्ञा पुं. [हि. अचरज] आश्चर्य, विस्मय। उ.–यमुना तट आइ अक्रूर अन्हाए। स्याम बलराम कौ रूप जल मे निरखि बहुरि रथ देखि आचरज पाए—२५७०।

आचरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) व्यवहार, चाल-चलन। (२) आचार-शुद्धि। (३) अनुष्ठान।

आचरतौ—क्रि. स. [सं. आचरना] आचारण करता व्यवहार करता। उ.—मुख मृदु बचन जानि मति जानहु, सुद्ध पंथ पग धरतौ। कर्म-बासना छाँड़ि कबहुँ नहि साप पाप आचरतौ—१-२०३।

आचरन -संज्ञा पुं. [सं. आचरण] आचरण-व्यवहार, चालचलन।

आचरना—क्रि. स. [सं. आचरण] आचरण या व्यवहार करना।

आचरित—वि. [सं.] किया हुआ।

आचरु—क्रि. स. [हिं. आचरना] व्यवहार में लाओ,

आचरण करो ।

आचानक—क्रि. वि. [हि. अचानक] **सहसा, एकाएक ।**

आचार—संज्ञा पुं. [स.] (१) **रहन-सहन, कार्य-व्यवहार ।** (२) **चरित्र, चाल-चलन ।** (३) **शील ।** उ.—(क) मृग-तृष्ना आचार-जगत जल, तासँग मन ललचावै । कहत जु सूरदास संतनि मिलि हरि-जस काहे न गावै—२-१३ । (ख) जो चहै मोहि मै ताहि नाही चहौं, असुर कौ राज थिर नाहिं देखौं। तपसियन देखि कह्यौ, क्रोध इनमै बहुत, ज्ञानियनि मै न आचार पेखौ—८-८ ।

आचारज—संज्ञा पुं. [सं. आचार्य]**आचार्य ।**

आचारी—वि. [सं. आचारिन्] **चरित्रवान, शुद्ध आचरण का ।**

आचार्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **पुरोहित ।** (२) **अध्यापक ।**

अचिंत्य—वि. [सं.] **चिंतन करने योग्य ।**

संज्ञा पुं. [सं.] **परमेश्वर, जो चिंतन में नहीं आ सकता ।**

आच्छन्न—वि. [सं.] **ढका हुआ, आवृत्त ।**

आच्छादन—संज्ञा पुं. (१) **ढकन ।** (२) **ढकने का वस्त्र ।**

आच्छादित—वि. [सं.] (१) **ढका हुआ, आवृत्त ।** (२) **छिपा हुआ ।** (३) **सघन, घटायुक्त ।** उ.—निसि सम गगन भयो आच्छादित बरषि बरषि भर इंदु—६६७ ।

आछत—क्रि. वि. [अ. क्रि. 'आछना' का कृदंत रूप] **होते हुए, विद्यमानता में, सामने ।**

आछना—क्रि. वि. [सं. अस्=होना] (१) **होना ।** (२) **विद्यमान रहना ।**

आछा—वि. पुं. [हि. अच्छा] **अच्छा, भला ।**

आछी—वि. स्त्री. [हि. पुं. अच्छा] **भली, अच्छी, उत्तम, खरी ।** उ.—(क) लै पौढ़ी आँगन ही सुत कौ, छिटकि रही आछी उजियरिया—१०-२४६ । (ख) सूर लखि भई मुदित सुन्दर करत आछी उक्ति—सा. १४ ।

वि. [सं. अशिन] **खानेवाला ।**

आछे—वि. [हि. अच्छा] **अच्छे, भले, उत्तम, श्रेष्ठ ।** उ.—(क) आछे मेरे लाल (हो), ऐसी आरि न कीजै—१०-१६० । (ख) जैहैं बिगरि दाँत ये आछे, तातैं कहि समुझावति—१०-२२२ । (ग) मोर-मुकुट मकराकृति कुंडल, नैन बिसाल कमल हैं आछे…… पहुँचे आइ स्याम ब्रजपुर मै, घरहि चले मोहन-बल-आछे—५०७ ।

क्रि. वि.—**अच्छी तरह, खूब, बहुत ।** उ.—बाँसुरी बजाइ आछे रंग सौ मुरारी । सुनिकै धुनि छूटि गई शंकर की तारी—६४६ ।

आछै—क्रि. वि. [हि. अच्छा] **अच्छी तरह, खूब ।** उ.—आछै औट्यौ मेलि मिठाई, रुचि करि अँचवत क्यौ न नन्हैया—१०-२२६ ।

आछो, आछौ—वि. [हि. अच्छा] (१) **श्रेष्ठ, उत्तम, भला ।** उ.—(क) आछौ गात अकारथ गारयौ । करी न प्रीति कमल-लोचन सौ, जनम-जुवा ज्यौ हारयौ—१-१०१ । (ख) तुरत मथ्यौ दधि लागत अति प्यारौ, और न भावै मोहि—४६४ (२) **मंगलकारी, शुभ घड़ीवाला ।** उ.—आछो दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान करयौ—१०-८८ ।

आछयौ—वि. [हि. आछा, अच्छा] **अच्छा, भला, सुन्दर ।** उ.—एक सखी हलधर बपु काछयौ । चढ़ी नीलपट ओढे आछयौ—२४१७ ।

आज—संज्ञा पुं. [स. अद्य, पा. अज्ज](१) **वर्तमान दिन, जो दिन बीत रहा है, वह ।** उ.—माधौ जू, यह मेरो इक गाइ । अब आज तैं आप आगै दई लै आइयै चराइ—१-५१ । (२) **वर्तमानकाल ।**

क्रि. वि.—(१) **वर्तमान दिन में ।** (२) **वर्तमान समय में ।**

आजन्म—क्रि. वि. [सं.] **जीवनभर, जन्मभर ।**

आजानबाहु—वि. [स.] **जिसके हाथ घुटने तक लंबे हों ।**

आजानु—वि. [स] **घुटने तक लंबा ।**

आजीवन—क्रि. वि. [सं.] **जीवन भर ।**

आजीविका—संज्ञा. स्त्री. [स.] **वृत्त, रोजी, जीवन का सहारा ।** उ.—बहुरि सब प्रजा मिलि आइ नृप सौ कह्यौ, बिना आजीविका मरत सारी—४-११ ।

आजु—क्रि. वि. [स. अद्य, पा. अज्ज,] **आज ।** उ.—आजु हौ एक-एक करि टरिहौ ।—११३४ ।

आज्ञा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आदेश, निर्देश (२) स्वीकृति, अनुमति ।

आज्ञाकारी—वि. [सं. आज्ञाकारिन्] **आज्ञा माननेवाला ।** उ.—(क) सती सदा मम आज्ञाकारी—४-५ । (ख) पतिव्रता अति आज्ञाकारी—१० उ.-५६ ।

आटना—क्रि. स. [सं. अट्ट] **तोपना, दबाना ।**

आठ—वि. [सं. अष्ट, प्रा. अट्ठ] **चार की दूनी सूचक संख्या ।**

आठक—वि. [सं. अष्ट, पा. अट्ठ,+हि. एक] **आठ, लगभग आठ ।**

आठवाँ—वि. [सं. अष्टम, प्रा. अट्ठव] **अष्टम ।**

आठहूँ—वि. [सं. अष्ट, प्रा. अट्ठ, हि. आठ] **आठों, कुल आठ ।** उ.—सूर स्याम सहाइ हैं तौ आठहूँ सिधि लेहि- —१-३१४ ।

आठें—संज्ञा स्त्री. [सं. अष्टम] **अष्टमी तिथि ।**

आठै—संज्ञा स्त्री. [सं. अष्टमी] **अष्टमी तिथि ।** उ.—(क) आठै कृष्न पच्छ भादौं, महर कैं दधिकादौं, मोतिनि बँधायौ बार महल मैं जाइ कै—१०-३१ । (ख) सबत सरस बिभावन, भादौं, आठै तिथि, बुधवार । कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि, हर्षन जोग उदार—१०-८६ । (ग) आठैं सुनि सब साजि भए हरि होरी है—१४१० ।

आठों—संज्ञा स्त्री. [सं. अष्टम] **अष्टमी तिथि ।**

आठ्य—वि. [सं.] (१) **संपन्न, पूर्ण, धनी ।** उ.—हुतौ आठ्य तब कियौ असद्व्यय, करी न ब्रज-बन-जात्र । पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र—१-२१६ । (२) **युक्त, विशिष्ट ।**

आडंबर—संज्ञा पुं. [सं.] **तड़क-भड़क, टीमटाम, झूठा आयोजन ।** उ.—पहिरि पटंबर, करि आडंबर, यह तन झूठ सिंगारयौ । काम-क्रोध मद-लोभ, तिया-रति, बहु बिधि काज बिगारयौ—१-३३६ । (२) **गंभीर शब्द ।**

आड़—संज्ञा स्त्री. [सं. अलं=वारण, रोक] (१) **ओट, परदा ।** (२) **शरण, आश्रय ।** (३) **रोक ।** (४) **टेक, थूनी ।**

संज्ञा स्त्री. [सं. आलि=रेखा] (१) **माथे पर लगाने की लंबी टिकली ।** (२) **स्त्रियों के माथे का आड़ा तिलक ।** (३) **माथे पर पहनने का एक गहना ।**

आड़ना—क्रि. स. [सं. अल्= वारण करना] (१) **रोकना, घेरना** (२) **बाँधना ।** (३) **मना करना ।** (४) **गिरवीं रखना ।**

आढ़—संज्ञा स्त्री. [हि. आड़] (१) **ओट, पनाह ।** (२) **सहारा, ठिकाना ।** (३) **अंतर, बीच ।**

मुहा.—आढ़ आढ कियौ—**टाल-मटोल किया, आज-कल किया ।** उ.—जारि मोहिनी आढ आढ कियौ (चारु मोहिनी आइ आधु कियौ) तब नखसिख तैं रोयौ—१-४३ ।

वि. [सं. आढ्य=संपन्न] **कुशल, दक्ष ।**

संज्ञा स्त्री. [हि. आड=टीका] **माथे पर पहनने का स्त्रियों के लिए एक आभूषण ।**

आतंक—संज्ञा पुं [सं.] (१) **प्रताप, रोब ।** (२) **भय, शंका ।**

आततायी—संज्ञा पुं. [सं. आततायिन्) **अत्याचारी ।**

आतप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **धूप, घाम ।** (२)**उष्णता ।** (३) **सूर्य का प्रकाश ।**

आतपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] **छाता, छतरी ।** उ.—आतपत्र मयूरचांद्रिका लसति है रवि ऐनु—२७८५ ।

आतम—वि. [सं. आत्मन्, हि. आत्म] **अपना, स्वकीय, निजी ।** उ.—मोह-निसा कौ लेस रह्यौ नहिं, भयौ बिवेक बिहान । आतम-रूप सकल घट दरस्यौ, उदय कियौ रवि-ज्ञान—२-३३ ।

संज्ञा स्त्री. [सं. आत्मा] । उ.—(क) आतम अजन्म सदा अबिनासी । ताकौ देह-मोह बड़ फाँसी—५-४ । (ख) एकइ आतम हम-तुम माँही—११-६ ।

आतमज्ञान—संज्ञा पुं. [सं. आत्म ज्ञान] **स्वरूप की जानकारी ।**

आतमा—संज्ञा स्त्री. [सं. आत्मा](१) **जीव ।** (२) **चित्त ।** (३) **बुद्धि** (४) **मन ।** (५) **ब्रह्म ।**

आतिथ्य—सं. स्त्री. [सं.] (१) **अतिथि-सत्कार ।** (२) **अतिथि का उपहार ।**

आतुर—वि. [सं.] (१) **व्याकुल, व्यग्र, अधीर ।** उ.—(क) जब गज गह्यौ ग्राह जल-भीतर, तब हरि कैं उर

ध्याए (हो)। गरुड़ छाँड़ि, आतुर ह्वै धाए, सो तत-काल छुड़ाए (हो)—१-७। (ख) नवसत साजि सिंगार बनी सुन्दरि आतुर पंथ निहारति—२५६२।
(२) उत्सुक। (३) दुखी।
क्रि. वि.—शीघ्र, जल्दी। उ.–आतुर रथ हाँकौ मधुबन को ब्रजजन भए अनाथ—२५३४।

आतुरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) व्याकुलता, व्यग्रता, अधीरता। (२) उतावलीपन, शीघ्रता।

आतुरताइ, आतुरताई—संज्ञा स्त्री [सं. आतुरता + ई प्रत्य.] (१) शीघ्रता। उ.—(क) सैननि नागरी समुझाइ। खरिक आवहु दोहनी लै, यहै मिस छल लाइ। गाइ-गनती करन जैहैं, मोहि लै नँदराइ। बोलि बचन प्रमान कीन्हौ, दुहुनि आतुरताइ–६७६। (ख) स्याम काम तनु आतुरताइ–६७६। (ख) स्याम काम तनु आतुरताई ऐसे बामा बस्य भए री–पृ. ३५३ (९८)। (२) घबडाहट, व्याकुलता, व्यग्रता। उ.–(क) स्याम कुंज बैठारि गई। चतुर दूतिका सखियन लीन्हे आतुरताई जानि लई–१८७६। (ख) ज्यौं ज्यौं मौन भई तुम, उनके बाढ़ी आतुरताई–२२७५।

आतुरी—क्रि. वि. [सं. आतुर] शीघ्र, जल्दी।
वि.—घबडाई हुई। उ.—नारि गईं फिरि भवन आतुरी–३९१
संज्ञा स्त्री. [सं. आतुर+ई (प्रत्य.)] (१) व्याकुलता, व्यग्रता। (२) शीघ्रता, उतावली।

आतुरे—वि. [सं. आतुर] अधीर, उद्विग्न। उ.—सूर स्याम भए काम आतुरे भुजा गहन पिय लागे–१८६६।

आत्म—वि. [सं. आत्मन्] अपना, निजी।

आत्मकल्याण—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी भलाई।

आत्मकाम—वि. पुं. [सं.] अपना ही मतलब साधने वाला, स्वार्थी।

आत्मगौरव—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान।

आत्मज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पुत्र। (२) कामदेव।

आत्मज्ञ—वि. [सं. आत्म=निज + ज्ञ=जानने वाला] अपना स्वरूप जाननेवाला।

आत्मज्ञान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वरूप की जानकारी। (२) जीव और परमात्मा के सम्बन्ध की जानकारी। (३) ब्रह्म का साक्षात्कार।

आत्मभू—वि. [सं.] (१) स्वशरीर से उत्पन्न। (२) स्वयं उत्पन्न।

आत्मश्लाघा—संज्ञा पुं. [सं.] अपनी प्रशंसा।

आत्मा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जीव। (२) चित्त। (३) मन (४) ब्रह्म। (५) स्वभाव, धर्म।

आत्मीय—वि. [सं.] निजी, अपना।
संज्ञा पुं.—स्वजन, स्वसंबंधी।

आथना—क्रि. अ. [सं. अस्=होना, सं. अस्ति, प्रा० अत्थि] होना।

आथी—संज्ञा स्त्री. [सं. स्थातृ; हि. थाती] धन-संपत्ति।
संज्ञा स्त्री. [सं. अर्थ] समृद्धि, संपन्नता।

आदत—संज्ञा स्त्री. (१) स्वभाव, प्रकृति। (२) अभ्यास।

आदमी—संज्ञा पुं. [अ.] (१) मनुष्य, मानव जाति। (२) नौकर, सेवक। (३) पति।

आदर—संज्ञा पुं. [सं.] सम्मान, सत्कार, प्रतिष्ठा। उ.—अपने कौ को न आदर देइ–१-२००।

आदरणीय—वि. [सं.] सम्मान के योग्य।

आदरना—क्रि. स. [सं० आदर] आदर करना, मानना।

आदरभाव—संज्ञा पुं. [सं. आदर + भाव] सम्मान, सत्कार। उ.—ऊधो, चलौ बिदुर कैं जइयै। दुर-जोधन कैं कौन काज जहँ आदर-भाव न पइयै—१-२३९।

आदरयौ—क्रि. सं. [हि. आदरना] आदर या सम्मान किया। उ.—तेहि आदरयौ त्रिभुवन के नायक अब क्यौं जात फिरयौ—१० उ –६८।

आदर्श—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जिसका अनुकरण किया जाय। (२) दर्पण। (३) टीका, व्याख्या।

आदान-प्रदान—संज्ञा पुं. [सं.] लेना-देना।

आदि—अव्य. [सं] इत्यादि, आदिक। उ.–सिंह-सावक ज्यौं तजैं गृह, इंद्र आदि डरात—१-१०६।
वि. [सं.] प्रथम, पहला, शुरू का। उ.–गाउँ-गाउँ के बत्सला मेरे आदि सहाई। इनकी लज्जा नहिं हमै, तुम राज बड़ाई—१-२३८।

अव्य. [सं.] आदिक, इत्यादि ।

मुहा० आदि दै—आदि से लेकर, इत्यादि । उ.—इहि राजस को को न बिगोयौ ? हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, रावन, कुंभकरन कुल खोयौ—१-५४ ।

संज्ञा पुं. [सं.] परमात्मा, ईश्वर ।

आदिक—अव्य [सं.] आदि, इत्यादि । उ.—कौसल्या आदिक महतारी आरति करहिं बनाइ—९-२६ ।

आदित—संज्ञा पुं. [सं. आदित्य] (१) देवता । (२) सूर्य । उ.—हरि दर्सन सत्राजित आयौ । लोगन जान्यौ आवत आदित हरिसौं जाइ सुनायौ—१० उ०-२६ ।

आदित्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवता । (२) सूर्य । (३) इन्द्र । (४) विश्वेदेवा । (५) वामन ।

आदिष्ट—वि. [सं.] जिसको आदेश दिया गया हो ।

आदृत—वि [सं.] आदर किया हुआ, सम्मानित ।

आदेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आज्ञा । उ.—चतुर चेट की मथुरानाथ सौं कहियौ जाइ आदेश—३१२५ । [सूर ने इसको प्रायः स्त्रीलिंग रूप में लिखा है ।] (२) उपदेश । (३) प्रणाम, नमस्कार ।

आदेस—संज्ञा पुं. [सं. आदेश] आज्ञा ।

आद्यंत—क्रि. वि. [सं. आदि+अंत] आदि से अंत तक ।

आध—वि. [हिं. आधा] आधा । उ.—(क) आध पैंड बसुधा दै राजा, ना तरु चलि सत हारी—८-१४ । (ख) हैं प्रभु कृपा करन रघुनन्दन, रिस न गहैं पल आध—९-११५ ।

आधा—वि. [सं. अर्द्ध, पा. अद्धो, प्रा. अद्ध,] किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक, अर्द्ध ।

आधार—संज्ञा पुं. [सं] (१) आश्रय, सहारा, अवलंब। उ.—(क) यहै निज सार, आधार मेरौ यहै, पतित-पावन बिरद बेद गावै—१-११० । (ख) बेद, पुरान, सुमृति, संतनि कौ, यह आधार मीन कौ ज्यौं जल—१-२०४ । (२) पात्र । (३) नींव, मूल । (४) आश्रयदाता । सहारा देने वाला व्यक्ति ।

आधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] चिंता, सोच ।

आधिक—वि. [हिं. आधा+एक] आधा ।

क्रि. वि.—आधे के लगभग, थोड़ा ।

आधिक्य—संज्ञा पुं. [सं.] अधिकता ।

आधी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. आधा] किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक ।

आधीन—वि. [सं. अधीन] आश्रित, वशीभूत, लिप्त । उ.—(क) ज्यौं कपि सीत-हतन-हित गुंजा सिमिटि होत लौलीन । त्यौं सठ वृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत विषय-आधीन—१-१०२ । (ख) भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी-आधीन—१-३२१ । (ग) सूरदास प्रभु बिन देखियत है सकल बिरह आधीन—२५३९ । (२) विवश, लाचार, दीन । उ.—अति आधीन हीन मति ब्याकुल कहौं लौं कहौं बनाइ—२८११ ।

संज्ञा पुं.—दास, सेवक ।

आधीनता—संज्ञा स्त्री. [सं. अधीनता] (१) परवशता । (२) लाचारी, दीनता ।

आधीनौ—वि. [सं. अधीन] आश्रित, वशीभूत, दबैल । उ.—(क) पंच प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-बिधान जौ कीनौ । अधिकारी जम लेखा माँगै, तातै हौं आधीनौ—१-१८५ । (ख) मैं निज भक्तनि कै अधीनौ—९-५ ।

आधीर—वि. [सं. अधीर] व्याकुल, अधीर । उ.—समर मारहु कीट की रट सहत त्रिय आधीर—३१८० ।

आधुनिक—वि [सं] वर्तमान समय का ।

आधे—वि [सं. अर्द्ध, पा० अद्धो प्रा. अद्ध, हिं. आधा] आधा भाग । उ.—आधे-मैं जल वायु समावै —३-२३ ।

क्रि. वि.—आधे के समीप, थोड़ा । उ.—हलधर निरखत लोचन आधे—२६०६ ।

आधै—वि. [सं अर्द्ध, पा० अद्धो, प्रा अद्ध, हिं. आधा] आधा ही । उ.—लालहिं जगाइ बलि गई माता । निरखि मुख-चंद-छबि, मुदित भई मनहिं मन, कहत आधै बचन भयो प्राता—४४० ।

आधो, आधौ—वि. [सं अर्द्ध, पा. अद्धो, प्रा. अद्ध, हिं. आधा] आधा । उ.—(क) हौं तौ पतित सिरोमनि

माधौ। अजामील बातनि हीं तारयो, हुतो जु मोतैं आधौ—१-१३६। (ख) बारंबार निरखि सुख मानत तजत नही पल आधो—२५०८। (२) थोड़ा, जरा भी। उ.—तुम अलि सब स्वारथ के गाहक नेह न जानत आधो—३२४४।

आध्यात्मिक—वि. [सं] आत्मा-संबंधी।

आनंद, आनँद—संज्ञा पुं [सं०] हर्ष, प्रसन्नता, सुख, मोद, आह्लाद।

वि.—सानंद, आनंदमय, प्रसन्न।

आनंदत—क्रि. अ. [स. आनंद] आनन्द मनाते हुए, प्रसन्न, हर्षित। उ.—दसरथ चले अवध आनंदत—६-२७।

आनंदित, आनंदी—वि. [सं] प्रसन्न, सुखी, हर्षित।

आनंदन—संज्ञा पुं. [सं. आनंद] आनंद, सुख। उ.—(क) कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन—४७६। (ख) कुँवरि सुनि पायौ अति आनंदन—१० उ.-१६।

आनन्दना—क्रि. अ. [हि. आनंद] सुख मानना, प्रसन्न होना।

आनंदबधाई—संज्ञा स्त्री. [सं. आनन्द+हि. बधाई] (१) मंगल उत्सव, (२) मंगल अवसर।

आनंदबन—संज्ञा पुं. [सं.] काशी, सप्त पुरियों में चौथी, बनारस।

आनन्दे—क्रि. अ. [सं. आनन्द] आनंदित हुए। उ.—(क) ब्रज भयौ महर कै पूत, जब यह बात सुनी। सुनि आनंदे लोग सब, गोकुल-गनक-गुनी—१०-२४। (ख) सूरदास प्रभु के गुन सुनि-सुनि आनन्दे ब्रज-बासी—१०-८४।

आनंदै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. आनंद] आनंद ही आनंद। उ.—आनंदै आनंद बढ़्यौ अति। देवनि दिवि दुंदुभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति—१०-६।

आन—संज्ञा स्त्री. [सं. आणि=मर्यादा, सीमा] (१) मर्यादा। (२) शपथ, सौगंद। उ.—(क) केतिक जीव कृपिन मम बपुरौ, तजै कालहू प्रान। सूर एकहीं बान बिदारैं, श्री गोपाल की आन—१-२७५। (ख) मेरे जिय अब यहै लालसा लीला श्री भगवान। स्रवन करौं निसि-बासर हित सौं, सूर तुम्हारी आन—२-३३। (ग) मोहि आन बृषभान बबा की मैया मंत्र न लैहै—सा. १०। (३) दुहाई, विजय-घोषणा। उ.—(क) मेरे जान जनकपुर फिरिहै रामचन्द्र की आन। (ख) रीछ लंगूर किलकारि लागे करन, आन रघुनाथ की जाइ फेरी—६-१३८ (४) ढंग, अदा, छवि। (५) क्षण, अल्पकाल। (६) अकड़ ऐंठ, ठसक। (७) दबाव, शंका, डर। उ.—हम दधि बेचन जाति हैं मथुरा मारग रोकि रहत गहि अंचल कंस की आन न मानै—१०४३। (८) लज्जा, अदब। (९) प्रतिज्ञा, प्रण, हठ।

वि. [सं. अन्य] दूसरा और। उ.—(क) आन देव की भक्ति भाइ करि कोटिक कसब करैगौ—१-७५। (ख) सूर सु भुजा समेत सुदरसन देखि बिरंचि भ्रम्यौ। मानौ आन सृष्टि करिबे कौं अंबुज नाभि जम्यौ—१-२७३। (ग) जै दिवि भूतल सोभा समान। जै जै जै सूर, न सब्द आन—९-१६६।

आनक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डंका, नगाड़ा। (२) गरजता हुआ बादल।

आनक दुंदुभी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा नगाड़ा। (२) कृष्ण के पिता वसुदेव जी जिनके जन्म पर देवताओं ने नगाड़े बजाये थे।

आनत—वि. [सं.] अत्यंत झुका हुआ, अति नम्र।

क्रि. अ. [हि. आना] आता है, होती है। उ.—(क) माया मंत्र पढ़त मन निसि दिन, मोह मूरछा आनत—१-४६। (ख) इनकै गृह रहि तुम सुख मानत। अति निलज्ज कछु लाज न आनत—१-२८४।

क्रि. स. [सं. आनयन, हिं. आनना] लाता है। उ.—इते मान यह सूर महासठ हरि-नग बदलि बिषय बिष आनत—१-११४।

आनति—क्रि. स. [सं. आनयन, हि. आनना] लाती है, रखती है। उ.—तात कठिन प्रन जानि जानकी, आनति नहि उर धीर—९-२६।

आनद्ध—वि. [सं.] (१) बँधा हुआ। (२) मढ़ा हुआ।

आनन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मुख, मुँह**। (२) **चेहरा**। उ.—कुटिल भृकुटि, सुख की निधि आनन, कल-कपोल की छबि न उपनियाँ—१०-१०६।

आनना—क्रि. स. [सं. आनयन] **लाना**।

आनबान—संज्ञा स्त्री. [हि.] (१) **सजधज, ठाट-बाट**। (२) **ठसक**।

आनयन—संज्ञा पुं. [स.] **लाना**।

आनहु—क्रि. अ. [स. आनयन, हि. आनना] **आओ**। यौ —लै आनहु—ले आओ। उ.—आजु बन कोऊ वै जनि जाइ। सब गाइनि बछरनि समेत, लै आनहु चित्र बनाइ—१०-२०।

आना—संज्ञा पुं. [सं. आणक] (१) **रुपए का सोलहवाँ भाग**। (२) **किसी वस्तु का सोलहवाँ भाग**।

क्रि. अ. [पु. हि. आवना] (१) **किसी स्थान की ओर चलना, पहुँचना**। (२) **जाकर वापस आना, लौटना**। (३) **प्रारम्भ होना**। (४) **फलना, फूलना**। (५) **किसी भाव का जन्मना**।

आनाकानी—संज्ञा स्त्री. [सं. आनाकर्णन] (१) **सुनी अनसुनी करना, ध्यान न देना**। (२) **टालमटोल**। (३) **कानाफूसी, इशारों से बात**।

आनि—क्रि, स. [सं. आनयन, हि. आनना] **लाकर, पकड़कर,**। उ.—(क) सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी—१-१६। (ख) गुरु-सुत आनि दिए जमपुर तैं—१-१८।

क्रि. अ.[हि. आना]**आकर, पहुँचकर**। उ.—(क) हरि सौं मीत न देख्यौ कोई। बिपति-काल सुमिरत तिहिँ औसर आनि तिरीछौ होई—१-१०। (ख) सूर स्याम अबकै इहिँ औसर आनि राखि ब्रज लीजै—२८१६।

आनिय—क्रि. स. [हि. आनना] **लाकर. लाना**। उ.—सगुन मूरति नदनदन हमहि आनिय देहु—३२८६।

आनी—क्रि. अ. [हि. आनना] (१) **लायी गयी, उपस्थित की गयी**। उ.—जब गहि राजसभा मै आनी। द्रुपद-सुता पट-हीन करन कौ दुस्सासन अभिमानी—१-२५०। (२) **ठानी, निश्चित की**। उ.-रिषभदेव तबहीं यह जानी। कह्यौ, इंद्र यह कहा मन आनी—५-२।

आनीजानी—वि. [हि. आना + जाना] **अस्थिर, क्षणभंगुर**।

आने—क्रि. अ. [हि. आनना] **ले आये, छुड़ा लाये**। उ.-गृह आने बसुदेव-देवकी, कंस महाखल मारयौ —१-१७।

आनै—वि. [सं. अन्य, हि. आन] **दूसरा, और**। उ.-अब मैं जानी, देह बुढानी। सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी। आन कहत आनै कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी—१-३०५।

क्रि. स. [सं. आनयन, हि. आनना] **लावे, ले आये**। उ.-कालीदह के फूल कहौ धौं, को आनै, पछितात—५२७

आनौं—क्रि. अ [हि.आनना] **लाऊँगा, मानूँगा**। उ.-जब रथ साजि चढ़ौं रन-सन्मुख जीय न आनौं तंक। राघव सैन समेत सँहारौं, करौं रुधिरमय पंक—६-१३४।

आनौ—क्रि. अ. [हि. आना] (**कोई भाव या विशेषता) उत्पन्न करो**। उ.-(क) जड़ स्वरूप सब माया जानौ। ऐसौ ज्ञान हृदै मैं आनौ—३-१३। (ख) सो अब तुम सौ सकल बखानौ। प्रेम-सहित सुनि हिरदै आनौ —१०-२।

क्रि.स. [सं आनयन, हि. आनना] **लाओ, ले आओ**। उ.-(क) कान्ह कह्यौ हौं मातु अघानौ। अब मोकौं सीतल जल आनौ—३९७। (ख) गेंद खेलत बहुत बनिहै आनौ कोऊ जाइ—५३२।

आन्यौ—क्रि. अ. [पु. हि. आवना, हि. आना] (**कोई भाव) उत्पन्न हुआ या किया**। उ.-(क) ब्रह्मा क्रोध बहुत मन आन्यौ—३-७। (ख) नेक मोहि मुसकात जानि मनमोहन मन सुख आन्यौ—२२७५।

आप—सर्व. [सं. आत्मन्, प्रा. अत्तणो, अप्पण, पु. हि. आपन] (१) **स्वयं, अपनेआप**। उ.-पारथ के सारथि हरि आप भए हैं—१-२३। (२) **'तुम' और 'वे' के स्थान में आदरार्थक प्रयोग**। (३) **ईश्वर**। उ.-अस्तुति करी बहुत ध्रुव सब विधि सुनि प्रसन्न भे आप।

मुहा.—आप आप सौं—**स्वयं से, अपने मनमें (से)**। उ.—पूरब जनम ताहि सुधि रही। आप आप सौं

तब यौ कही—५-३।

संज्ञा पुं. [सं. आपः=जल] जल, पानी।

आपगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी।

आपत—संज्ञा स्त्री. [सं. आपद्] (१) विपत्ति। (२) दुःख, कष्ट।

आपत्काल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विपत्ति। (२) कुसमय।

आपत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुख, क्लेश। (२) विपत्ति। संकट। (३) उज्र, एतराज।

आपदा—संज्ञा स्त्री. [सं] (१) दुख, क्लेश। (२) विपत्ति, संकट। (३) कष्ट का समय।

आपन—सर्व. [हि. अपना] अपना, निजी। उ.—सुनि कृतघन, निसि दिन कौ सखा आपन, अब जो बिसारयौ करि बिनु पहचानि—१-७७

आपनपो—संज्ञा पुं. [हि. अपना + पौ या पा (प्रत्य.)] (१) अपनायत। (२) आत्मभाव।

आपनी—सर्व [हि. पुं. अपना] निजकी; अपनी। उ—गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ —१-१३२।

आपने, आपनै—सर्व. [हि. अपना] अपने, अपने ही। उ.—दुख, सुख, कीरति भाग आपनैं आइ परै सो गहियै—१-६२।

आपनौ—सर्व. [हि. अपना] अपना, स्वयं का, निजी, अपना ही। उ.—रह्यौ मन सुमिरन कौ पछितायौ। यह तन रॉचि रॉचि करि बिरच्यौ, कियौ आपनो भायौ —१-६७।

आपन्न—वि. [सं] (१) दुखी। (२) प्राप्त।

आपस—संज्ञा स्त्री. [हि. आप + से] (१) सम्बन्ध, नाता। (२) एक दूसरे का साथ।

आपहु—सर्व. [हि. आप + हु (प्रत्य.)] स्वयं भी, आप भी। उ.—उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि बिलखावै। कंस मारि, राज करै, आपहु सिरनावै—१-४।

आपा—संज्ञा पुं. [हि. आप] (१) अपनी सत्ता, अपना अस्तित्व। (२) अहंकार, गर्व। (३) होशहवास, सुधबुध।

मुहा०—आपा सँभारयौ—होशियार हुआ, सजग हुआ, सँभल गया। उ.—जाइहौ अब कहाँ सिसु पाँव लैहौ इहाँ छाँडि तीजार आपा सँभार्यौ—१० उ.—५६।

आपाधापी—संज्ञा स्त्री. [हि. आप + धाव] (१) अपनी अपनी चिंता या धुन। (२) खींचतान, लागडाँट।

आपु—सर्व. [हि. आप] स्वयं को, आप को। उ.—सुत कुबेर के मत्त-मगन भए, बिषै-रस नैननि छाए (हो)। मुनि सहाय तै भए जमल तरु, तिन्ह हित आपु बँधाए (हो)—१-७।

आपुन—सर्व. [हि. आप] आप, स्वयं। उ.—दुखित गयंदहि जानि कै आपुन उठि धावै—१-४।

आपुनपौ—संज्ञा पुं. [हि. अपन + पौ या पा (प्रत्य.)] आत्मगौरव, मान, मर्यादा। उ.—धन-सुत-दारा काम न आवै, जिनहि लागि आपुनपौ हारौ —१-८०।

आपुनी—सर्व. स्त्री. [हि. पुं. अपना] निज की। उ.—भक्ति अनन्य आपुनी दीजै—३-१३।

आपुनौ—सर्व. [हि. अपना] अपना। उ.—आपुनौ कल्यान करिलै मानुषी तन पाइ—१-३१५।

आपुस—संज्ञा स्त्री [हि. आप+से=आपस] एक दूसरे का साथ या संबंध। इसका प्रयोग कभी-कभी विशेषण की तरह भी होता है। उ.—(क) दंपति होड़ करत आपुस मै स्याम खिलौना कीन्हौ री—१०-६८। (ख) आपुस मै सब करत कुलाहल, धौरी, धूमरि धेनु बुलाए—४४७। (ग) आपुस मै सब कहत हँसत, येई अबिनासी—४९२। (घ) इजै बिजै दोऊ आपुस में निरये बिधना आनि—१५७२।

आपुहि—सर्व. [हि. आप+हि (प्रत्य.)] अपने को, अपने को ही, स्वयं को। उ.—सूरदास आपुहिं समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ—१-६३।

आपूरना—क्रि. अ. [स. आपूरण] भरना।

आपूरि—क्रि. अ. [सं. अपूरण, हि. आपूरना] भरा हुआ, पूर्ण है, घिरा है। उ.—कहा कहैं छबि आजु की मुख मंडित खुर धूरि। मानौ पूरन चंद्रमा, कुहर रह्यौ आपूरि—४-३७।

आपै—सर्व. [हि. आप] आप ही, स्वयं ही । उ.—हर्त्ता-कर्त्ता आपै सोइ । घट-घट व्यापि रह्यौ है जोइ—७-२।

आप्त—वि. [स०] (१) प्राप्त, लब्ध । (२) कुशल, दक्ष ।

आप्लावन—संज्ञा पुं. [सं] डुबाना, बोरना ।

आब—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) चमक, तडक-भडक, छटा, आभा । (२) प्रतिष्ठा, महिमा । (३) शोभा, छवि ।

संज्ञा. पुं.—पानी ।

आबद्ध—वि [स.] (१) बँधा हुआ । (२) बंदी, कैद ।

आब्दिक—वि. [स] वार्षिक ।

आभ—संज्ञा स्त्री. [सं. आभा] शोभा, कांति ।

संज्ञा पुं [सं. अभ्र] आकाश ।

संज्ञा पुं. [फा. आब] पानी ।

आभरन—संज्ञा पुं. [सं. आभरण] गहना, भूषण, आभूषण । उ.—(क) पहिरि सब आभरन, राज्य लागे करन, आनि सब प्रजा दडवत कीन्हौ—४-११ ! (ख) मनि-आभरन डार-डारन प्रति, देखत छबि मनही अँटकाए — ७८४ ।

आभा—संज्ञा स्त्री [स.] (१) चमक, दमक, कांति, प्रभा । उ.—मुख-छबि देखि हो नँदघरनि । सरस निसि कौ अंतु अगनित इंदु आभा हरनि—३५१ । (२) झलक, प्रतिबिंब, छाया ।

आभार—संज्ञा पुं. [स.] (१) बोझ । (२) गृहस्थी का बोझ ! (३) उपकार, निहोर । उ.—(क) हरि बसी हरि दासी जहाँ। हरि करुना करि राखहु तहाँ। नित बिहार आभार दै—१८५६ (३०) । (ख) योग मिटि पति आहुब्योहारु । मधुबन बसि मधुरिपु सुनु मधुकर छाँड़े ब्रज आभार—३३७१ ।

आभरित—वि. [स.] सजाया हुआ, अलंकृत ।

आभारी—वि. [स. आभारिन्] उपकार माननेवाला, उपकृत ।

आभास—संज्ञा पुं. [स.] (१) छाया, झलक । (२) पता, संकेत । (३) मिथ्या ज्ञान ।

आभीर—संज्ञा पुं. [स.] अहीर, ग्वाल ।

आभूषण, आभूषन—संज्ञा पुं. [स. आभूषण] गहना, अलंकार । उ.—उलटि अग आभूषन साजति रही न देह सँभार—२५७२ ।

आभ्यंतर—वि. [स.] भीतरी, अंदर का ।

आमंत्रण—संज्ञा पुं [स.] (१) संबोधन, बुलाना । (२) निमंत्रण, न्योता ।

आमन्त्रित—वि. [स.] (१) बुलाया हुआ, संबोधित । (२) निमंत्रित ।

आम—संज्ञा पुं. [स. आम्र] रसाल नाम का फल ।

आमरखना—क्रि. अ. [स. आमर्ष=क्रोध] क्रुद्ध होना, क्रोध करना ।

आमरण—क्रि. वि. [स.] मृत्यु तक ।

आमर्ष—संज्ञा पुं. [स.] (१) क्रोध, गुस्सा । (२) असहनशीलता । (३) एक संचारी भाव ।

आमलक—संज्ञा पुं [स.] आँवला ।

आमिर—संज्ञा पुं. [अ. आमिल] अधिकारी, हाकिम ।

आमिल—वि. [सं. अम्ल] खट्टा ।

आमिष—संज्ञा पुं. [सं.] मांस, गोश्त । (२) भोग्य वस्तु । (३) लोभ, लालच ।

आमी—संज्ञा स्त्री. [हि. आम] छोटा आम, अँबिया । जो बहुत खट्टी होती है । उ.—आई प्रीति उघटि कलई सी जैसी खाटी आमी—३०८० ।

आमोद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आनन्द, हर्ष, प्रसन्नता । उ.—सूर सहित आमोद चरन-जल लैकरि सीस धरे—६-१७१ । (२) मनोरंजन । (३) सुगंधि ।

आमोद-प्रमोद—संज्ञा पुं० [सं.] भोगविलास, हँसी-खुशी ।

आमोदित—वि. [स.] (१) प्रसन्न, हर्षित । (२) जिसका जी बहला हो । (३) सुगंधित ।

आमोदी—वि. [स] प्रसन्न रहनेवाला, हँसमुख ।

आम्—संज्ञा पुं. [स] (१) आम का पेड । (२) आम का फल ।

आय—संज्ञा स्त्री. [स.] आमदनी ।

क्रि. अ. [स. अस्=होना] 'आसना' या 'आहना' क्रिया का वर्तमानकालिक रूप । 'आहि' शुद्ध रूप है।

आयत—वि. [सं.] विस्तृत, दीर्घ, विशाल । उ.–आयत दृग अरुन लोल कुंडल मंडित कपोल अधर दसन दीपति की छबि क्यो हूँ न जात लखी री—२३६२ ।

आयतन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर। (२) निवास-स्थान। (३) देव-वंदना का स्थान।

आयत्त—वि. [सं.] अधीन, वशीभूत ।

आयसु—संज्ञा स्त्री. [सं.] आज्ञा।

आया—क्रि. अ. भूत. [हि. आना (१) उपस्थित हुआ, प्रस्तुत हुआ। (२) जन्म लिया, पैदा हुआ, जन्मा। उ.—हरि कह्यो अब न ब्यापिहै माया। तब वह गर्भ छाँडि जग आया—१-२२६ ।

आयास—संज्ञा पुं [सं.] परिश्रम ।

आयु— संज्ञा स्त्री. [सं.] वय, उम्र, जीवनकाल ।

मुहा.—आयु गई सिराइ—आयु का अंत हो गया। उ.—काल-अगिनि सबही जग-जारत। तुम कैसे कै जिअन विचारत ? आयु तुम्हारी गई सिराइ। बन चलि भजौ द्वारिकाराइ—१-२८४। आयु खुटानी—आयु कम हो गई। आयु तुलानी—उम्र समाप्त हो गई, अंतकाल आ गया। उ.—रे दसकंध, अंधमति तेरी आयु तुलानी आनि—९-७६ ।

आयुध—संज्ञा पुं. [सं.] शस्त्र। उ.—उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजै—१-६६ ।

आयुः—संज्ञा स्त्री. [सं. आयु] वय, आयु। उ.—शत संवत आयुः कुल होइ—१२ ३ ।

आयुर्दा—संज्ञा स्त्री. [सं. आयुर्दाय] दीर्घायु। उ.—नृप ऐसे आयुर्दा पाई। पृथ्वी हित नित करै उपाई —१२-३ ।

आयुष्मान—वि. [सं.] दीर्घजीवी ।

आयोजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी कार्य में लगना, नियुक्ति। (२) प्रबंध, तैयारी। (३) उद्योग। (४) सामग्री, सामान ।

आयौ—क्रि. अ. [हिं. आना] (१) 'आना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'आया' का ब्रजभाषा-रूप, आया। (२) जन्मा, पैदा हुआ उ.—तिहि घर देव-पितर काहे को जा घर कान्हर आयौ—३४६ ।

प्र—बाँधि क्यौं आयौ—किस प्रकार बाँधा गया, बाँधते समय इतनी कठोर कैसे रह सकी। उ.—जसुदा तोहि बाँधि क्यों आयौ। कसक्यौ नाहि नैंकु मन तेरौ, यहै कोखि कौ जायौ—३७४।

आरंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी काम की प्रथम अवस्था, उत्थान, शुरू। (२) उत्पत्ति, आदि।

आरंभना—क्रि. अ. [सं. आरंभण] शुरू करना।

आरंभ्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. आरंभना] आरंभ किया।

आर—संज्ञा पुं. [हि. अड़] हठ, जिद। उ.—(क) अँखियाँ करति हैं अति आर। सुंदर स्याम पाहुने के मिस मिलि न जाहु दिन चार—२७६६। (ख) कबहुँक आर करत माखन की कबहुँक मेघ दिखाइ बिनानी।

संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) तिरस्कार, घृणा। (२) बैर, शत्रुता। उ.—इहाँ नाहिन नंदकुमार। इहै जानि अजान मघवा करी गोकुल आर—२८३४।

आरक्त—वि. [सं.] लाली लिये हुए, लाल।

आरज—वि. [सं. आर्य] श्रेष्ठ, उत्तम। उ.—(क) बिनु देखैं अब स्याम मनोहर, जुग भरि जात घरी। सूरदास सुनि आरज-पथ तैं, कछू न चाड़ सरी —६५१। (ख) जब हरि मुरली अधर धरी। गृह ब्यौहार तजे आरज-पथ, चलत न संक करी—६५६। (ग) आरज पंथ चले कहा सरिहै स्यामहि संग फिरौ री—१६७२। (घ) इतने मान ब्याकुल भइ सजनी आरज पथहुँ ते बिडरी—२५४४। (ङ) आरज पंथ छिड़ाय गोपिकन अपने स्वारथ भोरी —२८६३।

आरत—वि. [सं. आर्त्त] दुखित, दुखी, कातर। उ.—(क) हा जदुनाथ, द्वारिका-वासी, जुग-जुग भक्त-आपदा फेरी। बसन-प्रवाह बढ्यौ सुनि सूरज, आरत बचन कहे जब टेरी—१-२५१। (ख) नंद पुकारत आरत, ब्याकुल टेरत फिरत कन्हाई —६०४।

संज्ञा पुं—दुखी व्यक्ति, दीन मनुष्य। उ.—सूरदास सठ तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक —१-१६।

आरति—संज्ञा स्त्री. [सं. आरात्रिक, हि. आरती]

फिरि चाहत सुभग सुचंदहिँ—१०-१०७। (ख) कल-बल कै हरि-आरि परे। नव रँग बिमल नवीन जलधि पर, मानहुँ द्वै ससि-आनि अरे—१०-१४१। (ग)जब दधि-मथनी टेकि अरै। आरि करत मटुकी गहि मोहन, बासुकि संभु डरै—१०-१४२।

आरी—संज्ञा स्त्री. [सं. आर=किनारा] किनारा, ओट, तरफ।

आरूढ़—वि. [सं.] (१) चढ़ा हुआ, सवार। उ.—(क) आजु अति कोपे हैं रन राम। ब्रह्मादिक आरूढ़ बिमाननि, देखत हैं संग्राम—९-१५८। (ख) रथ आरूढ होत बलि गई होइ आयौ परभात—२५३१। (२) दृढ़, स्थिर।

आरे—संज्ञा पुं. [सं. आलय, हि. आला] आला, ताख। उ.—दै मैया भौंरा चक डोरी। जाइ लेहु आरे पर राख्यो, काल्हि मोल लै राखौ कोरी—६६६।

आरोगत—क्रि. स. [सं. आ+रोगना=हि. आरोगना] खाते है, भोजन करते हैं। उ—(क) उज्ज्वल पान, कपूर, कस्तूरी, आरोगत मुख की छबि रूरी—३९६। (ख) आरोगत हैं श्रीगोपाल। षटरस सौंज बनाइ जसोदा, रचिकै कंचन-थाल—३९७।

आरोगना—क्रि. स. [सं. आ+रोगना (रूज्=हिंसा)] खाना, भोजन करना।

आरोगे—क्रि. अ. [हि. आरोगना] खाया, भोजन किया। उ.—सबरी परम भक्त रघुबर की बहुत दिनन की दासी। ताके फल आरोगे रघुपति पूरन भक्ति प्रकासी।

आरोग्य—वि. [सं.] रोगरहित, स्वस्थ।

आरोधन—संज्ञा पुं. [सं. आ+रुंधन=छेंकना] रोकने या छेंकने की क्रिया। उ.—मौनाऽपवाद पवन आरोधन हित क्रम काम निकंदन—३०१४।

आरोधना—क्रि. स. [सं. आ + रुंधन] रोकना, छेंकना।

आरोधि—क्रि. स. [सं. आरोधना] रोककर, छेंककर। उ.—अति आतुर आरोधि अधिक दुख तेहि कह डरति न यम औ कालहिं।

आरोप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थापित करना, लगाना। (२) मिथ्याभास, झूठी कल्पना।

आरोपण—संज्ञा पुं. [सं] (१) स्थापित करना। (२) एक वस्तु के गुण को दूसरी में मानना। (३) मिथ्याज्ञान, भ्रम।

आरोपना—क्रि. स. [सं. आरोपण] लगाना, स्थापित करना।

आरोह—संज्ञा पुं [सं.] (१) ऊपर की ओर जाना। (२) आक्रमण। (३) सवारी। (४) आविर्भाव, विकास। (५) संगीत के स्वरों का चढ़ाव।

आरोहण—संज्ञा पुं [सं.] (१) चढ़ना, सवार होना। (२) वश में करना। उ.—आसन बैसन ध्यान धारण मन आरोहण कीजै—३२६१। (३) अंकुर निकलना।

आरोही—वि [सं. आरोहिन्] (१) ऊपर जानेवाला। (२) उन्नतिशील।

संज्ञा पुं.—(१) संगीत में वह स्वर जो उत्तरोत्तर चढ़ता जाय। (२) सवार।

आर्जव—संज्ञा पुं [सं] (१) सीधापन। (२) सुगमता। (३) व्यवहार की सरलता।

आर्त्त—वि. [सं] (१) चोट खाया हुआ। (२) दुखी, कातर। (३) अस्वस्थ।

आर्त्तनाद—संज्ञा पुं. [सं. आर्त्त=दुखी + नाद =शब्द] दुखसूचक शब्द।

आर्त्तस्वर—संज्ञा पुं. [सं. आर्त्त=दुखी + स्वर] दुख सूचक शब्द।

आर्त्ति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पीड़ा, दर्द (२) दुख, कष्ट।

आर्थिक—वि [सं.] धन-सम्बन्धी।

आर्द्र—वि. [सं.] (१) गीला। (२) सना, लथपथ।

आर्द्रता—संज्ञा स्त्री [सं.] गीलापन।

आर्द्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक नक्षत्र। (२) आर्द्रा नक्षत्र के उदय का समय।

आर्य—वि. [सं.] (१) श्रेष्ठ, उत्तम। (२) बड़ा, पूज्य। (३) श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न।

संज्ञा पुं.—(१) श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न पुरुष। (२) एक प्राचीन सभ्य जाति। ये कैस्पियन सागर से गंगा-यमुना तक बसे थे। वर्तमान हिंदू जाति अपने को इन्हीं का वंशज मानती है।

आर्य पुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आदरसूचक शब्द। (२) पति के संबोधन का संकेत।

आर्यावर्त—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तरीय भारत जहाँ आर्य बसे थे।

आरयौ—संज्ञा पुं. [हि. आर=अड़] (१) अड, हठ। (२) निवेदन, अनुरोध। उ.—बृषभानु की घरनि जसोमति पुकारयौ। पठै सुत-काज कौं कहति हौं लाज तजि, पाइ परिकै महरि करति आरयौ —७५१।

आर्ष—वि. [सं] (१) ऋषि-संबंधी। (२) वैदिक।

आलंकारिक—वि. [सं.] अलंकार-संबंधी। अलंकार-युक्त।

आलंब—संज्ञा पुं [सं.] (१) आश्रय, सहारा। (२) गति, शरण।

आलबन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सहारा, आश्रय। (२) वह अवलंब जिससे रस की उत्पत्ति होती है। (३) साधन, कारण।

आलंबित—वि. [सं.] आश्रित, अवलंबित।

आलंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिलना, पकडना। (२) वध, हिंसा।

आल—संज्ञा पुं. [अनु.] झंझट, बखेड़ा।

संज्ञा पुं. [सं. आर्द्र] (१) गीलापन, तरी। (२) आँसू।

संज्ञा स्त्री. [सं. अल्=भूषित करना] एक पौधा जिसका उपयोग रंग बनाने के लिए होता है। उ.—आल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहि बुधि अवरेखत —११०८।

आलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान। उ.—जानौं हौं बल तेरौ रावन। पठवौं कुटुँब सहित जम-आलय, नैंकु देहि धौं मोकौं आवन—६-१३१। (२) घर, मंदिर। उ.—मनिमय भूमि नंद कैं आलय, बलि बलि जाउँ तोतरे बोलनि —१०-१२१।

आलवाल—संज्ञा पुं [सं.] थाला, अवाल। उ.—राजत रुचिर कपोल महावर रद मुद्रावलि नाइ दई री। मनहुँ पीक दल सींचि स्वेद जल आलबाल रति बेलि बई री—२११५।

आलस—सं. पु [सं. आलस्य] आलस्य, सुस्ती। उ.—(क) सुनि सतसंग होत जिय आलस- बिषयिनि सँग बिसरामी—१-१४८। (ख) उनके अछत आपने आलस काहे कंत रहत कृसगात—१० उ —५६।

वि.—आलसी, सुस्त, जो शीघ्रता से काम न करे।

आलसवंत—वि. [सं. आलसवंत] आलस्ययुक्त। डगमगात डग धरत परत पग आलसवंत जम्हात। मानहु मदन दत दै छाँड़े चुटकी दै दै गात—२१६५।

आलसी—वि. [हि. आलस] सुस्त, काम करने में धीमा।

आलस्य—स० पुं. [सं.] सुस्ती, काहिली।

आला—वि. [सं. आर्द्र या ओल] (१) गीला, भीगा। (२) हरा, ताजा।

सं. पुं [सं. आलात] कुम्हार का आवाँ।

आलान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी बाँधने की रस्सी। (२) बंधन, रस्सी।

आलाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बातचीत। (२) स्वर-साधन, तान।

आलापक—वि. [सं.] (१) बात करने वाला। (२) गाने वाला।

आलापना—क्रि. स. [सं.] गाना, सुर साधना।

आलापित—वि. [सं.] (१) कथित, संभाषित। (२) गाया हुआ।

आलापिनी—संज्ञा स्त्री. [सं] बाँसुरी, बंसी।

आलापी—वि. [सं. अलापिन्] (१) बोलने वाला। उ.—कामी, बिबस कामिनी कैं रस, लोभ-लालसा थापी। मन-क्रम-बचन दुसह सबहिन सौं, कटुक बचन आलापी—१-१४०। (२) तान लगाने वाला, गायक।

आलिंगन—संज्ञा पुं. [सं.] गले से या छाती से लगाने की क्रिया, परिरंभण।

आलिंगना—क्रि. स. [सं.] हृदय से लगाना, गले लगाना।

आलिंगित—वि. [सं.] हृदय से लगाया हुआ, परिरंभित।

आलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सखी, सहेली। (२) भ्रमरी। (३) पंक्ति, अवली।

आली—संज्ञा स्त्री. [सं. आलि] सखी, सहेली, गोइयाँ। उ.—स्याम सुभग कै ऊपर वारौं, आली कोटि अनंग—६४०।

वि. स्त्री. [सि. आर्द्र] गीली, तर।

वि. [हिं. आल] आल के रंग का।

आलेख—संज्ञा पुं. [सं.] लिखावट, लिपि।

आलेख्य—संज्ञा पुं. [सं] चित्र, तसवीर।

आलेप—संज्ञा पुं. [सं] लेप।

आलेपन—संज्ञा पुं. [सं] लेप करने का काम।

आलै—सज्ञा पुं. [सं. आलय] घर, निधान। उ.—जो पै प्रभु करुना के आलै। तौ कत कठिन कठोर होत मन मोहि बहुत दुख मालै—३४६१।

आलोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश, चाँदनी,। (२) चमक, ज्योति। (३) दर्शन।

आलोकन—सज्ञा पुं. [सं.] दर्शन।

आलोचक—वि. [सं.] (१) देखनेवाला। (२) आलोचना करने या जाँचनेवाला।

आलोचन—संज्ञा पुं. (सं.) (१) दर्शन। (२) गुण-दोष-विचार, विवेचन।

आलोड़न—संज्ञा पुं. [सं] (१) मथना। (२) सोच-विचार।

आलोड़ना—क्रि. सं. [सं. आलोड़न] (१) मथना। (२) हिलोरना। (३) सोचना-विचारना, ऊहापोह करना।

आव—क्रि. अ. [हि. आना] आता है।

संज्ञा पुं. [सं. आयु] आयु, उम्र।

आव-आदर—सज्ञा पुं. [हि. आना+सं. आदर] आव-भगत, आदर-सत्कार।

आवई—क्रि. अ. [हिं० आना] आती है। उ—मन प्रतीति नहि आवई, उड़िबौ ही जानै—६-४२।

मुहा०—(मथन नहि) आवई—मथने का ज्ञान या जानकारी नहीं है। उ—मथन नहि मोहि आवई तुम सौंह दिवायौ—७१६।

आवज—सज्ञा पु. [स. आवाद्य, पा० आवज्ज] एक बाजा जो ताशे के ढंग का होता है और जिसे चमार बजाते है।

आवझ—सज्ञा पुं. [हि. आवाज] ताशे की तरह का एक बाजा। उ—एक पटह एक गोमुख एक आवझ एक झालरी एक अमृतकुण्डली एक डफ एक कर धारे—२४२५।

आवटना—संज्ञा पु. [सं. आवर्त्त, पा. आवट्ट] (१) हलचल, उथलपुथल। (२) सोचविचार, ऊहापोह।

क्रि. स. [हि. औटना] गरम करना, खौलाना।

आवत—क्रि. अ. [हि. आना] आता है। उ.—(क) सूरस्यामबिनु अंतकाल मैं कोउ न आवत नेरे—१-८५। (ख) देखे स्याम राम दोउ आवत गर्व सहित तिन जोवत—२५७४।

आवति—क्रि. अ. [हि. आना] आती है। उ.—कह्यौ, सुतनि-सुधि आवति कबही। १-२८४।

आवते—क्रि. अ. [पु. हि. आवना, हिं. आना] आते हैं। उ—इहि बिरिया बन ते ब्रज आवत—२७३५।

आवन—संज्ञा पुं. [सं. आगमन, पु. हि. आगवन] आगमन, आना, आने की क्रिया। उ.—(क) अपने आवन को कहौ कारन—४-१। (ख) बाणी सुनि बलि पूजन लागे, इहाँ बिप्र करो आवन—८-१३। (ग) मृदु मुसुकानि आनि राखो पिय चलत कह्यौ है आवन—२७५२। (घ) धनि हरि लियौ अवतार, सु धनि दिन आवन रे—१०-२८। (ङ) सुन्दर पथ सुन्दर गति-आवन, सुन्दर मुरली सब्द रसाल—४७४।

क्रि. अ. [हि. आना] किसी भाव का उत्पन्न होना। उ.—संतोषादि न आवन पावै। विषय भोग हिरदै हरषावै-४-१२

आवनहार—वि. [हि. आवन=आना+हार (प्रत्य.)=वाला] आनेवाला, आने को। उ,—माधव जी

आवनहार भए। अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खए—१० उ.-१०७।

आवनो—संज्ञा पुं. [पु. हि० आगवन, आवन] आगमन, आना। उ —सुनि स्यामा नवसत सँग सखी लै बरसाने तेहि आवनो—२२८०।

आवभगत—संज्ञा पुं. [हि० आवना + भक्ति] आदर-सत्कार।

आवभाव—संज्ञा पुं. [हि. आवना + सं. भाव] आदर-सत्कार।

आवरण—संज्ञा पुं. [स.] (१) आच्छादन, ढकना। (२) परदा।

आवर्त—संज्ञा पुं. [सं.] पानी का भँवर। (२) वह बादल जिससे पानी न बरसे।

वि.—घूमा हुआ।

आवर्तन—संज्ञा पुं [सं] (१) चक्कर, घुमाव, फिराव। (२) विलोडन, मथन।

आवलि आवली—संज्ञा स्त्री. [सं.] पंक्ति, श्रेणी।

आवश्यक—वि. [सं.] (१) जरूरी। (२) काम की।

आवश्यकता—सं. स्त्री [सं०] (१) अपेक्षा, जरूरत। (२) प्रयोजन, मतलब।

आवहिंगे—क्रि. अ. [हिं. आवना] आयेंगे। उ.—ऐसे जो हरि आवहिंगे—२८८६।

आवहीं—क्रि. अ. [हि. आवना या आनना] लाये जायँगे। उ.—काल्हि कमल नहि आवही, तौ तुसकौ नहि चैन—५८६।

आवागमन—संज्ञा पुं. [हि. अवा=आना + सं. गमन] आना-जाना। उ.—(१) कहौ कपि जनक-सुता-कुसलात। आवागमन सुनावहु अपनौ, देहु हमै सुख गात—६-१०४। (२) जन्म और मरण।

आवागवन, आवागौन—संज्ञा पुं. [सं. आवागमन] (१) आना-जाना। (२) जन्म-मरण।

आवाज—संज्ञा पुं. [फा. आवाज़] (१) शब्द, ध्वनि। (२) बोली, स्वर। (३) कोलाहल, शोर।

आवाय—संज्ञा पुं. [सं] (१) थाला। (२) हाथ का कड़ा, कंकण।

आवाल—संज्ञा पुं. [सं.] थाला।

आवास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निवासस्थान। (२) मकान।

आवाहन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाना। (२) निमंत्रित करना।

आविर्भाव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पत्ति, जन्म। उ.—दशरथ नृपति अजोध्या-राव। ताकैं गृह कियौ आविर्भाव—९-१५। (२) प्रकाश। (३) आवेश।

आविर्भूत—वि. [सं.] (१) प्रकाशित, प्रकटित। (२) उत्पन्न।

आविष्कर्ता—वि. [सं.] नयी वस्तु का आविष्कार करने वाला।

आविष्कार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश, प्राकट्य। (२) सर्वथा नयी वस्तु प्रस्तुत करना।

आवृत्त—वि. [सं.] (१) छिपा हुआ। (२) आच्छादित। (३) घिरा हुआ।

आवृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दोहराना। (२) पाठ करना, पढ़ना।

आवेग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चित्त की प्रबल वृत्ति, जोश। (२) एक संचारी भाव।

आवेदन—संज्ञा पुं. [सं] अपनी दशा बताना, निवेदन।

आवेश—संज्ञा पुं [सं.] (१) व्याप्ति, संचार। (२) चित्त की प्रेरणा, आतुरता।

आवेष्टन—संज्ञा पुं. [सं.] छिपाना, ढकना।

आवैं—क्रि. अ. बहु. [हि. आना] आते हैं।

यौ—कहत न आवैं—वर्णन नहीं किये जा सकते। उ.—सूर विचित्र चरित स्याम के रसना कहत न आवैं—१०-६७।

आवैगे—क्रि. अ. [सं. आगमन, पुं. हि. आवना, हि आना] आवेंगे, आ पहुँचेगे। उ. —जहाँ तहाँ तैं सब आवैगे, सुनि-सुनि सस्तौ नाम—१-१९१।

आवै—क्रि. अ [हि. आना] आवे, आ जाय।

मुहा०—आवै-जावै—आना-जाना, आवागमन।

आवौं—क्रि. अ. [हि आवना, आना] आ जाऊँ, आऊँ, आता हूँ। उ.—जबै आवौ साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ—१-४५।

आशंका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) डर, भय। (२) संदेह। (३) अनिष्ट की भावना।

आशय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभिप्राय, तात्पर्य। (२) वासना, इच्छा।

आशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] किसी इच्छित वस्तु के पाने का थोड़ा-बहुत निश्चय।

आशिष—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आशीर्वाद, आसीस। (१) एक अलंकार जिसमें ऐसी वस्तु के लिए प्रार्थना होती है जो अप्राप्त हो।

आशिषा—संज्ञा स्त्री. [सं] आशीर्वाद, आसीस। उ.—सूर प्रभु चरित पुरनारि देखत खरी महल पर आशिषा देत लोभा—२५६१।

आशिषाक्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] एक अलंकार।

आशीर्वाद—संज्ञा पुं. [सं.] आशिष, आसीस।

आशु—क्रि. वि. [सं.] शीघ्र, तुरंत।

आशुतोष—वि. [सं.] शीघ्र संतुष्ट या प्रसन्न होनेवाला। संज्ञा पुं.—शिव, महादेव।

आश्चर्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विस्मय, अचरज। (२) एक स्थायी भाव।

आश्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तपोवन। (२) विश्राम का स्थान। (३) हिंदुओं के जीवन की चार अवस्थाएँ—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, और संन्यास।

आश्रय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आधार, सहारा। (२) शरण, ठिकाना। (३) भरोसा। (४) घर।

आश्वासन—संज्ञा पुं. [सं.] सांत्वना, धीरज।

आश्रित—वि. [सं.] (१) सहारे टिका या ठहरा हुआ। (२) शरणागत। (३) सेवक, दास।

आषत—संज्ञा पुं. [सं. अक्षत] देवताओं पर चढ़ाने का बिना टूटा चावल, अक्षत। उ.—सुर समूह पय धार परम हित आषत अमल चढ़ावो—सा.६।

आषाढ़—संज्ञा पुं. [सं.] असाढ़ का महीना जो ज्येष्ठ के बाद आता है।

आषी—संज्ञा स्त्री. [हि० आँख] आँख। उ.—तो हमको होती कत यह गति निसि दिन बरषत आषी २—७१९।

आसंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साथ, संग। (२) लगाव, संबंध। (३) आसक्ति, अनुरक्ति।

आसंदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मचिया, मोढ़ा। (२) खटोला।

आस—संज्ञा स्त्री. [सं. आशा] (१) आशा। उ.—इतनेहि धीरज दियो सबन को अवधि गए दै आस—२५३४। (२) लालसा, कामना। (३) सहारा, भरोसा।

मुहा.—आस लगाये—भरोसे पर रहना, सहारे पर रहना। उ.—पद-नौका की आस लगाये बूड़त हौ बिनु छाँह—१-१७५। आस पुजावहु—इच्छा या आशा पूरी करो। उ.—तुम काहूँ धन दै लै आवहु, मेरे मन की आस पुजावहु—५-३।

आसक्त—वि. [सं.] (१) लीन, लिप्त (२) मुग्ध, मोहित।

आसक्ति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अनुरक्ति, लिप्तता। (२) लगन, चाह, प्रेम।

आसति—संज्ञा स्त्री. [सं. आसति] निकटता, समीपता उ.—सूर तुरत तुम जाय कहौ यह ब्रह्म बिना नहिं आसति—२६१६।

आसतीक—संज्ञा पुं. [सं. आस्तीक] एक ऋषि जो जरत्कारु ऋषि और वासुकि नाग की कन्या के पुत्र थे। इन्होंने जनमेजय के सर्पसत्र में तक्षक का प्राण बचाया था।

आसन—संज्ञा पुं. [सं] (१) बैठने के लिये मूँज, कुश आदि का चौखूँटा बिछावन। उ.—कुस-आसन दै तिन्हहि बिठायौ—१-३४१। (२) बैठने की विधि।

आसना—क्रि. अ. [सं. अस्=होना] होना। संज्ञा पुं. [सं. आसन] (१) जीव। (२) वृक्ष।

आसन्न—वि. [सं.] समीप आया या पहुँचा हुआ, प्राप्त।

आसपास—क्रि. वि. [अनु. आस+सं. पार्श्व] चारों ओर, निकट, इर्दगिर्द, अगल-बगल। उ.—कटि

पट पीत, मेखला मुखरित, पाइनि नूपुर सोहैं। आस-पास बर ग्वाल-मंडली, देखत त्रिभुवन मोहैं—४५१।

आसमान—संज्ञा पुं [फ़ा.] (१) आकाश। (२) स्वर्ग, देवलोक।

आसय—संज्ञा पुं. [सं. आशय] (१) अभिप्राय, तात्पर्य। (२) वासना, इच्छा।

आसरना—क्रि. स. [सं. आश्रय] आश्रय या सहारा लेना।

आसरा—संज्ञा पु. [सं. आश्रय] (१) सहारा, आधार। (२) आशा, भरोसा। (३) शरण।

आसरो—संज्ञा पुं. [सं. आश्रय, हिं. आसरा] भरोसा, आशा। उ.—जब उनको आसरो कियो जिय तबही छोड़ि गए—पृ. ३२०।

आसव—संज्ञा पु. [सं.] फलों के खमीर से तैयार किया हुआ मद्य।

आसवी—वि. [सं.] मद्यप, शराबी।

आसा—संज्ञा स्त्री. [सं. आशा] (१) आशा, अप्राप्त के पाने की इच्छा। उ.—हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाही लपटानौ—१-४७। (२) इच्छित वस्तु पाने के कुछ निश्चय का संतोष।

मुहा.—आसा लागी— (काम पूरा होने या कुछ प्राप्त होने की) आशा बँधी है। उ.—बहुत दिननि की आसा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ १०-१५। लागि आसा रही—प्राप्ति होने या काम पूरा होने की संभावना थी। उ—जन्म तै एक टक लागि आसा रही, विषय-विष खात नहि तृप्ति मानी —१-११०।

आसामुखी—वि. [सं. आशा+मुख] (दूसरे का) मुँह जोहनेवाला, (किसी की) सहायता चाहने वाला।

आसावरी—संज्ञा स्त्री. [सं. आशावरी अथवा अशावरी, हि. असावरी] एक प्रधान रागिनी जो भैरव राग की स्त्री मानी गयी है। इसके गाने का समय प्रात:काल सात से नौ बजे तक है। उ.—मालवाई राग गौरी अरु आसावरी राग। कान्हरो हिंडोल कौतुक तान बहु बिधि लाग—२२७१।

आसी—वि. [सं. आशिन्, हि. आशी] खानेवाला, भक्षक। उ.—मथि मथि सिंधु-सुधा सुर पोषे संभु भए बिष आसी—३३०६।

आसीन—वि. [सं.] बैठा हुआ, विराजमान।

आसीस—संज्ञा पुं. [सं. आशिष] आशीर्वाद। उ.—पुनि कह्यौ, देहु आसीस मम प्रजा कौं, सबैं हरि-भक्ति निज चित्त धारैं—४-११।

संज्ञा पुं. [सं. आ+शीर्ष] तकिया।

आसु—सर्व. [सं. अस्य] इसका।

क्रि. वि. [सं. आशु] शीघ्र, तुरंत।

आसुर—संज्ञा पुं. [सं. असुर] राक्षस।

आसुरी—वि. [सं.] असुर संबंधी, असुरों का।

संज्ञा स्त्री.—राक्षसी।

आसौं—क्रि. वि. [स. अस्मिन, प्रा. अस्सि=इस+सं. साल=वर्ष] इस वर्ष।

आस्चर्य—संज्ञा पुं. [सं. आश्चर्य] अचरज की बात, असंगत बात। उ.—कहाँ धनुष कहाँ हम बालक कहि आस्चर्य सुनाए—२५८६।

आस्तिक—वि. [सं] (१) वेद, ईश्वर आदि पर जिसका विश्वास हो। (२) ईश्वर के अस्तित्व पर जिसे विश्वास हो।

आस्था—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रद्धा। (२) सभा, बैठक। (३) आलंबन।

आस्पद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान। (२) कार्य। (३) पद, प्रतिष्ठा। (४) वंश, कुल।

आस्वाद—संज्ञा पुं [सं.] रस, स्वाद।

आस्वादन—संज्ञा पुं. [स.] चखना, रस या स्वाद लेना।

आस्रम—संज्ञा पुं. [सं. आश्रम] आश्रम, तपोवन। उ.—रिषि समीक कै आस्रम आयौ। रिषि हरि-पद सौ ध्यान लगायौ—१-२६०।

आस्रित—वि. [सं. आश्रित] (१) सहारे पर टिका या ठहरा हुआ। (२) भरोसे पर रहनेवाला, अधीन।

आह—क्रि. अ. [आसना का वर्त. रूप] है, रहा है। उ.—(क) तिन कह्यौ,—मेरो पति सिव आह—४-७। (ख) नृपति कह्यौ, मारग सम आह—५-४।

ताके देखन की मोहि चाह। कह्यौ, पुरुष वह ठाढौ आह—६-२।

अव्य. [सं. अहह] पीडा, शोक, खेद सूचक अव्यय।

सज्ञा स्त्री.—कराहना, उसाँस, ठंडी साँस। उ—मारै मार करत भट दादुर पहिरे बहु बरन सनाह। अरै कवच उघरे देखियत मनो बिरहिनि घाली आह—२८२६।

संज्ञा पुं०—[सं. साहस=स + आहस्] (१) साहस। (२) बल।

आहट—संज्ञा स्त्री. [हि. आ = आना + हट (प्रत्य.)] (१) चलने का शब्द, पाँव की चाप, खडका। (२) आवाज जिससे किसी स्थान पर किसी के रहने का अनुमान हो। उ.—आहट सुनि जुवती घर आई देख्यौ नन्द कुमार। सूर स्याम मदिर अँधियारै, निरखति बारंबार—१०-२७७।

आहत—वि. [सं.] (१) घायल। (२) कंपित, थर्राता हुआ।

आहर—संज्ञा पुं० [सं. अह.] समय, दिन।

आहाँ—संज्ञा पुं. [सं. आह्वान] (१) हाँक, दुहाई। (२) पुकार, बुलावा।

आहा—अव्य. [सं. अहह] आश्चर्य और हर्षसूचक अव्यय।

आहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भोजन, खाना। उ.—जेतक सस्त्र सो किए प्रहार। सो करि लिए असुर आहार—६-५। (२) खाने की वस्तु।

आहार-विहार—संज्ञा पुं. [सं] रहन-सहन, शारीरिक व्यवहार।

आहिं—क्रि. अ. बहु ['आसना' का वर्तमानकालिक रूप] हैं। उ.—गीध, व्याध, गनिकाऽरुअजामिल, ये को आहि बिचारे। ये सब पतित न पूजत मो सम, जिते पतित तुम तारे—१-१७६।

आहि—क्रि. अ. एक. ['आसना' का वर्तमानकालिक रूप] है। उ.—(क) उमा आहि यह सो मुँडमाल। जब जब जनम तुम्हारो भयौ तब तब मुण्डमाल मै लयौ—१-२२६। (ख) तृनावर्त प्रभु आहि हमारो इनहीं मारयौ ताहि—२५७४।

आहूत—वि. [सं.] बुलाया हुआ, निमंत्रित।

आहुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मंत्र पढकर देवता के लिए द्रव्य अग्नि में डालना, होम, हवन। उ.—सिव-आहुति-बेरा जब आई। बिप्रनि दच्छहि पूछयौ जाई—४-५। (२) होम-द्रव्य की वह मात्रा जो एक बार कुंड में डाली जाय। उ.—आहुति जज्ञकुंड मै डारी। चहयौ, पुरुष उपजै बल भारी—४-५। (३) हवन में डालने की सामग्री।

आहुती—संज्ञा स्त्री- [सं आहुति] (१) होम, हवन। (२) हवन की सामग्री।

आहैं—क्रि. अ. बहु० ['आसना' का वर्त. बहु. रूप] हैं, हुए है। उ.—महरि स्याम कौ बरजति काहैं न। जैसे हाल किए हरि हमको, भए कहूँ जग आहैं न—७७२।

आहै—क्रि. अ. ['आसना' का वर्तमान कालिक रूप] है। उ.—प्रबल सत्रु आहै यह मार। यातै संतौ, चलौ सँभार—१-२२६।

आह्लाद—संज्ञा पुं. [सं.] आनंद, हर्ष।

आह्लादित—वि. [सं.] प्रसन्न, हर्षित, आनंदित।

आह्वान—संज्ञा पुं. [सं] बुलाना, आमंत्रित करना।

इ

इ—देवनागरी वर्णमाला का तीसरा स्वर। तालु इसका स्थान है।

इंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिलना-डुलना। (२) संकेत। (३) चिन्ह। (४) हाथी का दाँत।

इंगन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिलना-डोलना। (२) संकेत करना।

इंगला—संज्ञा स्त्री. [सं इड़ा] बाईं ओर की एक नाड़ी जो बाएँ नथने से श्वास निकालती है। उ.—इंगला (इड़ा) पिंगला सुखमना नारी। सून्य सहज में बसहिं मुरारी—३४४२ (८)।

इंगित—संज्ञा पुं. [सं] संकेत, चेष्टा, इशारा।

वि.—हिलता हुआ, चकित।

इँगुदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पेड, हिंगोट का पेड़।

इंगुर—संज्ञा पुं. [सं. हिंगुल, प्रा.-इंगुल, हि, ईंगुर] ईंगुर।

इंगुरौटी—संज्ञा स्त्री. [हि. ईंगुर+औटा (प्रत्य.)] सिंदूर रखने की डिबिया।

इंचना—क्रि. अ. [हि. खिचना] आकर्षित होना।

इँडहर—संज्ञा पुं. [सं. इष्ट+हर (प्रत्य.)] उर्द और चने की दाल की पीठी का बना हुआ सालन। उ.—अमृत इँडहर है रससागर। बेसन सालन अधिकौ नागर।

इंदा—संज्ञा स्त्री. [सं. इंद्रा अथवा इंदिरा] राधा की एक सखी का नाम। उ.—इंदा बिदा राधिका स्यामा कामा नारि—पृ. २५२ (२)।

इंदारुन—संज्ञा पुं. [सं. इन्द्रवारुणी] इंद्रायन,।

इंदिरा—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) लक्ष्मी। (२) शोभा, कांति।

इंदीवर—संज्ञा पुं. [सं.] नीला कमल।

इंदीवर-सुत—संज्ञा पुं. [सं. इन्दीवर=कमल + सुत = पुत्र] कमल का चूर्ण या सिंदूर। उ.—इंदीवर-सुत कर कपोल में है सिगार रस राधे—सा. ६।

इंदु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चन्द्रमा। (२) कपूर। (३) एक की संख्या।

इंदुकर—संज्ञा पुं. [सं.] चन्द्रमा की किरण।

इंदुकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चन्द्रमा की कला। (२) चन्द्रमा की किरण।

इंदुमती—संज्ञा स्त्री. [सं.] पूर्णिमा।

इंद्र—वि. [सं.] (१) ऐश्वर्यवान्। (२) श्रेष्ठ, बडा। संज्ञा पुं. (१) एक वैदिक देवता जो पानी बरसाता है। यह देवराज कहा गया है। ऐरावत इसका बाहन; वज्र, अस्त्र, शची, स्त्री; जयंत, पुत्र; अमरावती, नगरी; नन्दन, वन; उच्चैःश्रवा, घोडा, और मातलि, सारथी है। इसकी सुधर्मा नामक सभा में देव, गंधर्व और अप्सराएँ रहती है। वृत्र, वलि और विरोचम इसके प्रधान शत्रु है। यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है। (२) स्वामी। (३) चौदह की संख्या।

इंद्रजाल—संज्ञा पुं. [सं.] जादूगरी, मायाकर्म।

इंद्रजित—वि [सं.] (१) इन्द्रियों को जीतनेवाला। उ.—देखिकै उमा कौ रुद्र लज्जित भए कह्यौ मैं कौन यह काम कीनौ। इन्द्रजित हौं कहावत हुतौ, आपु कौं समुझि मन माँहि ह्वै रह्यौ खीनौ—८-१०।

संज्ञा पुं. [सं.] रावण का पुत्र मेघनाद जिसने देवराज को जीता था। उ.—लंकापति इन्द्रजित कौ बुलायौ—९-१३५।

इंद्रजीत—वि. [सं.] इन्द्र को जीतनेवाला।

संज्ञा पुं.—रावण का पुत्र, मेघनाद जिसने इन्द्र को जीता था।

इन्द्रद्युम्न—संज्ञा पु [सं.] एक राजा जो अगस्त्य ऋषि के शाप से गज हो गया था और ग्राह से युद्ध होने पर जिसका उद्धार नारायण ने किया।

इन्द्रधनुष—संज्ञा पु. [सं.] वर्षाकाल में आकाश में दिखायी देनेवाला सतरंगी अर्द्ध वृत्त। यह सूर्य की विपरीत दिशा में जल से पार उसकी किरणों की प्रतिच्छाया से बनता है।

इंद्रनील—संज्ञा पु [सं.] नीलमणि, नीलम। उ—इन्द्रनील-मनि तैं तन सुन्दर, कहा कहै बल चेरौ—१०-२१६

इंद्रपुर—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग। उ.—नृप कह्यौ, इन्द्रपुर की न इच्छा हमैं—४-११।

इंद्रपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] अमरावती।

इंद्रप्रस्थ—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन नगर जो आधुनिक दिल्ली के निकट था और जिसे पांडवों ने खांडव बन जलाकर बसाया था।

इन्द्रबाहन—संज्ञा पुं. [इन्द्र + बाहन = सवारी (इन्द्र की सवारी = ऐरावत)] हाथी। उ.—चाहत गंध बैरी बीर। आपनो हित चहत अनहित होत छोड़त तीर। नृत्त भेद बिचार वा बिनु इन्द्रबाहन पास—सा. २८.

इन्द्रलोक—संज्ञा पुं. [सं.] स्वर्ग।

इंद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं] इन्द्र की स्त्री, शची।

इन्द्राणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) इन्द्र-पत्नी, शची। (२) दुर्गा देवी।

इंद्रानी—संज्ञा स्त्री. [सं. इन्द्राणी] इन्द्र की पत्नी, शची।

इन्द्रायन—संज्ञा पुं. [सं. इन्द्राणी] एक फल जो देखने में बडा सुन्दर पर स्वाद में कडुआ होता है।

इन्द्रायुध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बज्र। (२) इन्द्रधनुष।

इंद्रासन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र का सिंहासन। (२) राजसिंहासन।

इन्द्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह शक्ति जिससे वाह्य वस्तुओं के गुणों और रूपों का ज्ञान प्राप्त होता है। (२) शरीर के अवयव जिनके द्वारा वाह्य वस्तुओं के रूप-गुण का अनुभव होता है। इनके दो वर्ग हैं—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय। ज्ञानेंद्रियाँ पाँच हैं जो केवल गुणों का अनुभव कराती है-चक्षु (रूप-ज्ञान), श्रोत्र (शब्द-ज्ञान), नासिका (गंध-ज्ञान), रसना (स्वाद-ज्ञान), और त्वचा (स्पर्श द्वारा ज्ञान)। कर्मेंद्रियाँ भी पाँच हैं जिनके द्वारा विविध कर्म किये जाते हैं-वाणी हाथ, पैर गुदा और उपस्थ। इन दसों इन्द्रियों के अतिरिक्त एक उभयात्मक अंतरेंद्रिय है 'मन' जिसके चार विभाग है--मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त। उ.—अपनी रुचि जित ही जित ऐंचति इंद्रयि कर्म-गटी। हौं तितही उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी—१६८।

इन्द्रयजित्—वि. [सं.] जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो, जो विषय में लीन न हो।

संज्ञा पुं.—रावण का पुत्र मेघनाद जिसने इंद्र को पराजित किया था।

इंद्रियार्थ—संज्ञा पुं. [सं. इन्द्रिय+अर्थ] रूप, रस, गंध, शब्द आदि विषय जिनका अनुभव या ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है।

इन्द्री—संज्ञा स्त्री. [सं इन्द्रिय] (१) पाँच ज्ञानेंद्रिय और पाँच कर्मेंद्रिय जिनसे क्रमशः विषय-ज्ञान और कर्म होते हैं। उ.—(क) मीन इंद्री तनहि काटत मोट अघ सिर भार। (ख) त्रिगुन प्रकृति तै महत्तत्व, महत्तत्व तैं अहँकार मन-इन्द्री-सब्दादि पँच,तातैं कियौ बिस्तार—२-३५। (२) स्त्री-पुरुष सूचक अवयव, लिंग। उ.—पंचम मास हाड बल पावै। छठैं मास इन्द्री प्रगटावै—३-१३।

इकंग—वि. [सं. एकाग] एक ओर का, एकांगी।

इकंत—वि. [सं. एकांत] निर्जन, अकेला, सूनसान।

इक—वि. [सं. एक] एक।—(क) (कुंति) धरति न इक छिन धीर—१-२६। (ख) सखी री स्याम सबै इक सार—२६८७।

इकआँक—क्रि. वि. [सं. इक=एक+अंक=निश्चय] निश्चय, अवश्य।

इकइस—वि. [सं. एकविंशत्, प्रा. एक्कवीस, हि.इकीस] इक्कीस।

इकजोर—क्रि. वि. [सं. एक+हि. जोर=जोड़ना] इकट्ठा, एक साथ। उ.—देखि सखि चारि चंद्र इकजोर। निरखति बैठि नितंबिनि पिय सँग सारसुता की ओर।

इकटक—संज्ञा स्त्री [हि. एकटक] टकटकी लगाकर देखने की क्रिया, स्तब्ध, दृष्टि। उ.—(क) बलिहारी छबि पर भई, ऐसी विधि जोहन। लटकति बेसरि जननि की, इकटक चख लावै। फरकत बदन उठाइ कै, मनहीं मन भावै—१०-७२। (ख) इकटक रूप निहारि, रहीं मेटति चित-आरति—४३७।

इकट्ठा—वि. [सं. एक+स्थ=एकस्थ, प्रा. इकट्ठो] एकत्र।

इकठाईं—वि. [सं. एक + हि. ठाईं=स्थान] एक स्थान पर इकट्ठा, एकत्र। उ.—तब सब गाइ भई इकठाईं—६१४।

इकठाईं—वि. [सं. एक+हि. ठाँव=स्थान] (१) एक स्थान पर। (२) एकांत।

इकठैन—वि. [सं. एक+स्थान] एक स्थान पर, एक ठौर, इकट्ठा। उ.—सुनति हीं सब हाँकि ल्याए, गाइ करि इकठैन—४२७।

इकठौरी—वि. [सं. एक+हिं ठौर] एक ठौर या स्थान पर, इकट्ठा। उ.—अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब, आनि करौ इकठौरी—४४५।

इकठौर—वि. [हि. इक + ठौर] एक स्थान पर एकत्र, एक साथ, एक पास। उ.—(क) जब पाँड़े इत-उत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए—७-२। (ख) जेंवत कान्ह नंद इकठौरे—१०-२२४।

इकतन—क्रि. वि. [हि. एक+तन (ओर)] एक ओर। उ.—इकतन ग्वाल एकतन नारी। खेल मच्यौ ब्रज के बिच भारी—२४०८।

इकतर—वि [सं. एकत्र] इकट्ठा।

इकताई—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. यकता] (१) एक होने का भाव, एकत्व। (२) अकेले रहने की चाह या प्रकृति।

इकताना—वि. [सं. एक+हि. तानना=खिचाव] एकसा, स्थिर, अनन्य।

इकतार—वि. [सं. एक+हि. तार] बराबर, समान।

इकतारा—संज्ञा पुं. [हि. एक+तार] एक प्रकार का तानपूरा या तँबूरा।

इकतीस—संज्ञा पुं. [सं. एकत्रिंशत्, पा. एकतीस] तीस और एक की संख्या।

इकत्र—क्रि. वि. [सं. एकत्र] इकट्ठा।

इकरस—वि. [सं. एक+रस] समान, बराबर।

इकला—वि. [हि. अकेला] एकही, अकेला।

इकलाई—संज्ञा स्त्री. [स. एक+हिं. लाई या लोई=पर्त्त] (१) एक पाट की महीन सारी या चादर। (२) अकेलापन।

इकसर—वि. [स. एक+हिं. सर (प्रत्य.)] अकेला, एकाकी।

इकसार—वि. [सं. एक+हि. सार=समान] एक समान, एक सा, समान। उ.—नींच-ऊँच हरि कैं इकसार—७-८।

इकसारी—वि. [सं. एक+हिं. सार] एक सी। उ.—अति निसंक, निरलज, अभागिनि, घर घर फिरत न हारी। मैं तौ बृद्ध भयौं वह तरुनी, सदा बयस इकसारी। याकैं बस मैं बहु दुख पायौ, सोभा सबै बिगारी—१-१७३।

इकसूत—वि. [सं. एकश्रुत=लगातार] एक साथ, एकत्र।

इकहाई—क्रि. वि. [सं. एक+हि. हाई (प्रत्य.)] (१) एक साथ। (२) एक दम, अचानक।

इकांत—वि. [सं. एकांत] निर्जन, सूनसान, एकांत।

इकीस—वि. [सं. एकविंशत्, प्रा. एकबीस, हि. इक्कीस] इक्कीस।

इकैठ—वि. [सं. एकस्थ, पा. एकट्ठ] इकट्ठा।

इकौसो—वि. [सं. एक+ आवास] एकांत, निराला।

इक्का—वि. [सं. एक] (१) एकाकी, अकेला। (२) अनुपम, बेजोड़।

संज्ञा पु.—वह योद्धा जो लड़ाई में अकेला लड़े।

इक्षु—संज्ञा पुं. [सं.] ईख।

इक्ष्वाकु—संज्ञा पुं. [सं] सूर्यवंश का एक प्रतापी राजा जो वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया है। राम इसी के वंशज थे।

इच्छना—क्रि. स. [सं. इच्छा] चाह करना।

इच्छ्वाकु—संज्ञा पुं. [स. इक्ष्वाकु] सूर्यवंश का एक प्रधान शासक जो वैवस्वत मनु का पुत्र माना गया है। उ.—दस सुत मनु के उपजे और भयौ इच्छ्वाकु सबनि सिरमौर—९-२।

इच्छा—संज्ञा स्त्री [सं.] कामना, लालसा, अभिलाषा, मनोरथ, चाह, आकांक्षा।

इच्छित—वि. [सं.] चाहा हुआ, वांछित।

इच्छु—संज्ञा पुं. [सं. इक्षु] ईख।

वि. [सं] चाहनेवाला।

इच्छुक—वि. [सं.] अभिलाषी, चाह रखनेवाला।

इठलाति—क्रि. अ. [हि. ऐंठ+लाना=इठलाना] मटकती या नखरे दिखाती है। उ.—कहाँ मेरे कुँवर पाँच ही बरष के, रोइ अजहूँ सु पै पान माँगैं। तू कहाँ ढीठ, जोबन-प्रमत्त सुदरी, फिरति इठलाति गोपाल आगैं—१०-३०७।

इठलाना—क्रि. अ. [हि.ऐंठ+लाना] (१)गर्व या ठसक दिखाना, इतराना। (२) चटकना-मटकना, नखरे करना। (२) दूसरे को छकाने के लिए जानकर अनजान बनना।

इठलाहट—संज्ञा स्त्री. [हि. इठलाना] इठलाने की क्रिया या भाव, ठसक, ऐंठ।

इठाई—संज्ञा स्त्री. [सं. इष्ट, पा. इट्ठ+आई (प्रत्य)] (१) रुचि, चाह। (२) मित्रता, प्रेम।

इड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भूमि। (२) एक प्रधान नाड़ी जो पीठ की रीढ से बाएँ नथने तक है। चन्द्रमा

इसका प्रधान देवता माना गया है। उ.—इडा पिंगला सुषमन नारी। सहज सुता में बस मुरारी—३४४२ (८)।

इत—क्रि. वि. [सं. इतः] इधर, इस ओर। उ.—इत की भई न उतकी सजनी भ्रमत भ्रमत मैं भई अनाथ—पृ. ३२६।

मुहा.—इत उत—इधर उधर। उ.—(क) पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह-सिवार—१-९९। (ख) जब पॉडे इतउत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए—७-२।

इतनक—क्रि. वि. [हि. इतना] इतना छोटा-सा, बिलकुल जरा सा, नाममात्र का। उ.—(क) कबहि करन गयौ माखन चोरी। जानैं कहा कटाच्छ तिहारे, कमलनैन मेरौ इतनक सो री—१०-३०५। (ख) (कान्ह कौं) ग्वालिनि दोप लगावति चोर। इतनक दधि माखन कैं कारन कबहि गयो तेरी ओर—१०-३१०। (ग) देखौ माई कान्ह हिलकियानि रोवैं। इतनक मुख माखन लपटान्यो, डरनि ऑसुवनि धोवै—१०-३०७।

इतना—वि. पुं. [सं. इयत] इस मात्रा का।

मुहा.—इतने में—इसी बीच में।

इतनिक—वि. [हि. इतना] (१) इतनी, इस मात्रा की, इतनी जरा सी, थोडी। उ.—इतनिक दूरि जाहु चलि कासी जहॉ विकत है ग्यारी—३३१६।

इतनी—वि. स्त्री. [हि. इतना] इस मात्रा की, इस कदर, यह, ऐसी। उ.—इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरपत लोचन-नीर—१-२९।

इतनो, इतनौ—वि. [हि इतना] इस मात्रा का, इस कदर। उ.—बौरे मन समुझि-समुझि कछु चेत। इतनौ जन्म अकारथ खोयौ, स्याम चिकुर भए सेत १-३२२।

इतर—वि. [सं] (१) दूसरा, और। (२) नीच, साधारण।

इतराइ, इतराई—क्रि. अ. [हि. इतराना] ऐंठ जाना, घमंड या ठसक दिखाकर। उ.—दिन दिन इनकी करौ बडाई अहिर गए इतराइ—२५७८।

इतरात—क्रि. अ. [हि. उतराना, इतराना] (१) इतराते हो, घमंड करते हो, फूले नहीं समाते हो। उ.—(क) जम कै फंद परयो नहि जब लगि, चरननि किन लपटात। कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात—१-३१३। (ख) तातैं कहत सँभारहि रे नर, काहैं कौं इतरात—२-२२। (२) रूप-यौवन का घमंड दिखाते हो, ऐंठते हो, ठसक दिखाते हो, इठलाते हो। उ.—तुम कत गाय चरावन जात? अब काहू के जाउ कही जनि, आवति हैं युवती इतरात। सूर स्याम मेरे नैनन आगे रहो काहे कहूँ जात हौ तात—५०९।

इतराति, इतराती—क्रि. अ. [हि. इतराना] रूप-यौवन का गर्व या ठसक दिखाती है, इठलाती या ऐंठती है। उ.—(क) देही लाइ तिलक केसरि कौ, जोबन-मद इतराति। सूरज दोष देति गोबिद कौ, गुरु लोगनि न लजाति—१०-२६४। (ख) देखि हरि मथति ग्वालि दधि ठाढ़ी। जोबन मदमाती इतराती, बेनि ढुरति कटिलौं, छबि बाढ़ी—१०-३००। (ग) धन माती इतराती डोलै, सकुच नही करै सोर—१०-३२०। (घ) जननि बुलाइ बाहँ गहि लीन्हौ, देखहु री मदमाती। इनहीं कौ अपराध लगावति, कहा फिरति मदमाती—७७५।

इतराना—क्रि. अ. [सं उत्तरण, हि. उतराना] (१) सफलता पर गर्व या ठसक दिखाना, मदांध होना। (२) रूप, गुण, यौवन आदि पर घमंड करना, इठलाना।

इतरानी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. इतराना] घमंड करने लगी, मदांध हो गयी। उ.—सूर इतर ऊसर के बरसे थोरेहि जल इतरानी—२०४४।

इतराहट—संज्ञा स्त्री. [हि इतराना] मद, गर्व, घमंड।

इतरेतर—क्रि. वि. [सं. इतर+इतर] परस्पर, आपस में।

इतरौहाँ—वि. [हि. इतराना+औहाँ (प्रत्य.] जिससे ठसक या इतराना प्रकट हो।

इतस्तत—क्रि. वि. [सं] इधर-उधर, यहाँ-वहाँ।

इति—अव्य. [सं.] समाप्ति या अंत सूचक अव्यय।

संज्ञा स्त्री. [सं.] समाप्ति, अंत, पूर्णता।

इतिवृत्त—संज्ञा पुं. [सं] पुरानी कथा, कहानी।

इतिहास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गत प्रसिद्ध घटनाओं और तत्संबंधी व्यक्तियों का काल-क्रमानुसार वर्णन। उ.—सर्व सास्त्र को सार इतिहास सर्व जो। सर्व पुरान को सार युत सुतनि को—१८६१। (२) पुस्तक जिसमें प्रसिद्ध घटना और पुरुषों का वर्णन हो।

इती—वि. [सं. इयत=इतना] ऐसी, इतनी, इस मात्रा की। उ.—(क) आजु जौ हरिहि न सस्त्र गहाऊँ। . । स्यंदन खंडि, महारथि खंडौ, कपिध्वज सहित गिराऊँ। पाडव-दल सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ। इती न करौ, सपथ तौ हरिकी, छत्रिय-गतिहि न पाऊँ—१-२७०। (ख) कैसे करि आवत स्याम इती। मनक्रम बचन ओर नहि मेरे पदरज त्यागि हिती—११-३। (ग) इती दूर सम कियो राज द्विज भये दुखारे—१० उ.-८।

इते—क्रि. वि. [हि. इत] इतने, यहाँ, इन या इतने स्थानों में। उ.—(क) (गाइ) ब्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ—१-५६। (ख) इते मान इहि जोग सँदेसनि सुनि अकुलानी दूखी—३०२६।

इतेक—वि. [हि. इत+एक] इतना एक।

इतै—क्रि. वि. [सं. इतः, हि. इत] इधर, इस ओर, यहाँ। उ.—(क) हौ बलिहारी नंद नंदन की नैकु इतै हँसि हेरौ—१०-२१६। (ख) आवहु आवहु इतै, कान्ह जू पाई है सब धेनु—५०२।

इतो—वि. [सं. इयत=इतना] इतना, इस मात्रा का।

इतोई—वि. [सं. इयत=इतना, हि इतो + ई (प्रत्य.)] इतना ही, यही। उ.—है हरि नाम को आधार। और इहि कलिकाल नाहीं, रह्यो विधि-ब्यौहार। ...। सकल स्तुति-दधि मथत पायौ, इतोई घृत-सार —२-४।

इतौ—वि. [सं. इयत=इतना] इतना, इस मात्रा का। उ.—(क) सूर एक पल गहरु न कीन्हयौ, किहि जुग इतौ सहयौ-१-४६। (ख) तब अंगद यह बचन कह्यौ। को तरि सिंधु सिया-सुधि ल्यावै, किहि बल इतौ लहयौ—६-७४ (ग) रंक रावन, कहा ऽतंक तेरौ इतौ, दोउ कर जोरि बिनती उचारौं—६-१२६। (घ)तनक दधि कारन जसोदा इतौ कहा रिसाई—३५०।

इत्यादि—अव्य. [सं.] इसी प्रकार, अन्य, और।

इत्यादिक—वि. [सं.] इसी प्रकार के अन्य या और।

इत्यौ—वि. [हि इतना] इतना, इस मात्रा का। उ.—अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ए इत्यो नहि झूखी—३०२६।

इधन—संज्ञा पु. [सं. इंधन, हि. ईंधन] जलाने की लकडी या कंडा, जलावन। उ.-खरखर मूढ़ा उठि खेलत बालकसु ठि आनित इधन दौरि दौरि सचारयौ। ऐसे इहु नृप नर सकल सकेलि घर के साककरन हृद रस बकुल जारयौ-१० उ.-५२।

इधर—क्रि. वि [सं. इतर]इस ओर, यहाँ।

इध्म—संज्ञा पु. [सं.] (१) काठ, लकडी। (२) यज्ञ की समिधा।

इन—सर्व. [हि.] 'इस' का बहु। उ.—इन पतितनि कौ देखि-देखि कै पाछे सोच न कीन्हौ—१-१७५।

इनतैं—सर्व. [हि. इन+तें=से] इनसे। उ.—भीषम, द्रोन, करन, सब निरखत, इनतैं कछु न सरी—१-२५४।

इनहूँ—सर्व. सवि. [हि. इन+हूँ (प्रत्य.)] इन्होंने भी। उ.—अर्जुन भीम महाबल जोधा, इनहूँ मौन धरी—१-२५४।

इनि—सर्व. [हि. 'इस' का बहु,] इन, इन्होने। उ.—इनि तव राज बहुत दुख पाए। इनकै ग्रह रहि तुम सुख मानत। अति निलज्ज, कछु लाज न आनत—१-२८४।

इने-गिने—वि. [अनु. हि. इन-गिनना](१) कुछ, थोड़े से। (२) चुने हुए, गिने-गिनाए।

इनै—सर्व. [हि. इन] इनको। उ.-बडो गिरिराज गोबर्धन इनै रहौ तुम माने-९३३।

इन्ह—सर्व. [हि. इन] इन।

इभ—संज्ञा पु. [सं.] हाथी। उ.-राधे तेरे रूप की अधिकाइ ...। इभ तूटत अरु अरुन पंक भए बिधिना आन बनाइ—२२२४।

इभकुंभ—संज्ञा स्त्री [सं.] हाथी का मस्तक।

इभ्य—वि. [सं.] जिसके पास हाथी हो, धनी।
संज्ञा पुं.—राजा।

इमरती—संज्ञा स्त्री. [सं. अमृत] एक मिठाई।

इमली—संज्ञा स्त्री. [अम्ल+हि.ई (प्रत्य.)] एक बड़ा पेड़ जिसमें लंबी लंबी खट्टे गूदेदार फलियाँ लगती हैं।

इमि—क्रि. वि. [सं. एवम्] इस तरह, इस प्रकार। उ.—(क) ज्यौं जल मसक जीव-घट-अंतर, मम माया इमि जानि—३८१। (ख) सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे—१०-५८।

इयत्ता—संज्ञा स्त्री. [सं.] सीमा, हद।

इरषा—संज्ञा स्त्री. [सं. ईर्ष्या] ईर्ष्या, डाह, जलन। उ.—इंद्र देखि इरषा मन लायौ। करकै क्रोध न जल बरसायौ—५-२।

इरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) भूमि, पृथ्वी। (२) वाणी। (३) मदिरा।

इषना—संज्ञा स्त्री. [सं. एषणा] प्रबल इच्छा, कामना, वासना।

इला—संज्ञा स्त्री. [सं.] वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को ब्याही थी और जिससे पुरुरवा उत्पन्न हुआ था। (२) पृथ्वी। (३) वाणी, सरस्वती।

इलाचीपाक—संज्ञा स्त्री. [सं. एला + ची (फा. प्रत्य.'च') +सं. पाक] एक प्रकार की मिठाई जो इलायची के दानों को चीनी में पाग कर बनायी जाती है।

इलावर्त, इलावृत—संज्ञा पुं. [सं. इलावृत्त] जंबू द्वीप के एक खंड का नाम।

इव—अव्य. [सं.] समान, तरह, तुल्य।

इषणा—संज्ञा स्त्री. [सं. एषणा] प्रबल इच्छा, कामना, वासना।

इषु—संज्ञा पुं. [सं.] बाण, तीर।

इषुधी—संज्ञा पुं. [सं.] तूणीर, तरकश।

इषुमान—वि. [सं.] बाण चलाने वाला।

इष्ट—वि. [सं.] (१) इच्छित, चाहा हुआ। (२) अभिप्रेत। (३) पूजित।

संज्ञा पुं. [सं.] वह देवता जिसकी पूजा से कामना की सिद्धि होती है, इष्टदेव, कुलदेव। उ.—ये बसिष्ठ कुल-इष्ट हमारे, पालागन कहि सखनि सिखावत—९-१६३।

इष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मित्रता।

इष्टदेव—संज्ञा पुं. [सं.] आराध्य देव, कुलदेवता।

इष्टसुर—संज्ञा पुं. [सं.] आराध्यदेव, कुलदेव, इष्टदेव। उ.—इष्टसुरनि बोलत नर तिहि सुनि, दानव-सुर बड़ सूर—९-२६।

इष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं०] इच्छा, अभिलाषा, यज्ञ विशेष।

इष्य—संज्ञा पुं. [सं.] वसंत ऋतु।

इस—सर्व. [सं. एषः] 'यह' का विभक्ति के पूर्व आदिष्ट रूप।

इसे—सर्व. [सं. एष] 'यह' का कर्मकारक और संप्रदानरूप।

इस्त्री—संज्ञा स्त्री. [सं. स्त्री] स्त्री, नारी। उ.—इस्त्री पुरुष नहीं कुछ नाम—१००५

इहँ—सर्व [सं इह] यह। उ.—देव-दानव-महाराज-रावन सभा, कहन कौं मंत्र इहँ कपि पठाऔ—९-१२८।

इहँई—क्रि. वि. [हि. इह+ई (प्रत्य.)] यहाँ ही, इसी स्थान पर। उ.—(क) इहँई रहौ तौ बदौ कन्हाई। आपु गई जसुमतिहि सुनावन दै गई स्यामहि नंद दुहाई—८५७। (ख) की इहँई पिय को न बुलावै की तौंई चलि जाहीं—२१४५।

इह—क्रि. वि. [सं.] इस जगह, इस लोक में, यहाँ।
संज्ञा पुं.—यह संसार, यह लोक।
वि.—यह, इस प्रकार की। उ.—तासो भिरहु तुमहि मो लायक इह हेरनि मुसकानि—२४२०।

इहई—वि. [हि. इह= यह] यही, ऐसा ही। उ.—(क) इहई बात मधुपुरी जहँ तहँ दासी कहत डरत जिय भारी—२६४०। (ख) रसना इहई नेम लियौ है और नहीं भाखौ मुख बैन—२७६८।

इहलौकिक—वि. [सं.] (१) सांसारिक, इस लोक से सम्बन्ध रखनेवाला। (२) इस लोक में सुख देनेवाला।

इहवाँ—क्रि. वि. [हि. इह] इस जगह, यहाँ।

इहाँ—क्रि. वि. [हि. इह] यहाँ, इस जगह। उ.—नाहक मै लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी—१-१६२। (२) इधर, इस ओर। उ.—तहँ भिल्लनि सौ भई

लराई। लूटे सब बिन स्याम-सहाई। अर्जुन बहुत दुखित तब भए। इहाँ अपसगुन होतनित नए—१–२८६। (३) इस लोक या संसार में। उ.—ते दिन बिसरि गए इहाँ आए। अति उन्मत्त मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए—१–३२०।

इहाँई, इहाँउ—क्रि. वि. [हि. यहाँ+उ प्रत्य.)] यहाँ भी। इस लोक में भी। उ.-प्रगट पाप-संताप सूर अब, कायर हठै गहौ। और इहाँउ बिवेक-अगिनि के बिरह-बिपाक दहौ—३–२।

इहिं—वि.[हि इह=यह] इस, इसी, यही, इस प्रकार। उ.—(क) इहि लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारी (हो)–१–४४। (ख) सुंदर कर आनन समीप अति राजत इहि आकार। जलरुह मनौ बैर बिधु सौं तजि, मिलत लए उपहार—१०–२८३।

सर्व.—इसे, इसको, इसने। उ.-(क) सूर स्याम इहिं बरजि कै मेटौ अब कुल-गारी (हो)—१–४४। (ख) इहि बिधि इहि डहके सबै, जल-थल-नभ-जिय जेते (हो)—१–४४।

इहि—वि. [हि. इह=इस] इस, यही। उ.-इहि आँगन गोपाललाल को कबहुँक कनियाँ लैहौ—२५५०।

सर्व-इस, इससे। उ.-बिरद छुड़ाइ लेहु बलि अपनौ, अब इहि तैं हद पारौ–१–१६२।

इही—वि. [हि. इह=यह] इसी। उ.—यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार–१–६८।

इहै—सर्व. [हि. इह] यही, यहही। उ.—(क) तीनौ पन और निबहि,इतै स्वाँग कौ काछे—१–१३६। (ख) यही गोप, यह ग्वाल इहै सुख, यह लीला कहुँ तजत न साथ। (ग) मानो माई सबन इहै है भावत–२८३५

ई

ई—देवनागरी वर्णमाला का चौथा स्वर। यह 'इ' का दीर्घरूप है। तालु इसका उच्चारण स्थान है। यह प्रत्यय की भाँति शब्दों में जुड़कर विभिन्न शब्द-रूप बनाता है।

ईंगुर—संज्ञा पुं. [सं. हिंगुल,प्रा. इंगुल] चमकीले लाल रंग का एक खनिज पदार्थ जिसकी बिंदी सौभाग्यवती हिंदू स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं।

ईंचना—क्रि. स. [सं. अंजन=जाना, ले जाना, खींचना] खींचना, ऐंचना।

ईंडरी—संज्ञा स्त्री, [सं. कुंडली] वह कुंडलाकार गड्डी जो सर पर घड़ा या बोझ उठाते समय रखी जाती है।

ईंधन—संज्ञा पुं. [सं. इंधन] जलाने की लकड़ी या कंडा।

ई—सर्व. [सं. ई=निकट का संकेत] यह।

अव्य. [सं. हिं.] प्रयोग या शब्द पर जोर देने का अव्यय, ही।

ईक्षण—संज्ञा पुं [सं.] (१) दर्शन। (२) नेत्र। (३) जाँच, विचार।

ईख—संज्ञा स्त्री. [सं इक्षु, प्रा. इक्खु] ऊख, गन्ना।

ईछन—संज्ञा पुं [सं. ईक्षण=आँख] आँख।

ईछना—क्रि. स. [सं. इच्छा] इच्छा करना, चाहना।

ईछा—संज्ञा स्त्री. [सं. इच्छा] चाह, रुचि।

ईछी—संज्ञा स्त्री. [सं. इच्छा] इच्छा, चाह, रुचि।

ईठ—संज्ञा पुं [सं. इष्ट, प्रा. इट्ठ] मित्र, सखा, सखी।

ईठना—क्रि. अ. [सं. इष्ट] इच्छा करना।

ईठि—संज्ञा स्त्री. [सं. इष्टि, प्रा. इट्ठि] (१) मित्रता, प्रीति। (२) चेष्टा, यत्न।

ईठीदाड़ू—संज्ञा पुं. [हि. ईठी+दंड] चौगान खेलने का डंडा।

ईड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं. ईडा=स्तुति] स्तुति, प्रशंसा।

ईड़ित—वि. [सं.] प्रशंसित।

ईढ़—वि. [सं इष्ट, प्रा. इट्ठ] हठ, जिद, टेक।

ईतर—वि. [हिं. इतराना] इतरानेवाला, ढीठ। उ.—गई नद घर को जसुमति जहँ भीतर। देखि महर को कहि उठीं सुत कीन्हो ईतर।

क्रि. अ.— इतराते हैं। उ.—नान्हे लोग तनक धन ईतर—१०४२।

वि. [सं. इतर] निम्नश्रेणी का, साधारण, नीच।

ईति—संज्ञा स्त्री [सं] (१) खेती को हानि पहुँचानेवाले छह प्रकार के उपद्रव-अति वृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी पड़ना, चूहे लगना, पक्षियों की बढ़ती, शत्रु का आक्रमण। उ.—अब राधे नाहिनै ब्रजनीति। ....। पोच पिसुन लस दसन सभासद प्रभु अनंग मंत्री बिनु भीति। सखि बिनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन

कुराज राज की ईति--२२२३। (२) पीड़ा, दुख। उ. तुम हो संत सदा उपकारी जानत हौ सब रीति। सूरदास ब्रजनाथ बचै हौ ज्यो नहि आवै ईति—३४२०।

ईदृश—क्रि. वि. [सं] इस प्रकार, ऐसे।

वि.—इस प्रकार का, ऐसा।

ईप्सा—सज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा, अभिलाषा।

ईप्सित—वि. [सं.] इच्छित, अभिलाषत।

ईप्सु—वि. [सं] चाहनेवाला।

ईरखा—संज्ञा पुं. [सं. ईर्ष्या] डाह, द्वेष।

ईरिण—संज्ञा पुं. [सं.] बलुआ मैदान, ऊसर।

ईर्षणा—संज्ञा स्त्री [सं ईर्ष्यण] ईर्ष्या, डाह।

ईर्षा—संज्ञा स्त्री. [सं. ईर्ष्या] डाह, द्वेष।

ईर्षालु—वि [सं.] दूसरे से डाह रखनेवाला।

ईर्ष्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] डाह, द्वेष।

ईश—संज्ञा पुं. [स.] (१) स्वामी। (२) राजा। (३) ईश्वर। (४) महादेव। (५) ग्यारह की संख्या।

ईशपुर—संज्ञा पुं. [सं] शिवजी का नगर। उ.—जो गाहक साधन के ऊधो ते सब बसत ईशपुर काशी—३३१५।

ईशा—संज्ञा स्त्री. [स.] (१) ऐश्वर्य। (२) ऐश्वर्य-संपन्न नारी।

ईशान—संज्ञा पुं. [स] (१) स्वामी, अधिपति। (२) शिव। (३) ग्यारह की संख्या। (४) पूरब-उत्तर का कोना।

ईशिता, ईशित्व—संज्ञा स्त्री. [सं.] आठ सिद्धियों में से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है।

ईश्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्वामी। (२) भगवान।

ईश्वरीय—वि. [सं.] (१) ईश्वर-संबंधी। (२) ईश्वर का।

ईषत्—वि. [सं.] थोड़ा, कुछ, अल्प।

ईषद, ईषद्—वि. [सं.] थोड़ा, कुछ, कम, अल्प। उ.— (क) ईषद हास दंत-दुति बिगसति, मानिक मोती धरे जनु पोइ—१०-२१०। (ख) असन अधर कपोल नासा सुभग ईषद हास—१३५६।

ईषना—संज्ञा स्त्री. [सं एषणा] प्रबल, इच्छा।

ईस—संज्ञा पुं. [सं ईश] (१) शिव। (२) राजा। (३) भगवान। (४) स्वामी, अधिष्ठाता। उ.—कर्मभवन के ईस सनीचर स्याम बरन तन हेहै—१०-८६।

ईसन—सज्ञा पुं. [सं. ईशान] पूरब और उत्तर के बीच का कोना।

ईसर—संज्ञा पुं. [स. ऐश्वर्य] धन-संपत्ति।

ईसान—संज्ञा पुं. [सं. ईशान] (१) स्वामी। (२) शिव। (३) पूरब उत्तर का कोना।

ईस्वर—संज्ञा पुं. [सं. ईश्वर] परमेश्वर, भगवान।

ईस्वरता—संज्ञा स्त्री [हिं. ईश्वरता] ईशता, स्वामित्व, प्रभुत्व। उ.—कै कहूँ खान-पान रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसें। कै कहुँ रंक, कहूँ ईश्वरता, नट-बाजीगर जैसै—१-२६३।

ईहा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चेष्टा। (२) इच्छा।

ईहित—वि. [सं] इच्छित, अभीष्ट।

ईह्यॉ—क्रि. वि. [हि. यहॉ] यहाँ, इस स्थान पर। उ.—अब वै बातै ईह्यॉ रही। मोहन मुख मुसकाइ चलत कछु काहू नही कही—२५४२।

उ

उ—देवनागरी वर्णमाला का पॉचवॉ स्वर। ओष्ठ इसका उच्चारण-स्थान है।

उँगली—संज्ञा स्त्री. [सं. अंगुलि] अँगुली।

उँचाइ—क्रि. स. [हि. उँचोना] उठाकर, ऊँचा करके। उ.—सुनौ किन कनकपुरी के राइ। हौ बुधि-बल-छल करि पचि हारी, लख्यौ न सीस उँचाइ—९-७८।

उँचाई—संज्ञा स्त्री. [सं. उच्च] (१) ऊँचापन। (२) बड़प्पन, महत्व।

क्रि. स.—[हि. उचाना] उठाकर, ऊँचा करके। उ.—बलि कह्यौ बिलंब अब नेकु नहि कीजिए मंदराचल अचल चलौ धाई। दोऊ एक मंत्र करि जाइ पहूँचे तहाँ कह्यौ अब लीजिए यहि उँचाई।

उँचान—संज्ञा पुं. [हि. ऊँचा] ऊँचाई।

उँचाना—क्रि. स. [हि. ऊँचा] ऊँचा करना, उठाना।

उँचाव—संज्ञा पुं. [सं. उच्च] ऊँचाई, ऊँचापन।

उँचास—संज्ञा पुं. [हि. ऊँचा] **ऊँचा होने का भाव ऊँचाई ।**

उँजरिया—संज्ञा स्त्री. [हि. अँजोरी, अँजोरिया] (१) **प्रकाश । (२) चाँदनी ।**

उँजियार—संज्ञा पुं. [हि. उजियाला] **उजाला, प्रकाश ।**

उँजेरा, उँजेला—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] **प्रकाश, उजाला**

उँज्यारी—संज्ञा स्त्री. [हि. उजियाला] (१) **प्रकाश । (२) चाँदनी ।**

उँदुर—संज्ञा पुं. [स.] **चूहा, मूसा ।**

उँह—अव्य. [अनु.] (१) **घृणा अथवा अस्वीकृति सूचक शब्द । (२) वेदना-सूचक अव्यय ।**

उ—संज्ञा पुं. [स.] (१) **ब्रह्मा (२) नद ।**

अव्य.—भी ।

उअना—क्रि अ. [हि. उदयना] **उदय होना, उठना ।**

उआना—क्रि. स. [हि. 'उअना' का प्रे०]**उगाना, उदय करना ।**

क्रि. स. [स-उद्गुरण, पा. उग्गुरन =हथियार तानना] **मारने के लिए शस्त्र उठाना ।**

उई—क्रि. अ. [हि. उदयन, उअना] **उदय हुई, जन्मी, उगी ।** उ.—जानौ नहीं कहँति आवति वह मूरति मन माँह उई—१४३३ ।

उऋण—वि. [स. उत्+ ऋण] **जिसका ऋण से उद्धार हो गया हो, ऋण-मुक्त ।** उ.—कैसेहु करि उऋण कीजै बधुन ते मोहि—२६२४ ।

उकचन—संज्ञा पुं. [स. मुचकुन्द] **मुचकुन्द का फूल ।**

उकचना—क्रि. अ. [स. उत्कर्ष, पा. उक्कस=उखाड़ना] (१) **उखड़ना, अलग होना । (२) भागना, स्थान त्यागना ।**

उकटना—क्रि. स. [स. उत्कथन, पा. उक्कथन,] **बार-बार कहना, उघटना ।**

उकटा—वि. [हि. उकटना] **उपकार जतानेवाला ।**

उकठ—क्रि. अ. [हि. उकठना] **सूखकर ।** उ.—मधुबन तुम क्यो रहत हरी । ··· । कौन काज ठाढी रही बन मे काहे न उकठ परी—२७४१ ।

उकठना—क्रि. अ. [सं. अव+काष्ठ=लकडी] **सूखना, ऐंठ जाना ।**

उकठा—वि. [हि. उकठना] **शुष्क, सूखा ।**

उकठि—क्रि. अ. [हि. उकठना] **सूखकर, शुष्क होकर ।** उ.—अंकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन बेलि प्रफुलित कलिनि कहर के—१०-३० ।

उकठे—क्रि. अ. [हि. उकठना] **सूख गये, शुष्क हो गये ।**

उकताना—क्रि. अ. [सं. आकुल, पु. हि. अकुताना] (१) **ऊबना । (२) आकुल होना, उतावली करना, जल्दी मचाना ।**

उकति—संज्ञा स्त्री [स उक्ति] **कथन, वचन ।**

उकलना—क्रि. अ. [स. उत्कलन=खुलना] **अलग होना ।**

उकसन उकसनि—संज्ञा स्त्री. [हि. उकसना] **उभाड, अंकुरित होने की क्रिया ।**

उकसना—क्रि. अ. [स. उत्कर्षण या उत्सुक] (१) **ऊपर को उठना । (२) अंकुरित होना । (३) खोदना ।**

उकसाना—क्रि. स. [हि. 'उकसना' का प्रे.] (१) **उत्तेजित करना । (२) उठा देना, हटाना ।**

उकसाय—क्रि. स [हि. उकसाना] (१) **उत्तेजित करके । (२ हटाकर, उठाकर । (३) खोदकर ।**

उकसारत—क्रि. स. [हि. उकसाना] **ऊपर उठाकर ।** उ—कहा भयौ जो घर कैं लरिका, चोरी माखन खायौ । इतनी कहि उकसारत बाहैं, रोष सहित बल धायौ—३७४ ।

उकसि—क्रि. अ. [हि. उकसना] (१) **उभरकर, ऊपर उठकर । (२) खुदकर**

उकसौंहाँ—वि. [हि. उकसना+औहाँ (प्रत्य.)] **उभड़ता हुआ ।**

उकासत—क्रि. स. [हि. उकसाना] **(१)उभाड़ते हैं, ऊपर को खींचते है । २) खोदते है ।** उ—गैयाँ बिडरि चली जित तितको सखा जहाँ तहँ घेरै । बृषभ सृंग सो धरनिउकासत बल मोहन तन हेरै ।

उकासना—क्रि. स. [हि. उकसाना] (१) **उभाड़ना । (२) खोदना ।**

उकुति—संज्ञा स्त्री. [स. उक्ति] **कथन, वचन ।**

उकुसना—क्रि. स. [हि. उकसना]**उजाड़ना, नष्ट करना ।**

उकुसि—क्रि. स. [हि. उकुसना] उजाड़ कर, नष्ट करके।

उकेलना—क्रि. स. [हि. उकलना] उजाड़ना, नोचना।

उक्त—वि [सं.] कथित, कहा हुआ, ऊपर का।
संज्ञा स्त्री—(१) कथन, बात । (२) अनोखा, विशेषार्थपूर्ण कथन। उ—सूरदास तज ब्याज उक्त सब मोसो कौन चेतावै—सा.८४।

उक्तगूढ़—संज्ञा स्त्री. [सं. उक्ति + गूढ़=गूढ़ोक्ति] (१) एक अलंकार जिसमें विशेषार्थक गूढ़ बात बात करने वाले के अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्ति के प्रति कही जाय। २) गूढ़ वचन, विशेषार्थक कथन। उ—उक्तगूढ ते भाव उदे सब सूरज स्याम सुनावै—सा.

उक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कथन, वचन। (२) चमत्कारपूर्ण वाक्य। उ—सूरज प्रभु मिलाप हित स्यानी अनमिल उक्ति गनावै—सा. १५।

उक्तियुक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] सम्मति और उपाय।

उखटना—क्रि. अ. [सं. उत्कर्षण] (१) लड़खड़ाना। कुतरना।

उखड़ना—क्रि. अ. [हि.] (१) अलग होना। (२) टूट जाना।

उखरना—क्रि. अ. [हिं. उखड़ना] उखड़ना, अलग होना।

उखरे—क्रि. अ. [हिं. उखड़ना] अलग हुए, छूट गये। उ.—माड़े माड़ि दुनेरो चुपरे। वह घृत पाइ आपुहि उखरे—२३२१।

उखाड़ना—क्रि. स. [हि. 'उखड़ना' का प्रे.] (१) अलग करना। (२) भड़काना, बिचकाना। (३) ध्वस्त करना।

उखारति—क्रि. स. [हि. उखाडना ('उखड़ना' का स. रूप)] उखाड़ती है, तोडती है। उ.—माधौ जू, यह मेरी गाइ। ....। फिरति बेद-बन-ऊख उखारति, सब दिन अरु सब राति—१-५१।

उखारना—क्रि. स [हि उखाड़ना] उखाडना।

उखारि—क्रि. स. [हि. उखाड़ना] उखाड़ या खोदकर। उ.—कहौ तौ लंक उखारि डारि देउँ जहाँ पिता सपति कौ—६-८४।

उखेरना—क्रि. स. [हि. उखाड़ना] अलग करना,छुड़ाना।

उखेरे—क्रि. स. [हिं. उखाडना] उखेड़ना, अलग करना, छुडाना। उ.—मन तो गए नैन हैं मेरे। ....। क्रम क्रम गए कह्यौ नहि काहू स्याम संग अरुझे रे। ......। सूर लटकि लागे अँग छबि पर निठुर न जात उखेरे—पृ. ३२०।

उखेरो –क्रि. स. [हि. उखाड़ना] उखाड लो, अलग करो, पृथक करो। उ.—कियो उपाइ गिरिवर धरिबे को महि ते पकरि उखेरो—६५६।

उखेलना—क्रि. स. [सं. उल्लेखन] लिखना, चित्र खींचना !

उखेला—क्रि. स. [हि. उखेलना] चित्रित किया, लिखा।

उगटना—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन] (१) बार-बार कहना (२) ताना मारना।

उगत—क्रि. अ. [सं. उद्गमन, पा उग्गवन, हि. उगना] निकलता है, उदय होता है। उ—उगत अरुन बिगत सर्वरी, ससाक किरन-हीन दीपक सु मलीन, छीन-दुति समूह तारे—१०-२०५।

उगन—क्रि. अ. [सं. उद्गमन, हि. उगना। उगना, उदय या प्रकट होना। उ—कहौ तौ सूरज उगन देउँ नहि, दिसि दिसि बाढ़ै ताम—६-१४८।

उगना—क्रि. अ. [सं. उद्गमन, पा, उग्गवन] (१) उदय होना, निकलना। (२) जमना, अंकुरित होना। (३) उपजना, उत्पन्न होना।

उगरना—क्रि. अ. [सं. अग्र] सामने निकलना।

उगलत—क्रि. स. [हि. उगलना] मुँह से बाहर निकालता या गिराता है। उ.—स्रवत जलकुच परत धारा नही उपमा पार। मनो उगलत राहु अमृत कनक गिरि पर धार—१८४१।

उगलना—क्रि. स. [सं. उद्गिलन] (१) मुँह की वस्तु को थूकना। (२) दूसरे का लिया हुआ माल वापस करना। (३) गुप्त भेद खोलना।

उगवना—क्रि. स. [हि. 'उगना' का स. रूप] (१) उगाना, उदय करना। उत्पन्न करना।

उगवै—क्रि. स. [हि. उगवना] (१) उदय करती है। (२) उत्पन्न करती है।

उगवैं—क्रि. अ. [हिं. उगना] उपजे, उत्पन्न हो ।

उगसाना—क्रि. स. [हिं. उकसाना] (१) उभाड़ना, उत्तेजित करना । (२) उठाना ।

उगसारना—क्रि. स. [हिं. उकसाना] कहना, प्रकट करना ।

उगसारा—क्रि. स. [हिं. उकसाना] कहा, प्रकट किया ।

उगाना—क्रि. स. [हिं. 'उगना' का. स. रूप] (१) अंकुरित करना, उत्पन्न करना । (२) उदय करना । (३) मारने को शस्त्र तानना ।

उगार, उगारु—संज्ञा पुं. [सं उद्गार, पा. उग्गाल, हि. उगाल] रस, आनंद । उ.—(क) स्यामल गौर कपोल सुचारु । रीझि परस्पर लेत उगारु–१८२७ । (ख) गौर स्याम कपोल सुललित अधर अमृत सार । परस्पर दोउ पियरु प्यारी रीझि लेत उगार—पृ० ३५१ (७५) ।

उगाहत—क्रि.स. [हि. उगाहना]वसूल करते हैं । उ.—हाट बाट सब हमहिं उगाहत अपनो दान जगात—१०८७ ।

उगाहना—क्रि. स. [स. उद्ग्रहण, प्रा. उग्गहन] वसूल करना ।

उगाही—संज्ञा स्त्री [हि. उगाहना] (१) वसूल करने का कार्य या भाव । (२) वसूल हुआ धन ।

उगाहु—क्रि. स. [हि. उगाहना] वसूल करो, ले लो । उ.—सद माखन तुम्हरेहि मुख लायक लीजै दान उगाहु—११७४ ।

उगिलै—क्रि. स. [हि. उगलना] उगल दे, थूके । उ.–मारति हौं तोहिं बेगिं कन्हैया, बेगिं न उगिलै माटी —१०-२५५ ।

उगिलौ—क्रि. स.[सं. उद्गिलन, पा. उग्गिलन, हि. उगलना] थूक दो, उगल दो । उ.—मोहन काहैं न उगिलौ माटी—१०-२५४ ।

उगेउ—क्रि. अ. [हि० उगना] उगा, उदय हुआ ।

उगैया—वि. [हि. उगाना] उगानेवाले, उत्पन्न करने वाले, प्रकटानेवाले । उ.—जिहि सरूप मोहे ब्रह्मादिक, रवि-ससि कोटि उगैया । सूरदास तिन प्रभु चरननि की, बलि-बलि मैं बलि जैया—१०-१३१ ।

उग्यो—क्रि. अ. भूत. [सं. उद्गमन, पा. उग्गवन, हिं. उगना] निकला, उदय हुआ, प्रकटा । उ.—सूरदास रसरासि रस बरसि कै चली, जानौ हर-तिलक कुहू उग्यौ री—६९१ ।

उग्र—वि [सं] प्रचंड, प्रबल, घोर, तेज ।

उग्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रचंडता, प्रबलता, तेजी ।

उग्रधन्वा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र । (२) शिव ।

उग्रशेखरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] शिव के मस्तक की गंगा ।

उग्रसेन—संज्ञा पुं. [स] मथुरा के राजा जो कंस के पिता थे । कंस ने इन्हें बन्दीगृह में डाल रखा था । श्रीकृष्ण ने कंस को मार कर इनका उद्धार किया और पुनः इन्हें सिंहासन पर बैठाया ।

उग्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा, महाकाली । (२) कर्कशा स्त्री ।

उर्ग—संज्ञा पुं [स. उरग] सर्प । उ.—बेनी लसत ते कहौ छबि ऐसी महलनि चित्रे उर्ग – २५६२ ।

उघट—क्रि. अ. [स. उत्कथन, पा. उक्कथन, अथवा सं० उद्घाटन,पा. उग्घाटन, हि. उघटना] ताल देकर, सम पर तान तोड़कर । उ.—कोउ गावत,कोउ मुरलि बजावत, कोउ बिषान, कोउ बेनु । कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै, जुरी ब्रज-बालक रेनु–४४८ ।

उघटत—क्रि. अ. [सं. उघटना] ताल देकर, सम पर तान तोडकर । उ.—(क) कोउ गावत, कोउ नृत्य करत कोउ उघटत, कोउ करताल बजावत–४८० । (ख) कालि नाग के फन पर निरतत, संकषन कौ बीर । लाग मान थेइ-थेइ करि उघटत, ताल मृदंग गँभीर—५७५ । (ग) उघटत स्याम नृत्यत नारि —पृ०३४६ (४५) ।

उघटति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उघटना] (१) ताल देती है, सम पर तान तोडती है । उ.–कबहुँक गावति, कबहुँ नृत्यत, कबहुँ उघटति रंग–पृ० ३४६ (४५) । (२) किसी को बुरा-भला कहते कहते बाप-दादे तक पहुँचना । उ.—उघटति हौ तुम मात-पिता लौं, नहि जानौ तुम हमको—१०८६ ।

उघटना—क्रि. अ. [सं. उत्कथन,पा. उक्कथन अथवा सं. उद्घाटन, पा. उग्घाटन](१) ताल देना,सम पर तान

तोड़ना। (२) बीती बातको उभाड़ना। (३) उपकार जताना। (४) किसी को गाली देते-देते बाप-दादे तक पहुँचना।

उघटा—वि. [हि. उघटना] उपकार जतानेवाला।

उघट्यौ—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन, पा. उग्घाटन, हि. उघटना] ताल दी, सम पर तान तोड़ी। उ–मन मेरै नट के नागर ज्यौ तिनहीं नाच नचायौ। उघट्यौ सकल सँगीत-रीति भव अंगनि अंग बनायौ। काम-क्रोध-मद-लोभ मोह की तान तरंगनि गायौ–१-२०५।

उघड़ना—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाटन] (१) खुलना, आवरण रहित होना। (२) प्रकट होना, प्रकाशित होना। (३) नग्न होना। (४)भेद खुलना, भंडा फूटना।

उघर—क्रि. अ. [हिं. उघरना] प्रकट होना, ज्ञात होना। उ.—उघर आयौ परदेसी को नेह—१० उ.-६०।

उघरत—क्रि. अ. [हि. उघड़ना] (१) खुलता है, आवरण या परदा हटता है। उ.—(क) राखौ पति गिरिवर गिरिधारो। अब तौ नाथ रह्यौ कछु नाहिन उघरत माथ अनाथ पुकारी—१-२४८। (ख) जैसे सपनो सोइ देखियत तैसौ यह संसार। जात बिलय ह्वै छिनक मात्र मै उघरत नैन-किवार। (२) असली रूप में प्रकटती है, असलियत खुलती है, भंडा फूटता है। उ.—सेमर-फूल सुरंग अति निरखत, मुदित होत खग-भूप। परसत चोंच तूल उघरत मुख, परत दुःख कै कूप—१-१०२। (३) ऊपर उठता है, उभरता है। उ.—हेरत हरष नन्दकुमार। बिनु दिये बिपरीत कवजा पग छपाईन भार। रच उघरत देष नीफन मान उरवर भेद—सा. ३६।

उघरना—क्रि. अ. [सं. उद्घाटन, पा. उग्घाटन, हि. उघड़ना] (१) खुलना, आवरणरहित होना। (२) नग्न होना। (३) प्रकट या प्रकाशित होना। (४) भेद खुलना, भंडा फूटना।

उघरयौ—क्रि. अ. [स. उद्घाटन, पा. उद्घाटन, हि. उघरना] खुल गया खिसक गया। उ.—(क) छोरे निगड़, सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघरयौ—१०-८। (ख) डोलत तनु सिर अंचर उघरयौ, बेनी पीठ डुलति इहिं भाइ—१०-२६८।

उघरारा—संज्ञा पुं. [उघरना] खुला हुआ स्थान।
वि.—(१) खुला हुआ। (२) खुला रहनेवाला।

उघरार—संज्ञा पुं. सवि. [हि. उघरारा] खुले स्थान में।

उघरि—क्रि. अ. [हि. उघरना] खुलता है, आवरण हटता है। उ.—स्यामा स्याम सो होरी खेलत आज नई।···सूरदास जसुमति के आगे उघरि गई कलई। (२) खुल गये, बन्द न रहे। उ.—सहज कपाट उघरि गए ताला कूँजी टूटि—२६२५। (३) नंगा होकर।

मुहा.—उघर नच्यौ चाहत हौ—लोकलाज की परवाह न करके मनमानी करना चाहता हूँ। उ.—हौ तौ पतित सात पीढ़िन कौ पतितै ह्वै निस्तरिहौ। अब हौ उघरि नच्यौ चाहत हौ तुम्हैं बिरद बिन करिहौ—१-१३४।

(४) प्रकट होना। (५) भेद खुलना, भण्डा फूटना। उ.—(क) थोरे ही में उघरि परैगे अतिहि चले इतराइ—पृ० ३२२। (ख) हम जातहि वह उघरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी—१२६२।

उघरी—क्रि. अ [हि. उघरना] प्रकट हो गयी। उ—ह्यॉ ऊधो काहेको आए कौन सी अटक परी। सूर-दास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु सब पाती उघरी-३३४६।

उघरे—क्रि.अ. [सं. उद्घाटन, पा. उग्घाटन,हि. उघरना] खुले, आवरणरहित हुए। उ—बदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी। बड़ी बार भई लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी—१०-२५४।

उघाड़ना—क्रि. स. [हिं.'उघड़ना' का सक.](१)खोलना, आवरण हटाना। (२) प्रकट करना। (३) भेद खोलना, भण्डा फोड़ना।

उघार—क्रि. स. [हि. उघारना] खोलकर, खोल दे-(क) पलक नेक उघार देखत आय सुन्दर गात—सा.६६। (ख) मनिन बार बसन उघार। संभु-कोप दुआर आयौ आद को तनु मार— सा. ८६।

उघारत—क्रि.स. [हि. उघारना] खोलते है, ढकना हटाते हैं। उ.—सूनैं भवन कहूँ कोउ नाहीं मनु याही को राज। भाँड़े धरत, उघारत, मूँदत दधि माखन कैं काज—१०-२७७।

उघारन—क्रि. स. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाडन, हि. उघारन] **खोलना, आवरण हटाना**। उ.—लाल उठौ मुख धोइए, लागी बदन उघारन—४१९।

उघारना—क्रि. स. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाड़न, हिं. उघाडना] (१) **खोलना, आवरण रहित करना**। (२) **प्रकट करना, प्रकाशित करना**।

उघारि—क्रि. स. [हिं. उघारना] (१) **खोलकर, आवरण रहित करके, नग्न करके**। उ—(क) जीरन पट कुपीन तन धारि। चल्यौ सुरसरी, सीस उघारि—१ ३४१। (ख) बिदुर सस्त्र सब तबहि उतारि। चल्यौ तीरथनि मुंड उघारि १-२८४। (२) **खोलकर, प्रकट करके, बताकर**। उ—नीके जाति उघारि आपनी जुवतिन भले हँसायौ—१०६८।

क्रि. वि.—(१) **साफ-साफ, स्पष्ट रूप से**। उ.—अनलायक हम हैं की तुम हौ वहौ न बात उघारि—२४२०। (२) **प्रकट करके, प्रकाशित रूप से**। उ.--चलीं गावति कृष्न के गुन हृदय ध्यान बिचारि। सबके मन जो मिलै हरि कोउ न कहत उघारि—१०८०।

उघारी—क्रि. स. [सं.उद्घाटन, प्रा.उघाड़न, हि. उघाड़ना] (१) **खोल कर, आवरणहीन की, नंगी की**। उ.—(क) याकै बस मैं बहु दुख पायौ, सोभा सबै बिगारी। करिये कहा, लाज मरियै जब अपनी जाँघ उघारी—१०-१७३। (ख) बिदुर सस्त्र सब तही उतारी। चल्यौ तीरथनि मुंड उघारी—१-१४४। (२) **खोल कर, पलक न झपकाकर**। उ.--सिव की लागी हरि-पद तारी। तातै नहि उन आँखि उघारी—४-५।

वि. [हि. उघाडना] **नग्न,वस्त्रहीन**। उ —अब तौ नाथ न मेरौ कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुंदमुरारी। सूरदास अवसर के चूकैं, फिरि पछितैहौ देखि उघारी १-२४८।

उघारे—क्रि. स. [सं. उद्घाटन, प्रा. उग्घाडन, हिं. उघारना] (१) **(आवरण आदि हटाकर) खोले**। उ.—दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे। सूरदास स्वामी करुनामय, नैन न जात उघारे—९-५२। (२) **नग्न होकर**। (३) **लोक-लाज छोड़कर**।

उघारौ—क्रि. सं. [स. उद्घाटन, प्रा. उग्घाड़न, हि. उघाड़ना] **खोलता (है), आवरणहीन या नंगा (करता है)**। उ.—द्रुपद-सुता कौ मिट्यौ महादुख, जबही सो हरि हेरि पुकारौ। हौ अनाथ, नाहिन कोउ मेरौ, दुस्सासन तन करत उघारौ—१-१७२।

उघारयौ—क्रि. स. [हि. उघारना] **खोला, आवरण-रहित किया**। उ.—प्रात समय उठि सोवत सुत को बदन उघारयौ नंद—१०-२०३।

उघेलना—क्रि. स. [हि. उघारना] **खोलना**।

उचकना—क्रि. अ. [सं. उच = ऊँचा + करण = करना] **उछलना, कूदना**।

उचका—क्रि. वि. [हि. अचाका] **अचानक, सहसा**।

उचकाइ-क्रि. स. [हि. उचकाना] **उठाकर, ऊपर करके**। उ.—केतिक लंक, उपारि बाम कर, लै आवै उचकाइ—९-७४।

उचकाई—क्रि. स. [हि. उचकाना] **उठाकर, ऊपर करना**। उ.—(क) सत बचन गिरिदेव कहत है कान्ह लेइ मोहि कर उचकाई। (ख) गोबर्धन लीन्हो उचकाई—१०५६।

उचकाना—क्रि. स. [हि. 'उचकना' का सक.] **उठाना, ऊपर करना**।

उचकाय—क्रि. स. [हि. उचकाना] **उचकाकर, ऊपर उठाकर, ऊँचा करके**। उ.—मिलि दस पाँच अली बलि कृष्नहिं गहि लावत उचकाय। भरि अरगजा अबीर कनक घट देति सीस ते नाय—२४९६।

उचकि—क्रि. अ. [हि. उचकना] **पैर के पंजों के बल ऊपर उठकर तथा सिर ऊँचा करके**। उ.—अति ऊँचो बिस्तार अतिहि बहु लीन्हो उचकि करज भुज बाम—९९७।

उचकी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उचकना] **उछली, कूदी**।

उचक्का—संज्ञा पुं. [हि. उचकना] (१) **उठाईगीरा**। उ.—बटमारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठकटा, लठबाँसी—१-१८६। (२) **ठग**।

उचक्यौ—क्रि. अ. [सं. उच = ऊँचा+करण = करना, हि. उचकना] **ऊपर उठा, उठकर ऊपर आया, उतराया**। उ.—हम सँग खेलत स्याम जाइ जल माँझ

धँसायौ। बूड़ि गयौ, उचक्यौ नहीं ता बातहि भई अबेर—५८६।

उचटत—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन, हि. उचटना] **अलग होती है, छूटती है, छिटकती है**। उ.—(क) लटकि जात जरि-जरि द्रुम-बेली, पटकत बाँस, काँस, कुस ताल। उचटत भरि अगार गगन लौं, सूर निरखि ब्रजजन-बेहाल—५९४। (ख) पटकत बाँस, काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल। उचटत अति अंगार, फुटत फर, झपटत लपट कराल —६१५।

उचटना—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन] **(१) उखड़ना, अलग होना, छूटना। (२) जमी वस्तु का पृथ्वी से अलग होना। (३) भडकना, बिचकना। (४) विरक्त होना, हट जाना।**

उचटाइ—क्रि. स. [हि. उचटाना] **खिन्न करके, उदासीन करके, विरक्त करना।** उ.—अब न पियहि उचटाइ हौं मोकौ सरमात। श्वास करत मेरी जिती आवत सकुचात—२१७४।

उचटाए—क्रि. स. [हि. उचटाना] **खिन्न किया, विरक्त कर दिये।** उ.—नैननि हरि कौ निठुर कराए। चुगली करी जाइ उन आगे हमतें वे उचटाए —पृ. ३३०।

उचटाना—क्रि. स. [सं. उच्चाटन] **(१) अलग करना, नोचना। (२) खिन्न करना, विरक्त करना। (३) भड़काना।**

उचटायौ—क्रि. स. [हि. उचटाना] **(१) अलग किया, पृथक किया। (२) खिन्न या विरक्त किया। (३) भड़काया।**

उचटावत—क्रि. स. [हि. उचटाना] **(१) भड़काते हो, बिचकाते हो।** उ.—वा देखत हमको तुम मिलिहौ काहे को ताको अनखावत। जैहै कहूँ निकसि हिरदै ते जानि-बूझि तेहि क्यौ उचटावत १८७०। **(२) खिन्न करते हो, उदासीन करते हो, विरक्त करते हो।** उ.—जल बिनु मीन रहत कहुँ न्यारे यह सो रीति चलावत। जब ब्रज की बातैं यह कहियत तबहि तबहिं उचटावत—२६१२।

उचटि—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन, हि. उचटना] **उचट कर, छिटक कर, छूटकर।** उ.–अति अगिनिझार, भंभार धुंधार करि, उचटि अंगार झंझार छायौ—५९६।

उचटे—क्रि. अ. [स. उच्चाटन, हि. उचटना] **खुल गये।** उ.—जागहु जागहु नंद कुमार। रवि बहु चढ्यौ, रैनि सब बिघटी, उचटे सकल किवार —४०८।

उचटैं—क्रि. अ. [हि. उचटना] **उखड़ती है, भूमि से अलग होती हैं।**

उचड़ना—क्रि. अ. [सं. उच्चाटन, प्रा. उच्चाड़न] **(१) जुडी चीजों का अलग होना। (२) भागना, जाना।**

उचत—क्रि. अ. [हि. उचना] **उचकता है, ऊँचा उठता है।**

उचना—क्रि. अ. [सं. उच्च] **(१) ऊँचा या ऊपर उठना, उचकना। (२) उठना।**

क्रि. स.—**उचकाना, ऊपर उठाना।**

उचनि—संज्ञा स्त्री. [सं. उच्च] **उभाड़, उठान।** उ.—(क) परी दृष्टि कुच उचनि पिया की वह सुख कह्यौ न जाइ। (ख) चिबुक तर कठ श्री माल मोतीन छबि कुच उचनि हेमगिरि अतिहि लाजै।

उचरना—क्रि. स. [सं. उच्चारण] **बोलना, मुँह से शब्द निकालना।**

क्रि. अ.—**मुँह से शब्द निकलना।**

उचरी—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचरना] **उच्चारण की, मुँह से कही।** उ.—निज पुर आइ, राइ भीषम सौं, कही जो बातैं हरि उचरी— १–२६८।

उचर्‌यौ— क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचरना] **उच्चरित किया, कहा।** उ.—लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत, कियौ चतुरगुन गात। चढ़ि गिरिसिखर सब्द इक उचर्‌यौ, गगन उठ्यौ आघात—९–७४।

उचाइ—क्रि. स. [सं. उच्च+करण, हि. उचाना] **(१) ऊँचा करके, उठाकर, ऊपर करके।** उ.—(क) सुनौ किन कनकपुरी के राइ। हौ बुधि-बल-छल करि हारी, लख्यौ न सीस उचाइ—९–७५। (ख) बाँह उचाइ कालिंह की नाइ धौरी धेनु बुलावहु—१०–१७६। **(२) उठाकर, उठाना।** उ.—दरकि कंचुक, तरकि

माला, रही धरणी जाइ। सूर प्रभु करि निरखि करुना, तुरत लई उचाइ।

उचाई—क्रि. स. [सं उच्च+करण] उठा लेना, उखाड़ लेना। उ.—बलि कह्यौ, बिलंब अब नैकु नहि कीजिए, मंदराचल अचल चले धाई। दोउ इक मंत्र ह्वै जाइ पहुँचे तहाँ, कह्यौ, अब लीजिये इहि उचाई—८-८।

उचाए—क्रि. स. [हि. उचाना] उठाया, उठाकर खड़ा किया, गिरे से उठाया। उ.—तब परे मुरछाइ धरनी काम करे अकाजु। सखिन तब भुज गहि उचाए कहा बावरे होत—२२६०।

उचाट—वि. [सं उच्चाट] उदास, विरक्त, अनमना। उ —चितै मद मुसुकाय कै री जिय करि लेय उचाट—२४१३।

संज्ञा पुं.—मन का न लगना, विरक्ति, उदासीनता।

उचाटन—संज्ञा पुं. [स. उच्चाटन] (१) जुड़ी वस्तु को अलग करना। (२) चित्त को किसी ओर से हटाना। (३) अनमनापन, विरक्ति, उदासीनता।

उचाटना—क्रि. स. [सं. उच्चाटन] चित्त को किसी ओर से हटाना।

उचाटी—संज्ञा पुं. [सं. उच्चाट] अनमनापन, विरक्ति, उदासीनता।

उचाटू—वि. [हि. उचाट] जिसका मन उदास हो, अनमना।

उचाड़ना—क्रि. स. [हि. उचड़ना] उखाड़ना, अलग करना।

उचाढ़ी—वि. [सं उच्चाट, हि. उचाटी] उचाट, उदासीन, अनमनी, विरक्त। उ.—सखी संग की निरखति यह छबि भई ब्याकुल मन्मथ की डाढी। सूरदास प्रभु के रस-बस सब, भवन-काज तै भई उचाढी—७२६।

उचाना—क्रि. स. [सं. उच्च+करण] (१) ऊचा करना, ऊपर उठाना। (२) गिरे से उठाना।

उचायौ—वि. [सं. उच्च+करण, हि. उचाना] ऊँचा, उठा हुआ। उ.—इन्द्र-हाथ ऊपर रहि गयौ। तिन कह्यौ, दई कहा यह भयौ। कह्यौ सुरनि तुम रिषिहि सतायौ। तातै कर रहि गयौ उचायौ—९-३।

उचार—संज्ञा पुं. [स. उच्चार] बोलना, कथन।

क्रि. स.—[हि. उचारना] उच्चारण करके, कहकर। उ.—दो हकार उचार थाको रहे काढ़त प्रान—सा. ५७।

उचारत—क्रि. स. [स. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण करते हैं, कहते हैं। उ.—तात-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत—९-३९।

उचारा—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण किया, कहा, बोला। उ.—(क) नृपति कछू नहि बचन उचारा—६-४। (ख) छीरसमुद्र-मध्य तै यौं हरि दीरघ बचन उचारा-१०-४।

उचारन—क्रि. स. [स. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण करना। उ. विप्र लगे धुनि बेद, जुवतिनि मंगल गाए—९-२४।

उचारना—क्रि. स. [स. उच्चारण] उच्चारण करना, बोलना।

क्रि. स. [स. उच्चारन] उखाड़ना, नोचना।

उचारि—क्रि. स. [स. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण करके, मुँह से शब्द निकाल कर, बोलकर। उ.—तब अर्जुन नैननि जल डारि। राजा सौं कह्यौ-बचन उचारि—१-२८६।

उचारी—क्रि. स. [स. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण की, कही, मुँह से निकाली। उ.—(क) अधिक कष्ट मोहि परयौ लोक मै, जब यह बात उचारी। सूरदास-प्रभु हँसत कहा है, मेटौ बिपति हमारी—१-१७३। (ख) पकरि लियो छन माँझ असुर बल डारयो नखन बिदारी। रुधिर पान करि माल आँत-धरि जय जय शब्द उचारी। (ग) सूर प्रभु निरखि दण्डवत सबहिनि कियौ, सुर रिषिन सबनि अस्तुति उचारी—४-६।

क्रि. स. [सं. उच्चाटन, हि. उचारना] उखाड़ी, नोच ली। उ.—रिषी क्रोध करि जटा उचारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी।

उचारे—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण किये, कहे। उ.—सूर प्रभु अगम-महिमा न कछु कहि परत, सिद्ध गंधर्ब जै जै उचारे—६-१६३।

उचार--क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण करें, कहें। उ.---हाँसी मैं कोउ नाम उचारैं। हरि जू ताकौ सत्य बिचारैं।...... ..। जो जो मुख हरिनाम उचारै--६-४।

उचारौ—क्रि. स. [सं. उच्चारण, हि. उचारना] उच्चारण करूँ, कहूँ। उ.-रंक रावन, कहा ऽतंक तेरौ इतौ, दोउ कर जोरि बिनती उचारौ—९-१२६।

उचार्यौ—क्रि. स. भूत. [सं. उच्चारण, हि उचारना] उच्चारण किया, कहा। उ.—जैसे कर्म, लहौ फल तैसे, तिनका तोरि उचार्यौ—१-३३६।

उचालना—क्रि. स. [हि. उचाड़ना, उचारना] उखाड़ना, नोचना।

उचि--क्रि. अ. स्त्री. [हि. उचना] उचक कर, ऊँची उठकर।

उचित—वि. [सं. औचित्य] योग्य, ठीक।

उचै—क्रि. स. [हि. उचना] ऊँचा करके, उठाकर।

उचौहा—वि. पु. [हि. ऊँचा+औहाँ (प्रत्य.)] ऊँचा उठा हुआ, उभड़ा हुआ।

उचौहैं—वि. [हि. ऊँचा+औहो (प्रत्य.)] ऊँचे, उभरे हुए।

उच्च—वि. [सं.] (१) ऊँचा। (२) श्रेष्ठ, महान, उत्तम।

उच्चरण—संज्ञा पु. [सं.] बोलना, शब्द निकलना।

उच्चतम—वि. [सं] (१) सबसे ऊँचा। (२) सबसे श्रेष्ठ।

उच्चता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ऊँचाई। (२) श्रेष्ठता, बड़ाई। (३) उत्तमता, अच्छाई।

उच्चरतौ—क्रि. स. [हि. उच्चरना] उच्चारण करता, बोलता, कहता। उ.-साधु-सील सद्रूप पुरुष कौ, अपजस बहु उच्चरतौ—१-२०३।

उच्चरना—क्रि. स. [सं. उच्चारण] बोलना, कहना।

उच्चरी—क्रि. स. [हिं. उच्चरना] उच्चारण की, कही। उ.—जज्ञ पुरुष बानी उच्चरी—४-५।

उच्चरै—क्रि. स. [हि. उच्चरना] उच्चारण करे, कहे, बोले। उ.—ज्यौं-त्यौं कोउ हरि-नाम उच्चरै। निस्चय करि सो तरै पै तरै—६-४।

उच्चरौं—क्रि. स. [हिं. उच्चरना] उच्चारण करूँ, कहूँ। उ.—अब मैं यहै बिनै उच्चरौं। जो कछु आज्ञा होइ सो करौं—४-१२।

उच्चरौ—क्रि. स. [हि. उच्चरना] उच्चारण करो, कहो, बोलो। उ.—रामहि राम सदा उच्चरौ—७-२।

उच्चर्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. उच्चरना] उच्चारण किया, बोला। उ. —पुनि सो सुरुचि कैं चरननि पर्यौ। तासौं बचन मधुर उच्चर्यौ—४-९।

उच्चाट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नोचना। (२) विरक्ति, अनमनापन।

उच्चाटन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अलग करना। (२) नोचना। (३) चित्त को हटाना। (४) विरक्ति, अनमनापन।

उच्चार—क्रि. स. [हि. उच्चारना] बोलना, कहना, उच्चारण करके, मुँह से बोलकर। उ.—अंत औसर अरध-नाम-उच्चार करि सुमत गज ग्राह तैं तुम छुड़ायौ—१-११६।

उच्चारण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बोलने की क्रिया। (२) बोलने का ढंग।

उच्चारना—क्रि.स. [सं. उच्चारण] उच्चारण करना, बोलना।

उच्चारित—वि. [सं.] बोला या कहा हुआ।

उच्चारी—क्रि. स. स्त्री. [हि. उच्चारना] उच्चारण की, मुँह से बोली, कही। उ.—तब कुंती बिनती उच्चारी—१-२८१।

उच्चारे—क्रि. स. [हि. उच्चारना] उच्चारण किये, बोले, वर्णित किये, बखाने। उ.—दोउ जन्म ज्यौं हरि उद्धारे। सो तौ मैं तुमसौं उच्चारे—१०-२।

उच्चारै—क्रि. स. [हि. उच्चारना] उच्चारण करें, बोलें, कहें। उ—हरि-हरि नाम सदा उच्चारै—७-२।

उच्चार्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. उच्चारना] उच्चारण किया, बोला, कहा। उ.—विप्रनि जज्ञ बहुरि बिस्तार्यौ। बेद भली बिधि सौ उच्चार्यौ—४-५।

उच्चैःश्रवा—संज्ञा पुं. [सं.] एक सुन्दर घोड़ा जो समुद्र के चौदह रत्नों में था। इसके कान खड़े और मुँह सात थे। इन्द्र इसका अधिकारी है। उ.—निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैःश्रवा के पोर—१०उ.—३-६।

उच्छन्न—वि. [सं.] दबा हुआ, लुप्त।

उच्छरना, उच्छलना—क्रि. अ. [हि. उछरना, उछलना] उछलना, कूदना।

उच्छलित—क्रि. अ. [हि. उच्छलना] छलकता हुआ, उमड़ता हुआ। उ.—कुसल अंग, पुलकित बचन, गद्गद् मनहि मन सुख पाइ। प्रेमघट उच्छलित ह्वै है नैन अंस बहाइ—२४८६।

उच्छव— सज्ञा पुं. [सं. उत्सव, प्रा. उच्छव] उत्साह।

उच्छवसित—वि. [सं.] (१) साँस से युक्त। (२) खिला हुआ।

उच्छवासित—वि. [सं.] (१) साँस से पूर्ण। (२) जीवित। (३) फूला हुआ, विकसित।

उच्छवास—सज्ञा पुं. [सं.] (१) ऊपर खींची हुई साँस। (२) साँस।

उच्छाव—संज्ञा पुं. [सं. उत्साह, प्रा. उच्छाह] (१) उत्साह, उमंग। (२) धूमधाम।

उच्छास—संज्ञा पुं. [सं. उच्छवास] साँस।

उच्छाह—संज्ञा पुं. [सं. उत्साह] उमंग।

उच्छिन्न—वि. [सं.] (१) कटा हुआ। (२) तोडा या उखाडा हुआ। (३) नष्ट, निर्मूल।

उच्छिष्ट—वि. [सं.] (१) जूठा। (२) दूसरे का उपयोग किया हुआ।

संज्ञा पुं.—(१) जूठी चीज। (२) मधु, शहद।

उच्छृंखल—वि. [स.] (१) जो क्रम से न हो। (२) मनमाना काम करनेवाला, निरंकुश। (३) किसी की परवाह न करनेवाला, उद्दंड।

उच्छेद,उच्छेदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खंडन। (२) नाश।

उछंग—संज्ञा पुं. [सं. उत्सग, प्रा. उच्छंग] (१) गोद, क्रोड, कोरा। उ.—(क) लै उछंग उपसंग हुतासन, 'निहकलंक रघुराई।' लई बिमान चढाइ जानकी, कोटि मदन छबि छाई—६-१६२। (ख) बंधन छोरि नंद बालक को लै उछंग करि लीन्हो। (ग) बालक लियौ उछंग दुष्टमति हरषित अस्तन पान कराई—१०-५०। (२) हृदय।

मुहा.—उछंग लई—छाती से लगा लिया, आलिंगन किया। उ.—सूर स्याम ज्यौं उछंग लई मोहि, त्यों मैं हूँ हँसि भेटौंगी।

उछँगना—संज्ञा पुं. [हि. उछंग] गोद। उ.—धूसर धूरि दुहूँ तन मंडित, मातु जसोदा लेति उछंगना—१० ११३।

उछंगि—संज्ञा पुं. [हिं. उछंग] (१) गोद। (२) हृदय।

मुहा.—उछगि लेई— छाती से लगाया। उ.—स्याम सकुच प्यारी उर जानी। उछंगि लेई बाम भुज भरिकै बार-बार कहि बानी-१६०१।

उछकना क्रि अ. [हि. उचकना, उभकना=चौंकना] चौकना, चेत में आना।

उछकै—क्रि. अ. [हि. उछकना] चौके, चेत में आये।

उछरना—क्रि अ. [हि. उछलना] उछलना, कूदना।

उछरत—क्रि. अ. [सं उच्छलन, हि. उछलना] उछलता है, ऊपर उठता और गिरता है। उ.—उछरत सिन्धु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ—१०-६४।

उछरि—क्रि. अ. [सं. उच्छलन, हि. उछ ना] उछलकर। उ —स्रोनित छिछ उछरि आकासहि, गज-बाजिनि सिर लागि—६-१५७।

उछरैं—क्रि. अ. [हिं. उछलना] उभडते हैं, चिह्न पडते हैं, उछलते हैं।

उछलना—क्रि. अ. [सं. उच्छलन] (१) नीचे-ऊपर उठना। (२) कूदना। (३) प्रसन्न होना। (४) उभडना। (५) तरना, उतराना।

उछलि—क्रि. अ. [स. उछलना] उछलकर, वेग से ऊपर उठ और गिरकर। उ.—आनन्द-मगन धेनु स्रवैं थनु पय-फेनु, उमँग्यौ जमुन-जल उछलि लहर के–१०-३०।

उछलित—क्रि. अ. [हि. उछलना] उछलता है, छलकता हुआ। उ.—स्याम रस घट पूरि उछलित बहुरि धरयौ सँभारि–१२१७।

उछलै—क्रि. अ. [हि. उछलना] (१) उछले, कूदे। (२) उतराये, तैरे।

उछल्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. उछलना] ऊपर-नीचे हुआ, उठा-गिरा। उ.-उमंगि आनंद-सिधु उछल्यौ स्याम के अभिलाष–पृ. ३४३ (२२)

उछाँगे—संज्ञा पुं. [हि. छलाँग] छलाँग, उछाल । उ.—लै बसुदेव धँसे दह सूधे, सकल देव अनुरागे। जानु, जंघ, कटि, ग्रीव, नासिका, तब लियौ स्याम उछाँगे । चरन पसारि परसी कालिंदी, तरवा नीर तियागे—१०-४ ।

उछाँटना—क्रि. स. [सं. उच्चाटन, हिं. उचाटना] उदासीन या विरक्त करना ।

क्रि. स. [हि. छाँटना] छाँटना, चुनना ।

उछार—संज्ञा पुं. [हि. उछाल] (१) उछालने की क्रिया । (२) ऊँचाई जहाँ तक उछला या उछाला जाय ।(३) छींटा, उछलती हुई बूँद ।

उछारना—क्रि. स. [हि. उछालना [उछालना, ऊपर फेंकना ।

उछाल—संज्ञा स्त्री.[स.उच्छाल] (१) उछलने की क्रिया । (२) कुदाना, छलाँग । (३) ऊँचाई जहाँ तक उछला जाय ।

उछालना—क्रि. स. [सं.उच्छालन](१) ऊपर फेंकना ।(२) प्रकट या प्रकाशित करना ।

उछाला—संज्ञा पुं. [हि. उछाल] जोश, उबाल ।

उछाह—संज्ञा पुं. [स. उत्साह, प्रा. उच्छाह] (१) उमंग, हर्ष । (२) उत्सव, धूमधाम । (३) उत्कंठा,लालसा ।

उछाही—वि. [हि. उछाह] उत्साहित, आनंदित ।

उछाहु—संज्ञा पुं. [हि. उछाह] (१) उत्साह,उमंग, हर्ष । उ.–उरनि उरनि वै परत आनि कै जोधा परम उछाहु —२८२६ ।

उछाहू—संज्ञा पु०. [हि. उछाह] (१) हर्ष, प्रसन्नता । (२) उत्सव, धूमधाम । (३) इच्छा ।

उछिन्न—वि, [सं. उच्छिन्न] (१) कटा हुआ । (२) नष्ट ।

उछिष्ट—वि. [सं. उच्छिष्ट] (१) जूठा । (२) उपयोग में लाया हुआ, प्रयुक्त ।

उछीनना—क्रि. स. [सं. उच्छिन्न] उखाड़ना, नष्ट करना ।

उछेद—संज्ञा पुं. [सं उच्छेद] नाश, विरोध । उ.—जय अरु बिजय कर्म कह कीन्हौ, ब्रह्म सराप दिवायौ । असुर-जोनि ता ऊपर दीन्ही । धर्म-उछेद करायौ —१-१०४ ।

उछेद—संज्ञा.पुं. [सं.पुं उच्छेद] (१) उखाड़ने की क्रिया । (२) नाश ।

उजट—संज्ञा पुं. [सं.उटज] पर्णकुटी, झोपड़ी ।

उजड्ड—वि. [सं. उद्=बहुत + जड=मूर्ख अथवा सं. उद्दंड] (१) जंगली, गँवार, वज्र मूर्ख । (२) जो मनमानी करे, निरंकुश ।

उजड़ना—क्रि. अ. [हि. जडना=जमना] (१) नष्ट होना । (२) तितर-बितर होना । (३) निर्जन होजाना, बसा न रहना।

उजड़ा—वि. [हि.उजडना] (१) तितर-बितर, गिरा-गिराया । । (२) नष्ट ।

उजर—[हि. उजड] उजाड़,ध्वस्त । उ–आय क्रूरलै चले स्याम को हित नाही कोउ हरि कै । " ।सूरदास प्रभु सुख के दाता गोकुल चले उजर कै—२५२९ ।

उजरउ—क्रि अ. [हि. उजड़ना] उजड़ जाय, नष्ट हो जाय ।

उजरा—वि. [हि. उजला] (१) सफेद । (२) निर्मल, स्वच्छ ।

उजराइ—क्रि. स. [हिं. उजराना] स्वच्छ करके, साफ करके।

उजराई—संज्ञा स्त्री. [सं. उज्ज्वल हि. उज्जर,] (१) सफेदी । (२) स्वच्छता, कांति ।

उजराना—क्रि. स. [सं. उज्ज्वल] स्वच्छ करना, उज्ज्वल करना ।

उजराय-क्रि.स. [सं.उज्ज्वल] स्वच्छ करके,निर्मल कराकर ।

उजरे—क्रि. अ. [हि. उजड़ना] नष्ट हुए, उजड गये ।

उजला—वि. [स. उज्ज्वल, प्रा. उज्ज्वल] (१) सफेद' श्वेत । (२) निर्मल, स्वच्छ ।

उजवास—संज्ञा पुं. [स. उद्यास=प्रयत्न] चेष्टा, तैयारी ।

उजागर—वि. [सं. उद्=ऊपर, अच्छी तरह+जागर = जागना, जलना, प्रकाशित होना] (१) कीर्तियुक्त, प्रकाशित, दीप्तिमान, जगमगाता हुआ । उ.—(क) क्रिया-कर्म करतहु निसि-बासर भक्ति कौ पंथ उजागर —१-६१ । (२) वंशको गौरवान्वित करनेवाला । (क) सूर धन्य जदुबंस उजागर धन्य ध्वनि घुमरि रह्यो—२६१६ । (ख) इनके कुल ऐसी चलि आई

सदा उजागर बंस—३०४९। (३) प्रसिद्ध, विख्यात। उ.—(क) जाबवान जो बली उजागर सिंह मारि मनि लीन्ही। (ख) दिन द्वै घाट रोकि जमुना को जुवतिन में तुम भए उजागर—११२३। (ड) चतुर, कुशल, दक्ष। उ.—(क) झूमत नैन जम्हात बारही रति-संग्राम उजागर हो—२१४०। (ख) कहियौ मधुप सँदेस सुचित दै मधुवन स्याम उजागर—२९८०।

उजागरि—वि. स्त्री. [हिं. उजागरी] प्रसिद्ध, विख्यात।

उजाड़—संज्ञा पुं. [हि० उजड़ना] (१) उजड़ा हुआ स्थान। (२) निर्जन स्थान। (३) जंगल।

वि.—(१) नष्ट, ध्वस्त, गिरा हुआ। (२) जन-रहित, जो आबाद न हो।

उजाड़ना—क्रि. स. [हिं. उजाड़ना] (१) बिखराना, तितर-बितर करना। (२) नष्ट करना, खोद फेंकना। (३) बिगाड़ना, हानि पहुँचाना।

उजान—क्रि. वि. [सं. उद्=ऊपर+यान] धारा से उलटी अर्थात् चढ़ाव की ओर।

उजार—संज्ञा पुं. [हिं. उजाड़] (१) उजाड़ स्थान। (२) निर्जन स्थान।

वि.—उजड़ा हुआ।

उजारा—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] उजाला, प्रकाश।

वि.—प्रकाशमान, कांतियुक्त।

उजारि—क्रि. स. [हिं. उजाड़ना] (१) उखाड़कर, खोद-खाद कर। उ.—भली कही यह बात कन्ह ईं, अतिहि सघन अरन्य उजारि—४७२। (२) ध्वस्त या ध्वंस करके। उ.—जो मोरौ नहि फूल पठावहु तौ ब्रज देहु उजारि—५२६।

उजारी—क्रि स. [हिं. उजाड़ना] नष्ट की, खोद डाली, उखाड दी।

उजारौ—संज्ञा पुं. [हि उजाला] उजाला, प्रकाश।

वि.—प्रकाशमान, कांतियुक्त। उ.—हरि के गर्भ-बास जननी कौ बदन उजारौ लाग्यौ। मानहु सरद-चंद्रमा प्रगट्यौ, सोच-तिमिर तन भाग्यौ—१०-४।

क्रि. स. भूत. [हिं.उजाड़ना] नष्ट किया, बिगाड़ा। उ.—सूरदास-प्रभु सबहिनि प्यारौ। ताहि डसन ! जानौ हिय उजारौ—७६२।

उजारयौ—क्रि. स. भूत [हि. उजाड़ना] (१) उजाड़ डाला, ध्वस्त कर दिया। उ.—तुरतहि गमन कियौ सागर तैं, बीचहि बाग उजारयौ—९-१०३। (२) प्रकट हुआ, प्रकाशित किया। उ.—(क) दाऊ जू, कहि स्याम पुकारयौ। नीलांबर कर ऐंचि लियौ हरि, मनु बादर तैं चंद उजारयौ—४०७। (ख) तब हँसि चितए स्याम सेज तैं बदन उघारयौ। मानहुँ पयनिधि मथत, फेन फटि चंद उजारयौ—४३१।

वि. [हि. उजाला] प्रकाशमान, कांतियुक्त। उ.—हरि के गर्भ बास जननी कौ बदन उजारयौ (उजारौ) लाग्यौ। मानहुँ सरद-चंद्रमा प्रगट्यौ, सोच-तिमिर तन भाग्यौ—१०-४।

उजालना—क्रि. स. [सं. उज्ज्वलन] (१) प्रकाशित करना। (२) चमकाना, स्वच्छ करना।

उजाला—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] (१) प्रकाश, चाँदना। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।

वि.—प्रकाशमान।

उजाली—संज्ञा. स्त्री. [हि. उजाला] चाँदनी, चंद्रिका।

उजास—संज्ञा पुं. [हिं. उजाला+स (प्रत्य.)] प्रकाश, उजाला, चमक।

उजियर—वि. [सं. उज्ज्वल] उजला, सफेद।

उजियरिया—संज्ञा स्त्री [सं. उज्ज्वल. हि. उजियारी] चाँदनी, चंद्रिका। उ.—लै पौढ़ी आँगन हीं सुत कौं छिटकि रही आछी उजियरिया—१०-२४६।

उजियार—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] उजाला, प्रकाश।

वि.—(१) दीप्तिमान, प्रकाशयुक्त। (२) चतुर, बुद्धिमान।

उजियारना—क्रि. स. [हि. उजियारा] (१) प्रकाशित करना। (२) जलाना।

उजियारा—संज्ञा पुं [सं उज्ज्वल] (१) प्रकाश, चाँदना। (२) वंश को गौरवान्वित करनेवाला पुरुष।

वि. (१) प्रकाशमय। (२) कांतियुक्त, दीप्तिमान।

उजियारी—संज्ञा स्त्री. [हि. पु. उजियारा] (१) चंद्रिका, चाँदनी। उ.—कहरि-नख उर पर रुरै, सुठि

सोभाकारी। मनौ स्याम घन मध्य मैं नव ससि उजियारे—१०-१३४। (२) प्रकाश, उजाला, रोशनी। उ.—बदन देखि बिधु-बुधि सकात मन, नैन कंज कुंडल उजियारी—१०-१९६। (३) वंश को उज्ज्वल करने वाली, सती-साध्वी स्त्री। उ.—बलिहारी वा बाँस बंस की बंसी-सी सुकुमारी। ...। बलिहारी वा कुंज-जातकी उपजी जगत उजियारी—३४१२।

वि.—प्रकाशयुक्त, उजला। उ.—(क) कबहुँक रतनमहल चित्रसारी सरदनिसा उजियारी। बैठे जनकसुता सँग बिलसत मधुर केलि मनुहारी। (ख) भूषन सार 'सूर' सम सीकर सोभा उड़त अमल उजियारी—सा. ५१।

उजियार—संज्ञा. पु [हि. उजियाला] उज्ज्वल या गौरवान्वित करने वाला पुरुष। उ.—माखन-रोटी ताती-ताती लेहु कन्हैया बारे। मन मैं रुचि उपजावै, भावै, त्रिभुवन के उजियारे—४१६।

उजियारौ—संज्ञा पु. [हि. उजाला] प्रकाश, उजाला। उ.—अपुनपौ आपुन हीं मैं पायौ। सब्दहि सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ—४-१३।

उजियाला—संज्ञा. पुं. [हि. उजाला] प्रकाश, उजाला।

उजीता—वि. [सं. उद्योत, प्रा. उज्जोत] प्रकाशमान्।

संज्ञा पुं.—प्रकाश, चाँदना।

उजीर—संज्ञा पु [अ. वजीर] मंत्री, अमात्य, दीवान। उ.—पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ, धर्म-सुधन लुट्यौ—१-६४।

उजेर—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] उजाला, प्रकाश।

उजेरत—क्रि. अ. [हि. उजियारा] उजेला फैला रही है, प्रकाशित है, चमक रही है। उ.—पुनि कहि उठी जसोदा मैया, उठहु कान्ह रवि-किरनि उजेरत—४०५।

उजेरना—क्रि. स. [हि. उजाला, उजियारा] प्रकाशित करना, प्रकाश फैलाना।

उजेरा, उजेरो—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] उजाला, प्रकाश।

वि.—प्रकाशयुक्त।

उजेला—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल] प्रकाश, चाँदना।

वि.—प्रकाशमान।

उज्जल—वि. [सं. उज्ज्वल] (१) दीप्तमान, प्रकाशमान। (२) शुभ्र, विशद, स्वच्छ, निर्मल। (३) श्वेत, सफेद। उ—हँस उज्ज्ल, पंख निर्मल, अंग मलि-मलि न्हाहि—१-३३८।

क्रि. वि. [सं. उद्=ऊपर+जल=पानी] चढ़ाव की ओर, उजान।

उज्जर—[सं. उज्ज्वल] (१) प्रकाशयुक्त। (२) स्वच्छ, निर्मल।

उज्जागरी—वि. स्त्री. [हि. उजागरी] उज्ज्वल या गौरवान्वित करने वाली। उ.—मध्य ब्रजनागरी रूपरस आगरी घोष उज्जागरी स्याम प्यारी—१२६०।

उज्झड़—वि. [सं. उद्=बहुत+जड=मूर्ख] झक्की, मूर्ख।

उज्यारा—संज्ञा पुं. [हि. उजाला] प्रकाश, चाँदना।

उज्यारी—संज्ञा स्त्री. [हि. उजियारा] प्रकाश, कांति, दीप्ति, प्रभा। उ.—गरजत मेघ, महा डर लागत, बीच बढ़ी जमुना जल-कारी। तातैं यहै सोच जिय मेरैं, क्यौं करिहै ससि-बदन-उज्यारी—१०-११।

उज्यारे—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल, हि. उजियारा] उजाला, प्रकाश। उ.—प्रात भयौ उठि देखिऐ, रवि किरनि उज्यारे—४३६।

उज्यारौ—संज्ञा पुं. [सं. उज्ज्वल, हि. उजाला] प्रकाश, चाँदना, रोशनी। उ.—खेलत आनि सँचौ उर अंतर, दै पलकनि कौ तारौ री। मोहिं भ्रम भयौ सखी, उर अपनैं, चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री—१०-१३५।

उज्यास—संज्ञा पुं. [हि. उजास] प्रकाश, उजाला।

उज्वल—वि. [सं. उज्ज्वल] श्वेत, सफेद। उ.—खारिक, दाख चिरौंजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम—१०-२१२।

उज्ज्वल—वि. [सं.] (१) प्रकाशमान। (२) स्वच्छ, निर्मल। (३) श्वेत, सफेद।

उज्ज्वलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कांति, चमक। (२) स्वच्छता। (३) सफेदी।

उज्ज्वलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश। (२) स्वच्छ करने की क्रिया।

उज्ज्वलित—वि. [सं.] (१) प्रकाशित किया हुआ। (२) स्वच्छ किया हुआ।

उझकत—क्रि. अ. [हि. उचकना, उझकना] (१) उचकते-कूदते हुए, जाते-जाते। उ.—बरज्यौ नहि मानत उझकत फिरत हौ कान्ह घर घर—१६४३।

उझकति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उचकना] देखने के लिए ऊँची होती है, उचककर। उ.-द्रुम-बेली पूँछति सब उझकति देखति ताल तमाल—१८२७।

उझकना—क्रि. अ. [हिं. उचकना] (१) उछलना, कूदना,। (२) उभडना, उमडना। (३) झाँकने के लिए सिर बाहर निकालना। (४) चौकना, सजग होना।

उझकि—क्रि. अ. [हि. उचकना, उझकना] (१) उचक कर, कूद कर। उ.—(क) जैसे केहरि उझकि कूप-जल, देखत अपनी प्रति—१-३००। (ख) आलंबित जु पृष्ठ बल सुन्दर, परसपरहि चितवत हरि-राम। झाँकि-उझकि विहँसत दोऊ सुत, प्रेम-मगन भइ इकटक जाम—१०-१५७। (ग) जैसे केहरि उझकि कूप-जल देखे आप मरत। (२) ऊपर उठकर, उमड़ कर। (३) देखने के लिए सिर उठाकर, झाँकने के लिए सिर बाहर निकालकर। उ.—(क) जहँ तहँ उझकि झरोखा झाँकति जनक-नगर की नार। चितवनि कृपाराम अवलोकत, दीन्हौ सुख जो अपार। (ख) सूने भवन अकेली मैंहा नीकै उझकि निहारयौ। मोते चूक परी मै जानी, तातैं मोहि बिसारयौ। (ग) फिरि फिरि उझकि झाँकत बाल—सा. ३४।

उझलना—क्रि. स. [सं. उज्झरण] (द्रव पदार्थ को) ऊपर से गिराना या बहाना।

क्रि. अ.—उभडना, बढ़ना।

उझकुन—संज्ञा. पुं. [हि. उचकन] उचकने की क्रिया या भाव।

उझकै—क्रि. अ. [हि. उचकना, उझकना] उछले-कूदे।

उझरना—क्रि. स. [सं. उत्+सरण] ऊपर करना, ऊपर उठाना, ऊपर खिसकाना।

उझाँकना—क्रि. स. [हि. झाँकना] उचककर देखना।

उटंग—वि.. [सं. उत्तुंग] छोटा कपड़ा जो पहनने पर ऊँचा-ऊँचा लगे।

उटकत—क्रि. स. [हि. उटकना] अनुमान करता है, अटकल लगाता है।

उटकना—क्रि. स. [सं. अट्=घूमना, बार-बार+कलन = गिनना या उत्कलन] अनुमान करना।

उटज—संज्ञा पुं. [सं.] पर्णकुटी, झोपडी।

उटँगना—क्रि. अ. [स. उत्थ+अग] (१) ऊँची या ऊपर उठी हुई वस्तु का सहारा लेना, टेक लगाना। (२) पड जाना, लेट रहना।

उठइ—क्रि. अ. [हि. उठना] उठती है, ऊपर की ओर जाती है।

उठत—क्रि. अ. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान, हि. उठना] (१) उठते (ही), उठता (है)। उ.—बैठत-उठत सेज-सोवत मै कस-डरनि अकुलात—१०-१२। (२) बनता है, प्रकट होता है। उ.—बारि मै ज्यौं उठत बुदबुद लागि बाइ बिलाइ—१-३१६। (३) उत्पन्न होता है, (सुख भाव जैसे दुख) जागता है। उ.—भानुसुत-हित-सत्रु-पित लागत उठत दुख फेर—सा. ३३।

यौ.—उठत (गाइ)—[संयो. क्रि.]—(गा) उठती है, (गाने) लगती है। उ.—एक परस्पर देत बधाई, एक उठत हँसि गाइ—१०-२०।

(२) जागते है। उ.—नंद कौ लाल उठत जब सोई। निरखि मुखारबिंद की सोभा, कहि, काकैं मन धीरज होइ—१०-२१०।

उठति—क्रि. अ. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान, हि. उठना] ऊँची होती है, ऊँचाई तक जाती हैं। उ.—या संसार-समुद्र, मोह-जल, तृष्ना-तरंग उठति अति भारी—१-२१२।

उठन—क्रि. अ. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान, हि, उठाना] (१) उठना, खडा होना। (२) सोकर जागना। उ.—आनि मथानी दह्यौ बिलोवौ जौ लगि लालन उठन न पावै। जागत ही उठि रारि करत है, नहि मानै जौ इंद्र मनावै—१०-२३१।

उठना—क्रि. अ. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान] (१) खड़ा होना, ऊँचा होगा। (२) ऊँचाई तक पहुँचना। (३) ऊपर की ओर बढ़ना। (४) उछलना, कूदना। (५) जागना। (६) उदय होना। (७) उत्पन्न होना। (८) सहसा आरंभ हो जाना। (९) तैयार हो जाना। (१०) अंक या चिन्ह उभड़ना।

उठहि—क्रि. अ. [हि. उठना] (१) उठना, उछलना-कूदना। (२) उत्पन्न होता है।

उठाइ—क्रि. स [हि. उठाना] उठाकर। उ.—तब हरि धरि बाराह-बपु, ल्याए पृथी उठाइ—३-११।

मुहा.—खड्ग उठाइ—मारने को तलवार उठाई, मारने को प्रस्तुत हुए। उ.—ताहि परीच्छित खड्ग उठाइ—१-२९०।

उठाई—क्रि. स. [हि. उठाना] उठाकर, हटाकर, अलग करके।

यौ.—सकै उठाई—उठा या हटा सके। उ.—कोपि अंगद कह्यौ, धरौं धर चरन मैं ताहि जो सकै कोऊ उठाई।—९-१३५।

(२) किसी गिरी हुई वस्तुको ऊपर उठाना। उ.—लकुट लिए कर टेकत जाई। कहत परस्पर लेहु उठाई—१०५८। (३) शिरोधार्य की, मानी। उ.—करै उपाय सो बिरथा जाई। नृप की आज्ञा लियो उठाई।

उठाए—क्रि. स. [हि. उठाना ('उठना' का स. रूप)] खड़ा किया। उ.—अमृत-गिरा बहु बरपि सूर-प्रभु, भुज गहि पार्थ उठाए—१-२९।

उठान—संज्ञा स्त्री. [सं. उत्थान, पा. उट्ठान] (१) उठने की क्रिया। (२) बाढ़। (३) आरंभ।

उठाना—क्रि. स. [हि. 'उठना' का सक्र.] (१) गिरी हुई वस्तु को खड़ा करना। (२) ऊपर ले जाना। (३) कुछ काल तक अपने ऊपर धारण करना। (४) उत्पन्न करना। (५) सहसा आरंभ करना। (६) हटाना, अलग करना। (७) जगाना। (८) प्रस्तुत या तैयार करना। (९) खर्च करना। (१०) स्वीकार करना, मानना।

उठाने—क्रि. अ. [हिं. उठना] उठा। उ.—को जानै केहि कारन प्यारी सो लप तुरत उठानें। चपला और बराह रस आखर आद देख झपटाने—सा. ७२।

उठायौ—क्रि. स. [हि. उठाना] (बोझ आदि) ले जाने के लिए उठाया, धारण किया। उ.—(क) दौना गिरि हनुमान उठायौ। संजीवनि कौ भेद न पायौ, तब सब सैल उठायौ—९-१५०। (ख) मंदराचल उपारत भयौ स्रम बहुत बहुरि लै चलन को जब उठायौ—८-८।

उठाव—संज्ञा पुं. [हिं. उठना] उठान।

उठावत—क्रि. स. [हि. उठाना] (१) उठाते या खड़ा करते हैं। उ.—गहे अँगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत। अरबराइ गिरि परत हैं, कर टेकि उठावत—१०-१२२। (२) नीचे से ऊपर ले जाता है। उ.—आलस सौं कर कौर उठावत, नैननि नींद झमकि रही भारी—१०-२२८।

उठावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. उठाना] (१) उठाती है, हाथ में लेती है। उ.—जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै—१०-१९१। (२) सहसा आरंभ करती है, अचानक उभाड़ती या छेड़ती है। उ.—अब समुझी मै बात सबन की झूठे ही यह बात उठावति—१२५०।

उठावहु—क्रि. स. [हि. उठाना] ऊँचा करो, उठाओ। उ.—ऐसै नहि रीझौ मै तुम सौ तटहीं बाहँ उठावहु—७९१।

उठावै—क्रि. स. [हिं. उठाना] (१) उठा कर बैठाती है, खड़ा करती है। (२) जगाती हैं। उ.—ह्याँ नागिनि सौं कहत कान्ह, अहि क्यौ न जगावै। बालक-बालक करति कहा, पति क्यौ न उठावै—५८९।

उठि—क्रि. अ. [हि. उठना] उठकर, खड़े होकर।

मुहा.—उठि धावै— दौड़ पड़ता है। उ.—लच्छागृह तैं काढ़ि कै पांडव गृह ल्यावै। जैसै मैया बच्छ कै सुमिरत उठि धावै—१-४।

उठिऐ—क्रि. अ. [हि. उठना] जागिए, बिस्तर त्यागिए। उ.—उठिऐ स्याम, कलेऊ कीजै—१०-२११।

उठिबे—क्रि. अ. [हि. उठना] ऊपर जाना, उड़ सकना।

उ. धनुष देखि खंजन गिरि डरपत उडि न सकत उठिबे अकुलावत—२३४६ ।

उठिहै—क्रि. अ. [हि. उठना] उठेगा, उठकर बैठेगा। उ.—सूर पतित तबहीं उठिहै, प्रभु, जब हँसि देहौ बीरा—१-१३४।

उठीं—क्रि. अ. बहु [हि. उठना] उठीं, खड़ी हुईं।
यौ.—उठीं गाइ—[संयो. क्रि] गाने लगीं, गाना शुरू किया। उ.—उठी सखी सब मंगल गाइ—१०-१४।

उठी—क्रि अ.स्त्री. [हि. उठाना] खड़ी हुई। उ.—उठी रोहिनी परम अनंदित हार-रतन लै आई—१० १८।

उठे—क्रि अ. [हि. उठना] (१) उठकर तैयार हुए। उ.—सुनत यह उठे जोधा रिसाई—६-१३५। (२) घिरे, घिर आये। उ.—उरज अनूप उठे चारो दिस सिवसुत बाहन षाइ—सा. ३७।

उठै—क्रि. अ. [हि. उठना] ऊँचा होता है, ऊँचाई तक जाता है। उ.—सूर सरद-ससि-बदन दिखाऐं, उठै लहर जलनिधि की—१-२१३।

उठैया—संज्ञा पुं. [हि. उठना] उठानेवाला।
यौ.—लिए उठैया—उठा लिया। उ.—बाम भुजा गिरि लिए उठैया—१०५६।

उठौ—क्रि.अ. [हि. उठना] जागो, बिस्तर छोड़ो। उ.—उठौ नंदलाल भयौ भिनुसार जग वत नंद की रानी—१० २०८।

उठ्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. उठना] उठा, खड़ा हुआ।
यौ.—बरि उठ्यौ—जल उठा। उ.—हरि नाम हरिनाकुस बिसारयौ, उठ्यौ बरि बरि बरि। प्रहलाद-हित जिहि असुर मारयौ, ताहि डरि डरि डरि—१-३०६।

उड़—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नक्षत्र, तारा। (२) पक्षी। (३) मल्लाह।

उड़प—संज्ञा पुं. [सं] (१) चंद्रमा। (२) नाव।
संज्ञा पुं. [हि. उड़ना] एक तरह का नाच।

उड़पति, उडराज—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

उड़गन—संज्ञा पुं. बहु [सं. उडु+गण (प्रत्य.)] तारों का समूह।

उड़त—क्रि. अ. [हि. उड़ना] (१) उड़ता हुआ। उ.—उड़त उड़त सुक पहुँच्यौ तहाँ—१-२२६ (२) फहराता है। उ.—कछुक अंग तैं उड़त पीतपट, उन्नत बाहु बिसाल—२७३। (३) हवा में गर्द आदि उड़ती है। उ.—(क) नितप्रति अलि जिमि गुंजत मनोहर उड़त जु प्रेम-पराग—२-१२। (ख) हरि जू की आरती बनी। ...। उड़त फूल उड़गन नभ अन्तर, अंजन घटा घनी—२-२८।

उड़ति—वि. स्त्री. [हि. उड़ना] उड़ती हुई। उ.—बाल-अवस्था मै तुम धाइ। उड़ति भँभीरी पकरी जाइ—३-५।

उड़न—संज्ञा स्त्री. [हि. उड़ना] उड़ने की क्रिया, उड़ान। उ.—जनु रवि गत संकुचित कमल जुग, निसि अलि उड़न न पावै—१०-६५।

उड़ना—क्रि. अ. [सं. उड्डयन] (१) पक्षियों का आकाश में इधर-उधर जाना। (२) हवा में निराधार फिरना (३) हवा में ऊपर उठना। (४) हवा में फैल जाना। (५) हवा में तितर-बितर हो जाना। (६) फहराना। (७) सवेग चलना। (८) कटकर दूर जा गिरना। (९) मिट जाना। (१०) बातों में भुलावा देना।

उड़पति—संज्ञा पुं. [सं. उडुपति] चंद्रमा। उ.—गयौ भानु मंद भयौ उडपति फूले तरुन तमाल—१०-२०६।

उड़सना—क्रि. अ. [देश.] नष्ट होना, खंडित होना।

उड़ाँक—वि. [हि. उड़ना] (१) उड़नेवाला। (२) जो उड़ सकता हो।

उड़ाइ—क्रि. अ. [हि. उड़ना] (१) हवा में निराधार उड़ती है। उ.—(क) सरवर नीर भरै, भरि उमडै, सूखे खेह उडाइ—१-२६५। (ख) हरि हरि कहत पाप पुनि जाइ। पवन लागि ज्यों रूह उड़ाइ—१२-३। (२) जाता रहना, दूर होना, नष्ट होना। उ.—ऊधो हरि बिनु ब्रजरिपु बहुरि जिये ...। उर ऊँचे उसाँस तृनावर्त तिहिं सुख सकल उड़ाइ दिए—३०७३।

उड़ाइए—क्रि. स. [हि. उड़ान] हवा में इधर-उधर फैलाइए।

उड़ाइक—संज्ञा पुं. [सं उड्डायक] पतंग (आदि) उड़ानेवाला।

उड़ाई—क्रि. स. [हि. उडाना] (१) उड़ने को प्रवृत्त की। उ.—तुरत गए नन्द-सदन कन्हाई। अंकम दै राधा

घर पठई, बादर जहँ तहँ दिए उडाई—६६२। (२) उडाकर,(आकाश में हवा द्वारा) उठाकर। उ.—तृनावर्त लै गयौ उडाई। आपुहि गिरयौ सिला पर आई—३९१।

उड़ाए—क्रि. स. [हि. उड़ाना] उडा दिये, उडने को प्रवृत्त किये। उ.—बरह-मुकुट कै निकट लसति लट, मधुप मनौ रुचि पाए। बिलसत सुधा जलज आनन पर उड़त न जात उडाए—४१७।

उड़ाऊँ—क्रि. स. [हि. उडाना] उड़ने के लिए प्रवृत्त करूँ। उ.—संभुकी सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपण, स्वास आकास बनचर उडाऊँ—६-१२६।

उड़ाऊ—वि. [हि. उडना] (१) उडने वाला। (२) बहुत खर्चीला।

उड़ात—क्रि. अ. [हि. उडना] उड़ जाता है, सवेग भागता है, भाग चलता है। उ.—विषया जात हरष्यौ गात। ऐसे अंध, जानि निधि लूटत, परतिय संग लपटात। बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत,करि करि जतन उड़ात—२-२४।

उड़ान—संज्ञा स्त्री. [हि. उडना] (१) उडने की क्रिया। (२) छलाँग फँदान। (३) एक दौड में पार की जानेवाली दूरी (४) कलाई, पहुँचा।

उड़ाना—क्रि. स. [हि. 'उड़ना' का सक.] (१) उड़ने में प्रवृत्त करना। (२) हवा में इधर उधर फैलाना। (३) झटके से काटकर अलग करना। (४) दौडाना।

उड़ानी—क्रि. अ. [हि. उड़ना] हवा में निराधार उड़ते फिरना। उ.—बोलत हँसत चपल बंदीजन मनहु धवला सोइ धूर उड़ानी—२३८३।

उड़ाने—क्रि. अ. [हि. उडना] उडे, आकाश में इधर उधर विहरण करने लगे। उ.—ये मधुकर रुचिपंकज लोभी ताहीते न उड़ाने—१३३४।

उड़ान्यौ—क्रि. अ. [सं. उड्डयन, हिं. उड़ना] उडा, उड़ गया। उ.—माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई—५४१।

उड़ाहीं—क्रि. स. [हिं. उडना] उडाते हैं, हवा में इधर उधर फैलाते हैं।

उड़ायक—वि. [हि. उड़ान+क (प्रत्य.)] उड़ानेवाला।

उड़ायौ—क्रि. स. भूत. [हि. उडाना] उडने को प्रवृत्त किया, उड़ाया। उ.—धावहु नन्द गोहारि लगौ किन, तेरौ सुत अँधवाह उड़ायौ—१०-७७।

उड़ावत—क्रि. स. [हि. उडाना] उछालते हैं, ठुकराकर उडाते है। उ—बाजत बेनु बिषान, सबै अपने रंग गावत। मुरली धुनि, गो-रंभ, चलत पग धूरि उडावत—४३७।

उड़ावन—क्रि. स. [हि. उड़ाना] उडने को प्रवृत्त करना। उ.—जहँ तहँ काग उड़ावन लागीं हरि आवत उड़ि जात नहीं—२९४६।

उड़ावै—क्रि. स. [हि. उड़ाना] हवा में उड़ाता है, उछालता है। उ. ससि सन्मुख जो धूरि उड़ावै उलटि ताहि कै मुख परै – १-२३४।

उड़ास—संज्ञा स्त्री. [हि. उड़न+स] उड़ने की चाह।
संज्ञा स्त्री. [सं. उद्वास] रहने का स्थान, महल।

उड़ासना—क्रि. स. [सं.उद्वासन] (१) बिछौना उठाना। (२) उजाड़ना, नष्ट करना। (३) बैठने या सोने में विघ्न डालना।

उड़ि—क्रि. अ. हि. उड़ना] उड़कर।

मुहा.—उड़ि खात—उड़ उड़कर काटता है, धर खाता है। उ.-जरति अगिनि मे ज्यों घृत नायो तनु जरि ह्वै है दाख। ता ऊपर लिखि जोग पठावत खाहु नीब तजि राख। सूरदास ऊधो की बतियाँ उड़ि-उड़ि बैठी खात। (२) अप्रिय लगताहै, सुहाता नहीं। (३) तेज चलकर।

मुहा.—उड़ि चले—सवेग भागे, सरपट दौड़े। उ.—असुर केतनहि को लग्यौ कलपन तुरंग गज उड़ि चले लागी बयारी—१०उ.-३१।

उड़िबे—क्रि. अ. [हि. उड़ना] उडने को, उडने के लिए। उ.—डरनि डोल डोलत हैं इहि बिधि निरखि भ्रुवनि सुनि बात। मानौ सूर सकात सरासन, उड़िबे कौं अकुलात—३६६।

उड़िबो, उड़िबौ—क्रि. अ. [हि. उड़ना] जाते रहना, गायब हो जाना। उ.—बार-बार श्रीपति कहैं, धीवर

नहि मानैं। मन प्रतीति नहि आवई, उड़िबो ही जानै—९४२।

संज्ञा स्त्र —उडने की किया। उ.—चलि सखि, तिहि सरोवर जाहि। '' '। देखि नीर जु छिलछिलौ जग समुझि कछु मन माहि। सूर क्यौ नहि चलै उड़ि तहँ, बहुरि उड़िबौ नाहि—१-३३८।

उड़ियै—क्रि. अ. [हि. उड़ना] उडकर, उड़ी-उडी, उड़ती हुई। उ.—उड़ियै उडा फिरति नैनन सँग फर फूटै ज्यौ आक रुई—१४३३।

उड़ी—सज्ञा स्त्री. [हि. उड़ना] कलाबाजी।

उडु—संज्ञा स्त्री. [स.] पानी।

उड़ेलना—क्रि. स. [सं. उद्धारण=निकालना अथवा उदीरण=फेंकना] (१) एक पात्र का तरल पदार्थ दूसरे में डालना। (२) तरल पदार्थ को फेकना।

उड़ैनी—संज्ञा स्त्री. [हि उड़ना] जुगुनू।

उड़ैहै—क्रि. अ. [हि उडना] (१)हवा में उड़ती फिरेगी। (२) हवा में निराधार फिरेगी। उ.—या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग गिध खैहैं। तीननि में तन कृमि, कै विष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहै—१-८६।

उड़ौहाँ—वि. [हि. उड़ना+औहाँ (प्रत्य).] उड़नेवाला।

उड़्यो—क्रि. अ. भूत. [हि उड़ना] उड़ा, उड गया। उ.—पौढे स्याम अकेले आँगन, लेत उड़्यौ आकास चढायौ—१०-७७।

उढ़कना—क्रि. अ. [हि. उढकन] (१) ठोकर खाना। (२) रुकना, ठहरना। (३) सहारा लेना।

उढ़काना—क्रि. स. [हि. उढ़कना] सहारे टेकना, भिड़ाना।

उढ़निया—संज्ञा स्त्री. [हि. ओढनी] ( ) ओढ़ने की वस्तु, ओढ़नी, उपरेनी, फरिया। (२) पीतांबर। उ.—पीत उढ़नियाँ कहाँ बिसारी। यह तौ लाल ढिगनि की औरै, है काहू की सारी—६६३।

उढ़रना—क्रि. अ. [सं. ऊढ़ा=विवाहिता] विवाहिता स्त्री का अन्य पुरुष के साथ निकल जाना।

उढ़ाऊँ—क्रि. स. [हि. ओढ़ाना, उढाना] कपडा ढकूँ, आच्छादित करूँ। उ.—पे मारे सिर पटिया पारे कंथा काहि उढ़ाऊँ—३४६६।

उढ़ाए—क्रि. स. [हि. ओढ़ाना] ढक दिया, कपड़े से ढक दिये गये। उ,—उपमा एक अभूत भई तब- जब जननी पट पीत उढ़ाए—१०-१०४।

उढ़ाना—क्रि. स. [हि. ओढ़ाना] कपड़ा ढकना।

उढ़ावनी—संज्ञा स्त्री. [हि. उढ़ाना] चद्दर, ओढनी।

उतंक—संज्ञा पु. [स. उत्तंक] एक ऋषि।

वि. [सं. उत्तुंग] ऊँचा।

उतंग—वि. [स. उत्तुंग] (१) ऊँचा। उ.—(क) अतिहिं उतंग बयारि न लागत, क्यौं टूटे तरु भारी—३८८। (ख) लेहौ दान अग अंगन को। गोरे भाल लाल सेंदुर छवि मुक्ता बर सिर सुभग मंग को। नक बेसरि खुटिला तरिवन को गरह मेल कुच युग उतंग को —१०४२। (२) उच्च, श्रेष्ठ।

उतंगनि—वि. बहु [हि. उतंग+नि (प्रत्य.)] ऊँचे। उ.—अति मद गलित ताल फल ते गुरु इनि जुग उरज उतंगनि को—१०३२।

उतंत—वि [स. उन्नत या उत्तत=ऊँचा] सयाना, बड़ी उम्र का।

उत—क्रि. वि. [सं. उत्तर] (१) वहाँ, उधर, उस ओर। उ.—सुनत द्वारावती मारु उतसों भयो सूर जन मंगलाचार गाए—१० उ. २१। (२) दूसरी तरफ, मुँह फेर कर। उ.—पचि हारे मैं मनायो न मानौ आपुन चरन छुए हरि हाथ। तब रिसि धरि सोई उत मुख करि झुकि झाँक्यौ उपरैना माथ —२७३६।

उतकंठ—वि. [स. उत्कंठित] उत्सुक, उत्कंठायुक्त, चावयुक्त। उ.—स्रवन सुनन उत्कंठ रहत हैं, जब बोलत तुतरात री—१०-१३६।

उतकंठा—संज्ञा स्त्री. [स. उत्कंठा] चाह, लालसा, इच्छा।

उतका—क्रि. वि. [हि. (१) उत+का (२) उत्का] (१) उधर, उस ओर। (२) (श्लेषसे दूसरा अर्थ-उत्का=) उत्कंठिता नायिका के पास। उ.—हौ कहत ना जाउ उतका नंदनंदन बेग। 'सूर' कर आक्षेप राधौ आजु के दिन नेग—सा ३४।

उतन—क्रि. वि. [सं. उ+तनु] उस ओर।

उतना—वि. [हिं. उस+तन (प्रत्य.—सं. 'तावान' से)] उस मात्रा का।

उतपति—संज्ञा स्त्री. [सं. उत्पत्ति] सृष्टि। उ.— (क) तुम हीं करत त्रिगुन विस्तार। उतपति, थिति, पुनि करत सँहार—७२। (ख) उतपति प्रलय करत हैं येई, शेष सहस-मुख सुजस बखाने—२८०।

उतपन्न—वि [सं. उत्पन्न] जन्मा हुआ।

उतपल—संज्ञा पुं. [सं. उत्पल] कमल। उ.—(क) लालन कर उतपल के कारन साँझ समै चित लावै—सा. ७६। (ख) जोर उतपल आदि उर तें निकस आयो कान—सा. ७७।

उतपाटि—संज्ञा पुं. [हि. उत्पाटना] उखाड़ कर। उ.—द्रुम गहि उतपाटि लिए, दै दै किलकारी। दानव बिन प्रान भए, देखि चरित भारी—६-९५।

उतपात—संज्ञा पुं. [सं. उत्पात] (१) कष्टदायक आकस्मिक घटना। (२) अशांति, हलचल। (३) ऊधम, उपद्रव। उ.-(क) लोक-लाज सब छुटि गईं, उठि धाए संग लागे (हो)। सुनि याके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो)-४४(ख) जदुकुल में दोउ संत सबै कहैं तिनके ए उतपात—३३५१। (ग) तुम बिन इहाँ कुँवर वर मेरे होते जिते उतपात—२७०३।

उतपानना—क्रि. स. [सं. उत्पन्न] उपजाया, पैदा किया।

उतपाने—क्रि. स. [सं. उत्पन्न, हि. उतपानना] उत्पन्न या पैदा किये, उपजाये। उ.—तासौं मिलि नृप बहु सुख माने। अष्ट पुत्र तासौं उतपाने—६-२।

उतमंग—संज्ञा पु. [सं. उत्तमाग] सिर, मस्तक।

उतर—संज्ञा पुं. [सं. उत्तर] उत्तर, जवाब। उ.—(क) बूझि ग्वालि निज गृह मै आयौ, नैंकु न संका मानि। सूर स्याम यह उतर बनायौ, चींटी काढ़त पानि—१०-२८०। (ख) ठाढ़ो थक्यो उतर नहिं आवै लोचन जल न समात—२६५७।

उतरत—क्रि. अ. [हिं. उतरना] उतरता है, पार जाता है। उ.—सूरदास-ब्रत यहै, कृष्ण भजि, भव-जल-निधि उतरत—१-५५।

उतरतौ—क्रि. स. [हि. उतरना] अवनति करता हुआ, घटता हुआ। उ.-मेतैं कछू न उतरी हरि जू, आयौ चढ़त-उतरतौ। अजहूँ सूर पतित-पद तरतौ, जौ औरहु निस्तरतौ—१-२०३।

उतरना—क्रि अ. [सं. अवतरण, प्रा. उत्तरण] (१) ऊपर से नीचे आना। (२) अवनति पर होना। (३) स्वर या कांति मलिन होना। (४) मनो विकार की उग्रता शांत होना। (५) अंकित होना।

क्रि. स. [सं. उत्तरण] नदी, पुल आदि को पार करना।

उतराई—संज्ञा स्त्री. [हि. उतरना] (१) नदी पार उतारने का महसूल। उ.-(क) दई न जात खेवट उतराई, चाहत चढ़यौ जहाज—१-१०८। (ख) लै भैया केवट उतराई। महाराज रघुपति इत ठाढ़े तै कत नाव दुराई—१०-४०। (२) ऊपर से नीचे आने की क्रिया।

उतरात—क्रि. अ. [हि. उतराना] (१) पानी की सतह पर तैरता है। उ.—हेरि मथानी धरी माट तै, माखन हो उतरात। आपुन गईं कमोरी माँगन, हरि पाईं ह्याँ घात—१०-२७०। (२) उबलता है, उफान खाता है। उ.—करत फन-घात, बिष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नहिं गात परसै—५५२।

उतराना—क्रि. अ. [सं. उत्तरण] (१) पानी पर तैरना। (२) उबलना, उफनाना। (३) प्रकट होना।

उतरानी—क्रि. अ. [हि. उतराना] पानी की सतह पर तैरने लगी, उतराने लगी। उ.—या ब्रज कौ बसिबौ हमं छोड्यौ, सो अपनै जिय जानी। सूरदास ऊसर की बरषा, थोरे जल उतरानी—१०-३३७।

उतरायल—वि. [हि. उतराना] (१) बहका बहका या इधर-उधर मारा मारा फिरनेवाला। (२) उतारा हुआ पुराना।

उतरायौ—क्रि अ. [हि. उतराना] नदी आदि के पार हुआ, तर गया, तारा गया। उ.—ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर उतरायौ—१-१५।

उतरारी—वि. [सं उतर+हि. वारी] उत्तरकी (विशेषतः 'हवा')।

उतराव—संज्ञा पुं. [हि. उतरना] उतार, ढाल।

उतरावै—क्रि. अ. [सं. उत्तरण, हि. उतराना] साथ साथ घुमावे-फिरावे, चलावे। उ.—ताको लिए नन्द की रानी, नाना खेल खिलावै। तब जसुमति कर टेकि स्याम कौ, क्रम क्रम करि उतरावै—१०-१२६।

उतराहा—क्रि. वि. [सं. उत्तर+हा (प्रत्य.)] उत्तर की ओर।

उतरि—क्रि. स. [सं. उत्तरण, हि उतरना] (नदी आदि के) पार जाओ, पार कर लो। उ.—(क) भव-उदधि जम-लोक दरसै, निपट ही अँधियार। सूर हरि कौ भजन करि करि उतरि पल्ले-पार—१-८८ (ख) सकल विषय-विकार तजि, तू उतरि सायर-सेत—१-३११।

क्रि. अ. [सं. अवतरण, प्रा. उतरण, हि. उतरना] (१) उग्र प्रभाव या उद्वेग दूर हुआ। उ.—उतरि गई तब गर्व खुमारि—१०६६। (२) ऊपर से नीचे आकर। (क) रथतैं उतरि अवनि आतुर ह्वै चले चरन अति धाए—१-२७३। (ख) नाभि-सरोज प्रकट पद्मासन उतरि नाल पछितावै—१०-६५। (३) घट जाना, कम हो जाना। उ.— (क) सजनि सनेही छाँड़ि दयौ। हा जदुनाथ! जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ—१-२९८। (ख) आवत देखे स्याम हरष कीन्हौ ब्रजबासी। सोकसिंधु गयौ उतरि, सिंधु आनंद प्रकासी—५८६।

उतरिन—वि. [सं. उऋण] ऋण से मुक्त।

उतरिहै—क्रि. स. [हि. उतारना] उतारेगा, पार पहुँचावेगा। उ.—को कौरव-दल-सिंधु मथन करि या दुख पार उतरिहै—१-२९।

उतरे—क्रि. स [सं. उत्तरण, हि. उतरना] (१) (नदी, नाले आदि के) पार गये। उ.—कहौ कपि, कैसै उतरे पार—९-८९। (२) डेरा या पड़ाव डाला, टिके, ठहरे। उ.—कटक-सोर अति घोर दसौ दिसि, दीसति बनचर भीर। सूर समुझि, रघुबंस-तिलक दोउ उतरे सागर-तीर—९-११५।

उतर्यौ—क्रि. स. [सं. उत्तरण, हि. उतरना] उतरा, (नदी आदि के) पार गया। उ.—भवसागर मैं पैरि न लीन्हौ। ... । अति गंभीर, तीर नहिं नियरै, किहिं बिधि उतर्यौ जात। नहिं अधार नाम अवलोकत, जित तित गोता खात—१-१७५।

क्रि. अ. [सं. अवतरण, प्रा. उत्तरण, हि. उतरना] उग्र प्रभाव दूर हुआ। उ.—अजहूँ सावधान किन होहि। माया विषम भुजंगिनि कौ विष, उतर्यौ नाहिन तोहि—२-३२।

उतलाना—क्रि. अ. [हिं. आतुर] जल्दी मचाना।

उतवंग—संज्ञा पुं. [सं. उत्तमंग] मस्तक, सिर।

उतसहकंठा—संज्ञा स्त्री [सं. उत्कंठा] तीव्र इच्छा, प्रबल अभिलाषा। उ.—सरद सुहाई आई राति। दुहुँ दिस फूल रही बन जाति। ... । एक दुहावत तैं उठि चली। एक सिरावत मग महँ मिली। उतसह कंठा हरि सौं बढ़ी—१८०३।

उतसाहु—संज्ञा पुं. [सं. उत्साह] (१) उमंग, उछाह। (२) साहस, हिम्मत।

उताइल—वि. [हि. उतावला, उतायल] जल्दी, शीघ्र। उ.—दधिसुत-अरि-भष-सुत सुभाव चल तहाँ उताइल आई—सा. ८७।

उताइली—संज्ञा स्त्री. [हि. उतावली, उतायली] जल्दी, शीघ्रता। उ.—करत कहा पिय अति उताइली मैं कहुँ जात परानी—१६०१।

उतान—वि. [सं. उत्तान] चित, सीधा।

उतानपाद—संज्ञा. पुं. [सं. उत्तानपाद] एक राजा जो स्वायंभुव मनु के पुत्र और ध्रुव के पिता थे।

उतायल—वि. [सं. उत् + त्वरा] जल्दी, तेज।

उतायली—संज्ञा स्त्री. [सं. उत् + त्वरा, हि. उतावली] जल्दी, शीघ्रता।

उतार—संज्ञा पुं. [हि. उतरना (१) उतारन, निकृष्ट। उ.—प्रभुजू हौ तौ महा अधर्मी। अपत, उतार, अभागौ, कामी विषयी, निपट कुकर्मी—१-१८६। (२) उतरने की क्रिया। (३) ढाल। (४) घटाव, कमी। (५) उतारा, न्योछावर।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] खोलकर, अलग करके। उ.—न्हान लगीं सब बसन उतार—९-१७४।

उतारत—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१) (धारण की हुई वस्तु को) अलग करते हैं, खोलते हैं। उ.—उतारत हैं कंठनि तैं हार । हरि हित मिलन होत है अतर, यह मन कियौ बिचार—६८७। (२) उतार रहा है, स्वयं अपना रहा है, दूसरे को घटाना चाहता है । उ.—मानिन अजहूँ छाँड़ो मान । तीन बिवि दधिसुत उतारत रामदल जुत सान—सा. २१ । (३) सामने रखती है, दिखाती है। उ.—ग्रह मुनि दुत हित के हित कर ते मुकर उतारत नाथे —सा. ६ ।

उतारति—क्रि. स. [हि. उतारना] (१) उतारती है, शरीर के चारो ओर घुमाती है । उ.—खेलत मैं कोउ दीठि लगाई, लै-लै राई लौन उतारति—१०-२०० । (२) धारण की हुई वस्तु को खोलती या अलग करती है । उ.—अरु बनमाल उतारति गर तैं सूर स्याम की मातु—५११ ।

उतारन—संज्ञा पुं. [हि. उतारना] (१) उतरन, उतारा हुआ व पड़ा । (२) न्योछावर । (३) निकृष्ट वस्तु ।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (किसी उग्र प्रभाव को) दूर करने के लिए, (किसी भार को हलका करने के उद्देश्य से । उ.—(क) रथ तैं उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाए । मनु संचित भू-भार उतारन, चपल भए अकुलाए—१-२७२ । (ख) आजु दसरथ कैं आँगन भीर। ये भू-भार उतारन कारन प्रगटे स्याम-सरीर—९-१६ ।

उतारना—क्रि. स. [सं. अवतरण] (१) ऊँचे से नीचे उतरना । (२) चित्र आदि खींचना । (३) काटना, अलग करना । (४) धारण की हुई वस्तु को खोलना । (५) न्योछावर करना ।(६) उग्र प्रभाव को दूर करना । (७) जन्म देना । (८) वस्तु या पदार्थ तैयार करना ।

क्रि. स. [सं. उत्तारण] नदी आदि के पार ले जाना ।

उतारा—संज्ञा पुं. [हिं. उतरना] (१) ठहरने या डेरा डालने की क्रिया । (२) उतरने का स्थान, पड़ाव ।

संज्ञा पुं. [हि. उतारना] (१) क्लेश या ग्रह-शांति के लिए कुछ सामग्री व्यक्ति विशेष के चारो ओर घुमा कर चौराहे पर रखना । (२) उतारे की सामग्री ।

उतारि—क्रि. स. [सं. उत्तारण, हि. उतारना] (नदी आदि के) पार करके, पार पहुँचाकर, पार करो । उ.—लीजै पार उतारि सूर कौं महाराज ब्रजराज । नई न करन कहत प्रभु, तुम हौ सदा गरीब-निवाज —१-१०८ ।

क्रि. स. [सं. अवतरण प्रा. उत्तरण, हि. उतारना] (१) धारण की या पहनी हुई वस्तु को खोलकर । उ.—(क) बिदुर सस्त्र तब सबहिं उतारि। चल्यौ तीरथनि मुंड उघारि—१-२८४ । (ख) इक अभरन लेहि उतारि देत न संक करैं—१०-२४ । (ग) ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि—१०-१६६ । (२) जुड़ी या लगी हुई वस्तु को काट कर, अलग करके। उ.—अस्वत्थामा निसि तहँ आए। द्रोपदी-सुत तहँ सोवत पाए। उनके सिर लै गयौ उतारि। कह्यौ, पाडवनि आयौ मारि—१-२८९। (३) उठाय हुई वस्तु को पृथ्वी पर रखना । उ.—सूर प्रभु कर ते गुबर्धन धर्यौ धरनि उतारि—९६४। (४) उतारा करके, नजर उतार कर । उ.—कबहूँ अँग भूषन बनावति, राइ-लोन उतारि—१०-११८ । (५) ऊपर रखी वस्तु को नीचे रखना । उ.—(क) उफनत दूध न धर्यौ उतारि—१८०३ । (ख) एक उफनत ही चलीं उठि धर्यौ नाहिं उतारि—पृ. ३३६ (८४) ।

उतारिए—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि उतारना] (१) ठहराइए । (२) न्योछावर कीजिए, वारिए ।

उतारी—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१) (पहने हुए वस्त्र आदि) खोलकर। उ.—(क) बसन धरे जल-तीर उतारी । आपुन जल पैंठी सुकुमारी—१०-७९९ । (ख) उरते सखी दूर कर हारहि ककन धरहु उतारी—२७८२ । (२) आरोही को किसी यान से नीचे पृथ्वी पर उतार कर, ठहरा कर, डेरा देकर । उ.—निरखति ऊधो सुख पायौ । सुन्दर सुजल सुबंस देखियत याते स्याम पठायौ । ... । महर लिवाय गये निज मंदिर हरषित लियौ उतारी—२९६३ । (३) सिर पर उठाए हुए भारको

नीचे रखकर । उ.—(क) योग मोट सिर बोझ आनि तुम कत धौं घोष उतारी—३३१६। (ख) लादि खेप गुन ज्ञान योग की ब्रज मैं आनि उतारी—३३४०।

उतारू—वि. [हि. उतरना] तैयार, तत्पर।

उतारे—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१) संकट आदि दूर करे। उ.—निर्विष होत नहिं कैसेहूँ बहुत गुनी पचि हारे। सूर स्याम गारुडी बिना को, जो सिर गाढ़ उतारे—७४७। (२) उग्र प्रभाव या उद्वेग को दूर करे। उ.—आनहुँ बेगि गारुरी गोबिदहि जो यहि बिषहि उतारे—३२५४।

उतारैं—क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (पहने हुए वस्त्रादि) खोलें। उ.—इत-उत चितवति लोग निहारैं। कह्यौ सबनि अब चीर उतारैं—७६६।

उतारै—क्रि. स. [सं. उत्तारण, हि. उतारना] (नदी आदि के) पार पहुँचाना। उ.—भवसमुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार—१-६८।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] उतारा करे, नजर आदि उतारे। उ.—जाकौ नाम कोटि भ्रम टारै। तापर राई-लोन उतारै—१०-१२६।

उतारौं—क्रि. स. [सं. उत्तारण, हि. उतारना] (नदी, नाले आदि को पार ले जाऊँ, पार पहुँचा दूँ। उ.—(क) सोखि समुद्र, उतारौं कपि-दल, छिनक बिलंब न लाऊँ—९-१०६। (ख) आज्ञा होइ, एक छिन भीतर, जल इक दिसि करि डारौं। अंतर मारग होइ, सबनि कौं इहि बिधि पार उतारौं—९-१२१।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१) जुड़ी हुई वस्तु को सफाई के साथ काटूँ, काटकर अलग करूँ। उ.—तबै सूर संधान सफल हौ, रिपु कौ सीस उतारौं—६-१३७। (२) बोझ उतार कर हल्का करूँ। उ.—असुर कुलहि संहारि, धरनि कौं भार उतारौं—४३१।

उतारौ—संज्ञा पुं. [हि. उतरना] उतारा, उतरने योग्य स्थान, पड़ाव। उ.—(क) जल औड़े मे चहुँ दिसि पैर्‌यौ, पाँउ कुल्हारौ मारौ। बाँधी मोट पसारि त्रिविध गुन, नहिं कहुँ बीच उतारौ। देख्यौ सूर बिचारि सीस परी, तब तुम सरन पुकारौ—१-१५२।

(ख) ममता-घटा, मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारौ। बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट अधारौ। गरजत क्रोध-लोभ कौ नारौ, सूझत कहूँ न उतारौ—१-२०९।

उतार्‌यौ—क्रि. स. [सं. उत्तारण, हि. उतारना] (नदी-नाले आदि के) पार ले गया। उ.—नारद जू तुम कियौ उपकार। बूड़त मोहि उतार्‌यौ पार—४-१२।

क्रि. स. [सं. अवतरण, हि. उतारना] (१) उठाया हुआ भार पृथ्वी पर रखा। उ.—हरि कर ते गिरिराज उतार्‌यौ—१०७०। (२) उग्र प्रभाव को दूर किया। उ.—भले कान्ह हो बिषहि उतार्‌यौ। नाम गारुड़ी प्रगट तिहारो—७६२।

उताल-क्रि. वि. [सं. उद्+त्वर] जल्दी, शीघ्र। उ.—(क) सो राजा जो अगमन पहुँचै, सूर सु भवन उताल। जौ ऐहैं बलदेव पहिलै ही, तौ हँसिहैं सब ग्वाल—१०-२२३। (ख) कहै न जाइ उताल जहाँ भूपाल तिहारौ। हौं बृंदाबन चंद्र कहा कोउ करै हमारौ—११११२।

संज्ञा स्त्री—शीघ्रता, जल्दी।

उताली—संज्ञा स्त्री. [हि. उताल] शीघ्रता, उतावली, फुर्ती।

क्रि. वि—शीघ्रता से, जल्दी से।

उतावल—क्रि. वि. [सं. उद् + त्वर] शीघ्रता से। उ.—कोउ गावत, कोउ बेनु बजावत, कोऊ उतावल धावत। हरि दर्सन लालसा कारनै बिबिध मुदित सब आवत—१० उ.-११२।

वि.—उतावला, जल्दी मचानेवाला।

उतावला—वि. [स. उद्+त्वर] (१) जल्दी मचानेवाला। (२) घबराया हुआ।

उतावलि—संज्ञा स्त्री. [सं. उद् + त्वर, हि. उतावली] जल्दी, शीघ्रता, हड़बड़ी। उ.—अँधयारी आई तहँ भारी। दनुज-सुता तिहि तै न निहारी। बसन सुक्र-तनया के लीन्हे। करत उतावलि परे न चीन्हे—६-१७३।

उतावली—वि. स्त्री. [हि.पुं.उतावला] (१) जल्दी मचाने वाली। (१) घबरायी हुई, व्यग्र। उ.—प्रातहि धेनु

दुहावन आई, अहिर तहाँ नहि पाई। तबहि गई मै ब्रज उतावली, आई ग्वाल बुलाई—७२८।

संज्ञा स्त्री.—(१) जल्दबाजी, हड़बड़ी। (२) व्यग्रता, चंचलता।

उताहल—क्रि. वि. [स. उद्+ त्वर] शीघ्रता से, बहुत जल्दी से।

वि.—उतावला, घबराया हुआ।

उताहिल—क्रि. वि. [हि. उताहल] जल्दी-जल्दी, शीघ्रता से।

उतिम—वि. [सं. उत्तम] उत्तम, श्रेष्ठ। उ.—नृतकार उतिम बनाइ बानिक सग चंद न आवै—सा. ६१।

उतृण—वि. [सं. उद् + ऋण] (१) ऋण से मुक्त। (२) उपकार का बदला चुका देनेवाला।

उतै—क्रि. वि. [हि. उस+त (प्रत्य)=उत] उधर, उस ओर, वहाँ। उ.—उतै देखि धावै,अचरज पावै, सूर सुरलोक-ब्रजलोक एक ह्वै रह्यौ—४८४।

उतैला—क्रि. वि. [हिं. उतावला] (१) हड़बड़ी करने वाला। (२) घबराया हुआ।

उत्कंठा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रबल इच्छा। (२) एक संचारी भाव।

उत्कंठित—वि. [सं.] चाव से भरा हुआ, उत्सुक।

उत्कंठिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो मिलन के स्थान पर प्रिय के न आने से चिंतित हो।

उत्कंप—संज्ञा पुं. [सं.] कँपकँपी।

उत्कट—वि. [सं.] तीव्र, उग्र, प्रबल।

उत्कलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चाह, लालसा। (२) कली। (३) तरंग।

उत्कर्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ाई, प्रशंसा। (२) बढ़ती, अधिकता। (३) समृद्धि, उन्नति।

उत्कर्षता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) श्रेष्ठता, उत्तमता। (२) अधिकता। (३) समृद्धि।

उत्क्रम—संज्ञा पुं. [सं.] क्रमभंग, उलट-पलट।

उत्क्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्रम का ध्यान न रखना। (२) मृत्यु।

उत्कीर्ण—वि. [सं.] लिखा या खुदा हुआ।

उत्कृष्ट—वि. [सं.] उत्तम, श्रेष्ठ।

उत्कृष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्रेष्ठता, उत्तमता।

उत्कोच—संज्ञा पुं. [सं] घूस, रिश्वत।

उत्कोचक—वि. [सं.] घूस लेनेवाला।

उत्क्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं] पूर्णता या उत्तमता की ओर क्रमशः बढ़ने की प्रवृत्ति।

उत्खाता—वि. [सं.] उखाड़नेवाला।

उत्तंस—सज्ञा पुं. [सं. अवतंस] (१) भूषण, गहना। (२) टीका। (३) मुकुट, श्रेष्ठ। (४) माला।

उत्त—संज्ञा पुं. [सं. उत्] (१) आश्चर्य। (२) संदेह।

क्रि. वि.—उस ओर, उधर।

उत्तम—संज्ञा पुं. [सं.] ध्रुव का सौतेला भाई जो राजा उत्तानपाद की छोटी रानी सुरुचि से उत्पन्न हुआ था।

वि. [सं.] सबसे अच्छा, श्रेष्ठ।

उत्तमगंधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] चमेली

उत्तमतया—क्रि. वि. [सं.] अच्छी तरह से।

उत्तमता—संज्ञा स्त्री [स.] श्रेष्ठता, भलाई।

उत्तमताई—संज्ञा स्त्री. [स.] श्रेष्ठता, भलाई।

उत्तप्त—वि. [सं.] (१) तप्त हुआ। (२) दुखी, पीड़ित। (३) क्रोधित।

उत्तमश्लोक—वि. [सं.] यशस्वी, कीर्तियुक्त।

संज्ञा पुं. (१) पुण्य, यश। (२) भगवान, विष्णु।

उत्तमांग—संज्ञा पुं. [सं.] सिर, मस्तक।

उत्तमा—वि. स्त्री. [सं. पुं. उत्तम] अच्छी, भली।

उत्तमोत्तम—वि. [सं.] सबसे अच्छा, अच्छे-अच्छे।

उत्तमौजा—वि. [सं. उत्तमौजस्] उत्तम बल या तेज वाला।

उत्तर—संज्ञा पुं. [सं] (१) दक्षिण के सामने की दिशा। (२) प्रश्न के समाधान में कही गयी बात। (३) बदला। (४) राजा विराट का पुत्र। (५) एक काव्यालंकार।

वि.—(१) पिछला, बाद का। (२) ऊपर का (३) बढ़कर, श्रेष्ठ।

क्रि. वि.—पीछे, बाद।

उत्तरदाता— पुं. [सं. उत्तरदातृ] जिम्मेदार।

उत्पीड़न—संज्ञा पुं. [सं.] दुख देना, पीड़ा पहुँचाना।

उत्प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) उद्भावना। (२) एक अर्थालंकार जिसमें उपमान को भिन्न समझते हुए भी उपमेय में उसकी प्रतीति की जाय।

उत्फुल्ल—वि. [सं.] (१) खिला हुआ, विकच। (२) चित, सीधा।

उत्संग—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गोद, अंक। (२) निर्लिप्त, विरक्त।

उत्सर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) त्याग, छोड़ना। (२) दान, निछावर।

उत्सर्जन—संज्ञा पुं. [सं.] (२) त्याग। (२) दान।

उत्साह—संज्ञा पुं. [सं] (१) उमंग, उछाह, जोश। (२) साहस, हिम्मत।

उत्साही—वि. [सं. उत्साहिन्] उमंगवाला।

उत्सुक—वि. [सं.] (१) इच्छुक, चाह से युक्त। (२) उद्योग में तत्पर।

उत्सुकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) तीव्र इच्छा, उत्कंठा। (२) एक संचारी भाव, किसी कार्य के करने में, दूसरे की राह न देखकर, स्वयं तत्पर हो जाना।

उत्सूर—संज्ञा पुं. [सं.] सायंकाल।

उत्सृष्ट—वि. [सं.] त्यागा हुआ।

उत्सेध—संज्ञा पुं. [स.] (१) बढती। (२) ऊँचाई।
वि.—(१) ऊँचा (२) श्रेष्ठ।

उथपना—क्रि. स. [सं. उत्थापन] उखाड़ना, उजाड़ना।

उथपै—क्रि. स. [हि. उथपना] उजड़ जाय, नष्ट हो।

उथलना—क्रि. अ. [सं. उत्+स्थल] (१) डगमगाना। (२) नीचे-ऊपर होना। (३) पानी का छिछला होना।

उथलपुथल—संज्ञा पुं. [हि. उथलना] (१) उलट-पुलट। (२) हलचल।
वि.—इधर का उधर।

उथला—वि. [सं. उत्+स्थल] कम गहरा, छिछला।

उदंत, उदंतक—संज्ञा पुं. [सं] वार्ता, वृत्तांत।

उदक—संज्ञा पुं. [सं.] जल, पानी।

उदकना—क्रि. अ. [स. उद्=ऊपर+क=उदक] कूदना, उछलना।

उदकि—क्रि. अ. [हि. उदकना] कूदना, कूद कर।

उदगार—संज्ञा पुं. [सं. उद्गार] (१) उबाल, उफान। (२) घोर शब्द। (३) मन की बात सवेग कहना।

उदगारना—क्रि. स. [सं. उद्गार] (१) बाहर निकालना, उगलना। (२) भड़काना, उत्तेजित करना, प्रज्वलित करना।

उदगारी—क्रि. स. [हि. उद्गारना] उत्तेजित की, प्रज्वलित की।
वि.—(१) उगलनेवाला। (२) बाहर निकालने वाला।

उदग्ग—वि. [सं. उदग्र, पा. उदग्ग] (१) ऊँचा, उन्नत। (२) उग्र, प्रचंड।

उदग्र—वि. [सं.] (१) ऊँचा, उन्नत। (२) बढ़ाया हुआ। (३) प्रचंड, उग्र।

उदघटत—क्रि. स. [हिं. उदघटना] प्रगट होता है, उदय होता है।

उदघटना—क्रि. स. [सं. उद्घट्टन=संचालन] प्रकट होना, उदय होना।

उदघाटन—संज्ञा पुं. [सं. उद्घाटन] प्रकट करना।

उदघाटना—क्रि. स. [सं. उत्घाटन] प्रकट करना, खोलना।

उदघाटी—क्रि. स. [हि. उदघाटना] प्रकट की, खोली।

उदथ—संज्ञा पुं. [स. उद्गीथ=सूर्य] सूर्य।

उदधि—संज्ञा पुं. [सं] समुद्र।

उदधितनयापति—संज्ञा पुं. [सं. उदधि (=समुद्र)+तनया=पुत्री=शुक्ति=सीप)+पति (शुक्तिपति=मेघ=नीरद=जीवनद=जीवनदान)] जीवनदान। उ.—बेगि मिलौ सूर के स्वामी उदधितनया-पति मिलिहै आई—सा. उ. ३०।

उदधि मेखला—संज्ञा स्त्री. [स.] पृथ्वी।

उदधिसुत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) अमृत। (३) शंख। (४) कमला। उ.—दिनपति चले धौ कहा जात! धराधरनधरनिपुत न बीको कहो उदधि सुत बात—सा. ८।

उदधिसुता—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) लक्ष्मी (२) सीप।

उदपान—संज्ञा पुं. [सं.] कमंडलु।

उदबस—वि. [सं. उद्वासन=स्थान से हटाना] (१) उजाड़, सूना। (२) स्थान से निकाला हुआ, एक स्थान पर न रहनेवाला। उ.—अब तो बात घरी पहरन सखि ज्यों उदबस की भीत्यो। सूरस्याम दासी सुख सोवहु भयो उभय मन चीत्यौ—१८८४।

उदबासना—क्रि. स. [सं. उद्वासन, हिं. उदबस] (१) स्थान से उठाना या भगाना। (२) उजाड़ना।

उद्भट—वि. [सं. उद्भट] प्रबल, प्रचंड।

उद्भव—वि. पुं. [सं. उद्भव] (१) उत्पत्ति, सृष्टि। (२) वृद्धि, बढ़ती।

उद्भौत—संज्ञा पुं. [सं. अद्भुत] अद्भुत वस्तु, अचम्भा।

उद्भौति—संज्ञा स्त्री. [सं.अद्भुत] अद्भुत वस्तु होना या घटना। उ.—अँखियनि तैं मुरली अति प्यारी-वह बैरिनि यह सौति। सूर परस्पर कहत गोपिका यह उपजी उदभौति—पृ.३२८।

उदमद—वि. [स. उद्+मद] उन्मादपूर्ण, मतवाला। उ.—उदमद यौवन आनि ठाढ़ि कै कैसे रोको जाइ—३११३।

उदमदना—क्रि. अ. [सं. उद्+मद] उन्मत्त या मतवाला होना।

उदमदे—वि. [हिं. उदमाद] उन्मत्त, मतवाला। उ.—गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हाई।

उदमाद—संज्ञा पुं. [सं. उद्+माद] उन्माद, मतवाला-पन, पागलपन। उ.—सरदकाल रितु जानि दीप-मालिका बनाई। गोपन के उदमाद फिरत उदमदे कन्हाई।

उदमादी—वि. [हि उद्माद] उन्मत्त, मतवाला। उ.—मेरो हरि कहँ दसहि बरस को तुम ही यौवन मद उदमादी—१०५७।

उदमान—वि. [सं. उन्मत्त] उन्मत्त, मतवाला। उ.—अग्नि कबहुँक बरखि बारि बरषा करै प्रद्युम्न सकल माया निवारी। शाल्व परधान उदमान मारी गदा प्रद्युम्न मुरछित भए सुधि बिसारी—१० उ.-५६।

उदमानना—क्रि. अ. [सं. उन्मादन] उन्मत्त होना।

उदमानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. उदमानना] उन्मत्त हुई, मतवाली बनी। उ.—मेरो हरि कहँ दसहिं बरस को तुमही जोबन मद उनमानी (उदमादी) —१०५७।

उदय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निकलना, प्रकट होना।

क्रि. प्र.—उदय कीनो—प्रकट किया, प्रकाशित किया। उ.—तिलक भाल पर परम रुचिर गोरोचन को दीनो। मानो तीन लोक की सोभा अधिक उदय सो कीनो।

मुहा.—उदय अरु अस्त लौं—सारे संसार में, सारी पृथ्वी पर। उ.—हिरनकस्यप बढ़यौ उदय अरु अस्त लौं, हठी प्रह्लाद चित चरन लायौ। भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी, खम तैं प्रगट है जन छुड़ायौ—१-५। (१) वृद्धि, उन्नति, बढ़ती। (३) निकलने का स्थान, उद्गम।

उदयगढ़—संज्ञा. पुं. [सं. उदय+हिं. गढ़] उदयाचल जिसके पीछे से सूर्य निकलता है।

उदयगिरि—संज्ञा पुं. [सं.] उदयाचल जिसके पीछे से सूर्य निकलता है।

उदयाचल—सं. पुं [सं. उदय+अचल=पर्वत] पूर्व दिशा का एक पर्वत जिसके पीछे से सूर्य निकलता दिखायी देता है।

उदयाद्रि—संज्ञा पुं. [सं. उदय+अद्रि=पर्वत] उदया-चल।

उदर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेट, जठर।

मुहा.—उदर जियाऊँ—पेट पालूँ, पेट भरूँ, खाऊँ। उ.—माँगत बार-बार सेष ग्वालन कों पाऊँ। आप लियौ कछु जानि भक्त करि उदर जियाऊँ। उदर भरै—पेट पाले। भिक्षा-वृत्ति उदर नित भरै निसि दिन हरि-हरि सुमिरन करे।

(२) किसी वस्तु के बीच का भाग। (३) भीतरी भाग।

उदरज्वाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जठराग्नि। (२) भूख।

उदरना—क्रि. अ. [हि. उदारना] (१) फटना। (२) ढहना, नष्ट होना।

उदवत—क्रि. अ. [सं. उदयन, हि. उदवना] निकलते या प्रकट होते ही (या होकर)। उ.—मेरौ हरन मरन है तेरौ, स्यौ कुटुम्ब-संतान। जरिहै लंक कनकपुर तेरौ, उदवत रघुकुल-भान—६-७६।

उदवना—क्रि. अ. [सं. उदयन] निकलना, प्रकट होना।

उदवाह—संज्ञा पुं. [सं. उद्वाह] विवाह।

उदवेग—संज्ञा पुं. [सं. उद्वेग] (१) चित्त की घबड़ाहट। (२) आवेग, जोश।

उदसन—क्रि. अ. [सं. उदसन=नष्ट करना। अथवा उद्वासन] (१) उजड़ना। (२) अंडबंड होना।

उदात—संज्ञा पुं. [सं. उदात्त] एक अलंकार जिसमें संभावित वैभव, ऐश्वर्य या समृद्धि का बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन हो। उ.—यह उदात अनूप भूषन दियो सब घर तोर। सूर सब रे लच्छनन जुत सहित सब त्रिन तोर—सा-६४।

उदात्त—वि. [सं.] (१) ऊँचे स्वर से उच्चरित। (२) दयालु। (३) दाता, दानी। (४) श्रेष्ठ। (५) समर्थ, योग्य। (६) स्पष्ट, विशद।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऊँचा स्वर। (२) एक काव्यालंकार।

उदान—संज्ञा पुं. [सं.] प्राणवायु का एक भेद जिसकी गति हृदय से कंठ और सिर से भ्रूमध्य तक है।

वि.—उडे-उडे, मारे मारे, अस्थिर। उ.—अब मेरी को बोलै साखि! कैसे हरि के संग सिधारे अब लौं यह तन राखि। प्रान उदान फिरत ब्रज बीथिनि अवलोकनि अभिलाषि—२८४७।

उदाम—वि. [सं. उद्दाम] (१) उग्र, उद्दंड। (२) स्वतंत्र। (३) गंभीर।

उदायन—संज्ञा पुं. [सं. उद्यान=बाग] बाग, वाटिका, उपवन।

उदार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दयालु, दानशील।

यौ.—उदार-उदधि—बहुत दयालु, महानदानी। उ.—प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ। अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि जान-सिरोमनि राइ—१-८।

(२) महान, श्रेष्ठ। (३) उदार विचारवाला। (४) सरल, सीधा, शिष्ट। (५) अनुकूल।

उदारचरित—वि. [सं.] उच्च आचार-विचार रखनेवाला।

उदारचेता—वि. [सं. उदारचेतस्] उदार चित्त वाला।

उदारता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दानशीलता। (२) उच्च विचार, विशालहृदयता।

उदारना क्रि. स. [सं. उदारण] (१) फाड़ना। (२) ढहाना, नष्ट करना।

उदारी—वि. [सं. उदार] उदार, दयालु। उ.—धावत कनक-मृगा के पाछै, राजिव-लोचन परम उदारी—६-१९८।

उदाराशय—वि. [सं. उदार+आशय] उच्च विचारवाला, विशाल हृदय, महात्मा।

उदारौं—क्रि. स. [हि. उदारना] तोड़ फोड़ दूँ, छिन्न-भिन्न कर दूँ, नष्ट कर डालूँ उ.—जो तुम आज्ञा देहु कृपानिधि तो एहि पुर संहारौं। कहहु तो लंक उदारौं (बिदारौं)—९-१०७।

उदास—वि. [सं] (१) खिन्न चित्त, दुखी। उ.—(क) हरि अमृत लै गए अकास। असुर देखि यह भए उदास—७-७। (ख) रामचन्द्र अवतार कहत है सुनि नारद मुनि पास। प्रगट भयो निस्चर मारन को सुनि यह भयौ उदास (२) जिसका चित हट गया हो, विरक्त। उ.—(क) राजिव रवि को दोष न मानत, ससि सों सहज उदास—३२१६। (ख) ऐसे रहत उतहिं को आतुर मोसो रहत उदास। सूर स्याम के मन क्रम बच भए रीझे रूप प्रकास—पृ॰ ३३४। (३) जो किसी से सम्बन्ध न रखे, तटस्थ, निरपेक्ष। उ.—मै उदास सबसों रहौं इह मम सहज सुभाइ। ऐसोजानै मोहि जो मम माया न रचाइ-१० उ.-४७

संज्ञा पुं.—दुख, खेद।

उदासना—क्रि. स. [सं. उद्वासन] (१) उजाड़ना, नष्ट करना। (२) लपेटना।

उदासा—वि [सं. उदास] (१) जिसका चित्त हट गया हो, विरक्त। उ.—निःकंचन जिनमें मम बासा। नारि राग मैं रहौं उदासा—१० उ. ३२। (२) खिन्न चित्त, दुखी। उ.—अरुणोदय उठि प्रात ही अक्रूर बोलाए।......। सोवत जाइ जगाइ के चलिए नृप पासा। उहै मंत्र मन जानि के उठि चले उदासा—२४७६।

संज्ञा पु.—दुख का प्रसंग, दुख की बात। उ.—मन ही मन अक्रूर सोच भारी.. ...। कुवलिया मल्ल मुष्टिक चाणूर स कियो मैं कर्म यह अति उदासा—२५५१।

उदासिल—वि. [सं. उदास+हि. इल (प्रत्य.)] उदास, उदासीन।

उदासी—संज्ञा पुं. [सं. उदास+हि. ई (प्रत्य.)] विरक्त या त्यागी पुरुष, संन्यासी।

संज्ञा स्त्री.—विरक्ति, त्याग। उ.—जोग, ज्ञान ध्यान, अवराधन साधन मुक्ति उदासी। नाम प्रकार कहा रुचि मानहि जो गोपाल उपासी—३१०६। (२) खिन्नता, दुख। उ.—बिनु दसरथ सब चले तुरत ही कोसलपुरके बासी। आए रामचन्द्र मुख देख्यौ सबकी मिटी उदासी।

वि.—दुखी, विरक्त, त्यागी, उदास। उ.—(क) ब्रज बासी सब भए उदासी को संताप हरै—३०४७। (ख) किहि अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भक्ति ते करत उदासी। सूरदास तो कौन बिरहिनी माँगे मुक्ति छाँड़ि गुनरासी—३३१५। (२) रुष्ट, अप्रसन्न। उ.—सूर सुनत सुरपती उदासी। देखहु ए आए जलरासी—१०६१।

उदासीन—वि. [सं.] जिसका चित्त किसी वस्तु या व्यक्ति से हट गया हो, विरक्त। (२) जो किसी के झगड़े में न पड़े, निष्पक्ष, तटस्थ। (३) रूखा, उपेक्षा से पूर्ण।

उदासीनता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चित्त का हटना, विरक्ति। (२) उदासी, खिन्नता।

उदाहरण—संज्ञा पुं. [सं.] दृष्टांत।

उदित—वि. [सं.] (१) जो उदय हुआ हो, निकला हो। उ.—(क) धर अबर, दिसि-बिदिसि, बड़े अति सायक किरन-समान। मानौ महाप्रलय के कारन, उदित उभय षट भान—९-१५८। (ख) उदित चारु चन्द्रिका अबर उर अंतर अमृत मई—२८५३। (२) प्रफुल्लित, प्रसन्न। उ.—अति सुख कौसल्या उठि धाई। उदित बदन मन मुदित सदन तैं, आरति साजि सुमित्रा ल्याई—९-१६९। (३) प्रकट। (४) उज्ज्वल, स्वच्छ।

उदितयौवना—संज्ञा स्त्री. [सं] वह मुग्धा नायिका जिसमें बचपन का भोलापन शेष हो।

उदियाना—क्रि. अ. [सं. उद्विग्न] घबड़ाना, हैरान होना।

उदीची—संज्ञा स्त्री. [सं.] उत्तर दिशा।

उदीच्य—वि. [सं.] (१) उत्तर दिशा अथवा प्रदेश का रहनेवाला। (२) उत्तर दिशा का।

उदीपन—संज्ञा पुं. [सं. उद्दीपन] (१) उत्तेजित करने की क्रिया, जगाना। (२) उत्तेजित करने की वस्तु।

उदेग—संज्ञा पुं. [सं. उद्वेग] चित्त की व्याकुलता।

उदै—संज्ञा पुं. [सं. उदय] उदय, निकलना या प्रकट होना। उ.—डुलै सुमेरु, सेष-सिर कंपै, पश्चिम उदै करै बासरपति। सुनि त्रिजटी, तौहूँ नहि छाड़ौं मधुर मूर्ति रघुनाथ-गात-रति—९-८२।

उदो—संज्ञा पुं. [सं. उदय] वृद्धि, उन्नति, बढ़ती, उदय। उ.—(क) तुम्हरो कठिन बियोग बिषम दिनकर सम उदो करै। हरि-पद बिमुख भए सुनु सूरज को इहि ताप हरै—३४५८। (ख) राकापति नहिं कियो उदो सुनि या सम ये नहि आवति—सा. उ. १३।

उदोत—संज्ञा पुं. [सं. उद्योत] प्रकाश, दिप्ति। उ.—नव-तन-चद्र-रेख मधि राजत, सुर-गुरु-शुक्र-उदोत परस्पर—१०-६३।

वि.—(१) प्रकाशित, दीप्त। (२) उत्तम।

उदोतकर—वि. [सं. उद्योतकर] (१) प्रकाश करने वाला। (२) उज्ज्वल करनेवाला।

उदोती—वि. [सं. उद्योत] (१) प्रकाशित। (२) उत्तम।

(३) प्रकाश करनेवाला, विकाशक।

संज्ञा पुं.—प्रकाश।

उदौ—संज्ञा पुं. [सं. उदय] उदय, प्रकटना, जन्म। उ.—नंद-उदौ सुनि आयौ हो, वृषभानु कौ जगा—१०-३७।

उद्—उप. [सं] एक उपसर्ग जो शब्दों के आदि में जुड़कर इन अर्थों की विशेषता लाता है।ऊपर, जैसे—उद्गमन। अतिक्रमण, जैसे—उत्तीर्ण। उत्कर्ष,—जै उद्बोधन। प्रबलता,—जैसे उद्गार। प्रधानता,—जैसे उद्देश्य। कमी,—जैसे उद्वासन। प्रकाश,—जैसे उच्चारण। दोष,—जैसे उद्मार्ग (उन्मार्ग)।

संज्ञा पुं.—(१) मोक्ष, सुगति। (२) ब्रह्मा। (३) सूर्य। (४) जल।

उद्गत—वि. [सं] (१) उत्पन्न, जन्मा हुआ। (२) प्रकट। (३) फैला हुआ, व्याप्त।

उद्गम—संज्ञा पुं. [सं] (१) उदय। (२) उत्पत्ति का स्थान। (३) स्थान जहाँ से नदी निकलती है।

उद्गार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उबाल, उफान। (२) तरल पदार्थ जो सवेग बाहर निकले। (३) घोर शब्द। (४) मन की पुरानी बात जो सतेज और एकबारगी कही जाय। (५) वमन होने की क्रिया और वस्तु। (६) बाढ़, अधिकता।

उद्गारी—संज्ञा पुं. [सं. उद्गारिन] प्रकट करनेवाला।

उद्गीर्ण—वि. [सं.] (१) निकला हुआ, कहा हुआ। (२) उगला हुआ।

उद्घाट—संज्ञा पुं [सं.] खोलने की क्रिया।

उद्घाटन—संज्ञा पुं. [स.] (१) खोलना। (२) प्रकट करना, प्रकाशित करना।

उद्घात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धक्का, ठोकर। (२) आरम्भ।

उद्घातक—वि. [सं] (१) धक्का देनेवाला। (२) आरंभ करनेवाला।

संज्ञा पुं.—सूत्रधार की नाटकीय प्रस्तावना में उसकी बात का मनमाना अर्थ लगाकर नेपथ्य से कुछ कहना।

उद्घाती—वि. [सं. उद्घातिन्] (१) ठोकर या धक्का मारने वाला। (२) जो ऊँचा-नीचा या ऊबड़-खाबड़ हो।

उद्दंड—वि. [सं. उद्दंड] अक्खड़, निडर।

उद्दाम—वि. [सं.] (१) बंधन रहित। (२) उग्र, उद्दंड। (३) स्वतंत्र। (४) महान।

संज्ञा पुं.—वरुण।

उद्दित—वि. [सं. उदित] उज्ज्वल, स्वच्छ, प्रकाशपूर्ण, कांतिवान। (क) उ.—नव-मनि-मुकुट-प्रभा अति उद्दित, चित्त-चकित अनुमान न पावति—१०-७। (ख) तहँ अरि-पंथ-पिता जुग उद्दित वारिज बिबि रंग भजो अकास—सा. उ. २८।

उद्दिष्ट—वि. [सं.] (१) दिखाया या संकेत किया हुआ। (२) लक्ष्य, अभिप्रेत।

उद्दीपक—वि. [सं.] उत्तेजित करनेवाला, भावों को उभाडनेवाला।

उद्दीपन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तेजित करना, जगाना। (२) उत्तेजित करनेवाला पदार्थ या वातावरण। (३) रस को उत्तेजित करनेवाला विभाव।

उद्देश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चाह, इच्छा। (२) कारण, हेतु।

उद्देश्य—वि. [सं.] इष्ट, लक्ष्य।

संज्ञा पुं.—(१) आशय, अभिप्राय, अभिप्रेत अर्थ। (२) वाक्य में जिसके विषय में कुछ कहा जाय, विशेष्य।

उद्दोत—संज्ञा पु. [सं. उद्योत] प्रकाश।

वि.—(१) प्रकाशयुक्त, चमकीला। (२) उत्पन्न, उदित।

उद्ध—क्रि. वि. [. ऊर्द्ध, पा. उद्ध] ऊपर।

उद्धत—वि. [सं.] (१) उग्र, प्रचंड। (२) प्रकांड, महान।

उद्धना—क्रि. अ. [सं. उद्धरण] उड़ना, बिखरना, ऊपर उठना।

उद्धरण—संज्ञा पुं. [सं] (१) ऊपर उठना। (२) मुक्त होना। (३) दशा अच्छी होना। (४) किसी पुस्तक आदि से उसका कुछ अंश नकल करना। (५) उखाड़ना।

उद्धरणी—संज्ञा स्त्री. [सं. उद्धरण+हि. ई (प्रत्य.)] (१) पाठ का अभ्यास। (२) अभ्यास, रटना।

उद्धरन—वि. [सं. उद्धरण, हि. उद्धार, उद्धरना] उद्धार करनेवाले। उ.—(क) गए तरि लै नाम केते, पतित हरि-पुर-धरन। जासु पद-रज-परस गौतम-नारि-गति उद्धरन—१-३०८। (ख) भक्तबछल कृपाकरन असरन-सरन पतित-उद्धरन कहै बेद गाई-८-९। (ग) देखि देखि री नंदकुल के उधारी। मातु पितु दुरित उद्धरन, ब्रज उद्धरन धरनि उद्धरन सिर मुकुट धारी—१४०३।

उद्धरना—क्रि. स. [सं. उद्धरण] उद्धार करना। क्रि. अ.—मुक्त होना, छूटना।

उद्धरि—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उद्धरना] तर गयी, मुक्त हो गयी। उ.—जे पद परसि सिला उद्धरि गई, पांडव गृह फिरि आए—५६८।

उद्धरिहौ—क्रि स. [सं. उद्धरण, हि. उद्धार] उबरोगे, मुक्त होगे, छुटकारा पाओगे। उ.—स्तुति पढि कै तुम नहि उद्धरिहौ। विद्या बेचि जीविका करिहौ —४-५।

उद्धरौ—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उद्धरना] उद्धार करो, उबारो। उ.—और जो मो पर किरपा करौ। तौ सब जीवनि कौ उद्धरौ—७-२।

उद्धव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्सव। (२) कृष्ण के सखा, ऊधव।

उद्धार—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) मुक्ति, छुटकारा, मरण, निस्तार, दुख-निवृत्ति। उ.—(क) अब मिथ्या तप, जाप ज्ञान सब, प्रगट भई ठकुराई। सूरदास उद्धार सहज गति, चिंता सकल गँवाई—१-२०७। (ख) धन्य भाग्य, तुम दरसन पाए। मम उद्धार करन तुम आए—१-३४१। (ग) ग्वाल गोप बिहाल गाई करत कोटि पुकार। राख गिरिधर लाल सूरज नाथ बिनु उद्धार—सा. ३०। (२) सुधार, उन्नति। (३) ऋण से छूटना।

उद्धारन—संज्ञा. पुं. [सं. उद्धार] मुक्ति, छुटकारा, निवृत्ति, निस्तार।

उद्धारना—क्रि. स. [सं. उद्धार] मुक्त करना, छुटकारा देना।

उद्धारि—क्रि. स. [सं. उद्धार, हि. उद्धारना] उद्धार करके, मुक्त करके। उ.—संखासुर मारि कै, बेद उद्धारि कै, आपदा चतुरमुख की निवारी—८-१७।

उद्धारिहौ—क्रि. स. [सं. उद्धार, हि उद्धारना] उद्धार या मुक्त करूँगा, छुटकारा दूँगा। उ.—कंस कौ मारिहौ, धरनि निरवारिहौ, अमर उद्धारिहौं उरग-धरनी—५५१।

उद्धारे—क्रि. स. [सं. उद्धार, हि. उद्धारना] तार दिये, मुक्त किये। उ.—दोउ जन्म ज्यौ हरि उद्धारे। सो तौ मै तुमसौ उच्चारे—१०-२।

उद्धृत—वि. [सं.] किसी पुस्तक-पत्र आदि से नकल किया हुआ (अंश)।

उद्बुद्ध—वि. [सं.] (१) खिला हुआ, विकसित। (२) जगा हुआ। (३) चेतयुक्त, सजग।

उद्बुद्धा—संज्ञा स्त्री. [सं.] उपपति से स्वयं प्रेम करने वाली परकीया नायिका।

उद्बोधक—वि. [सं.] (१) ज्ञान करानेवाला, सचेत करनेवाला। (२) सूचित करनेवाला। (३) उत्तेजित करनेवाला। (४) जगानेवाला।

उद्बोधन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चिताना, ध्यान दिलाना। (२) उत्तेजित करना। (३) जगाना।

उद्बोधिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] उपपति की इच्छा समझ कर प्रेम करनेवाली परकीया नायिका।

उद्भट—वि. [सं.] (१) श्रेष्ठ, उत्तम। (२) उच्च विचार वाला।

उद्भव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पत्ति, सृष्टि। (२) वृद्धि, उन्नति, बढ़ती।

उद्भावन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मन में विचार लाना। (२) उत्पन्न होना।

उद्भावना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कल्पना। (२) उत्पत्ति।

उद्भास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश, आभा। (२) मन में कोई बात जन्मना।

उद्भासित—वि. [सं.] (१) उत्तेजित। (२) प्रकट, प्रकाशित। (३) प्रतीति, विदित।

उद्भ्रांत—वि. [सं.] (१) घूमता या चक्कर खाता हुआ। (२) भूला-भटका। (३) भौचक्का।

उद्भिज—संज्ञा पुं. [सं. उद्भिज] पृथ्वी से पैदा होनेवाले प्राणी, वनस्पति।

उद्भिद—संज्ञा पुं. [सं.] भूमि से पैदा होनेवाले प्राणी, वनस्पति।

उद्भूत—वि. [सं.] उत्पन्न।

उद्भेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाशन। (२) एक काव्यालंकार जिसमें गुप्त बात लक्षित की जाय।

उद्भेदन—संज्ञा पुं. [सं.] तोड़ना, फोड़ना, भेदना।

उद्यत—वि. [सं.] तैयार, उतारू, प्रस्तुत। (२) ताना हुआ।

उद्यम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयास, प्रयत्न, उद्योग। उ.—(क) अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरै। अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरे—१-१०५। (ख) साधन, जंत्र, मंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ खोई। जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहि कोई—१-२६२। (ग) मम सरूप जो सब घट जान। मगन रहै तजि उद्यम आन—१-१३। (२) कामधंधा, व्यापार।

उद्यमी—वि. [सं. उद्यमिन्] परिश्रमी, उद्योगी।

उद्यान—संज्ञा पुं. [सं.] बगीचा, उपवन।

उद्यापन—संज्ञा पुं. [सं.] किसी व्रत के समाप्त हो जाने पर किये जानेवाले हवन, दान आदि कार्य।

उद्युक्त—वि. [सं.] तैयार, तत्पर।

उद्योग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयत्न, प्रयास। (२) काम-धंधा।

उद्योगी—वि. [सं. उद्योगिन्] प्रयत्न करनेवाला।

उद्योत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रकाश, उजाला। उ.—(क) सूरदास प्रभु तौ जीवहिं देखहि रविहि उद्योत—३३६०। (ख) दामिनी थिर घमघटा बर कबहूँ है एहि भाँति। कबहुँ दिन उद्योत कबहूँ होत अति कुहुराति—सा. उ. ५। (२) चमक, झलक।

उद्योतन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चमकना या चमकाना, प्रकट या व्यक्त करना।

उद्रेक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बढ़ती, अधिकता। (२) एक काव्यालंकार जिसमें वस्तु के कई गुणों या दोषों का एक के आगे मन्द हो जाना वर्णित होता है।

उद्विग्न—वि. [सं.] घबराया हुआ।

उद्विग्नता—संज्ञा स्त्री. [सं.] घबराहट, व्याकुलता या व्यग्रता।

उद्वेग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घबराहट। (२) आवेश। (३) झोंक। (४) रसशास्त्र में वियोग की व्याकुलता।

उद्वेजन—संज्ञा पुं. [सं.] घबड़ाना।

उधर—क्रि. वि. [सं. उतर] उस ओर, दूसरी ओर।

उधड़ना—क्रि. अ. [सं. उद्धरण=उखड़ना] उखड़ना, तितर-बितर होना। (२) फटना, अलग होना।

उधरत—क्रि. स. [उद्धरण, हि. उधरना] उद्धार पाता है, मुक्त होता है, छूटता है। उ.—धर्म कहैं, सर-सयन गंग-सुत, तेतिक नाहि सँतोष। सुत सुमिरत आतुर द्विज उधरत, नाम भयौ निर्दोष—१-२१५। (ख) उधरत लोग तुम्हारे नाम—११-५।

उधरना—क्रि. स. [सं.उद्धरण] मुक्तहोना, छुटकारा पाना। क्रि. स.—मुक्त करना, छुटकारा देना।

उधराइ—क्रि. अ. [हि. उधराना] हवा में इधर उधर उड़कर, बिखरकर। उ.—लोक सकुच मर्यादा कुल की छिन ही में बिसराइ। ब्याकुल फिरति भवन बन जहँ तहँ तूल आक उधराइ—पृ० ३२१।

उधराना—क्रि. अ. [सं. उद्धरण] (१) हवा में इधर-उधर उड़ना, बिखरना। (२) उधम मचाना।

उधरी—क्रि. स. स्त्री. [सं. उद्धरण, हिं. उद्धार, उधरना] उद्धार पा गयी, मुक्त हो गयी। उ.—गीध ब्याध-गज-गनिका उधरी, लै लै नाम तिहारौ—१-१७८।

उधरै—क्रि. अ. [सं. उद्धरण, हि. उधरना] उद्धार या छुटकारा पावे, मुक्त हो। उ.—(क) भक्त सकामी हू जो होइ। क्रम-क्रम करिकै उधरै सोइ—३-१३। (ख) राज-लच्छमी मद नहि होइ। कुल इकीस लौ उधरै सोइ। ७-२। (ग) बिना गुन क्यौ पुहुमि उधारै यह करत मन डौर—२६०६।

क्रि. स.—उद्धार या मुक्त करे, छुटकारा दिलावे।

उ.—सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं लै उधरै —६-६।

उधरौं—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हिं. उद्धरना] उद्धार करूँ, उबारूँ, रक्षा करूँ। उ.—छीर-समुद्र-मध्य तैं यौं हरि दीरघ बचन उचारा। उधरौं धरनि, असुर-कुल-मारौं, धरि नर-तन अवतारा—१०-४।

उधर्यौ—क्रि. स. [सं. उद्धारण, हिं. उधरना] उद्धार या छुटकारा पाया, मुक्त हुआ। उ.—तिन मैं कहौं एक की कथा। नारायन कहि उधर्यौ जथा——६-३।

उधार—संज्ञा पुं. [सं. उद्धार] उद्धार, मुक्ति, निस्तार। उ.—इहि सराप सौं मुक्ति ज्यौं होइ। रिषि कृपालु भाषौ अब सोइ। वह्यौ जुधिष्ठिर देखै जोइ। तब उद्धार नृप तेरौ होइ—६-७।

संज्ञा पुं. [सं. उद्धार=बिना व्याज का ऋण] ऋण।

उधारक—वि. [सं. उद्धारक] मुक्त करनेवाला।

उधारन—संज्ञा पुं. [सं. उद्धार, हिं. उधारना] उद्धार करनेवाले, उद्धारक। उ.—(क) अब कहाँ लौं कहौं एक मुख या मन के कृत काज। सूर पतित, तुम पतित उधारन, गहौ विरद की लाज—१-१०२। (ख) काँपन लागी धरा, पाप तैं ताड़ित लखि जदुराई। आपुन भए उधारन जग के, मै सुधि नीके पाई —१-२०७।

उधारनहारे—संज्ञा पुं. [हि. उधारन+हारे] उद्धारक, उद्धार करनेवाले। उ.—अब मोसौं अलसात जात हौ अधम-उधारनहारे—१-२५।

उधारना—क्रि. स. [सं. उद्धरण] मुक्त करना, उद्धार करना।

उधारा—संज्ञा पुं. [सं. उद्धार] उद्धार, मुक्ति, छुटकारा। उ.—सूरदास सब तजि हरि भजिये जब कब करै उधारा—१०उ.-३६।

उधारि—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हिं. उधारना] उद्धारो, मुक्त करो, पार लगाओ। उ.—अब कै नाथ, मोहि उधारि। मगन हौं भव-अंबुनिधि मै, कृपासिंधु मुरारि—१-६६।

उधारी—वि. [सं. उद्धारिन] उद्धार करनेवाला, उद्धारक। उ.—देखि देखि री नंदकुल के उधारी। मातु पितु दुरित उद्धरन ब्रज उद्धरन धरनि उद्धरन सिर मुकुट-धारी—१४०३।

उधारे—क्रि. स. बहु. [सं. उद्धरण, हि उद्धार] तार दिये, मुक्त किये, (उनका) उद्धार किया। उ.— क) गज, गनिका अरु बिप्र अजामिल, अगनित अधम उधारे—१-१२५। (ख) अवगाहौ पूरन गुन स्वामी, सूर से अधम उधारे—१-१६७।

उधारैं—क्रि. स. [सं. उद्धरण, हि. उधारना] उद्धार या मुक्त करे। उ.—जो-जो मुख हरि-नाम उचारै। हरि-गन तिहि तिहि तुरत उधारैं—६-४।

उधारै—क्रि. स. [सं. उद्धार, हि. उद्धारना] उद्धार करे, मुक्त करे, छुटकारा दिलावे। उ.—तुम बिनु करुना-सिंधु और को पृथी उधारै—३-११।

उधारौं—क्रि. स, [सं. उद्धरण, हि. उधारना] उद्धार करूँ, मुक्त करूँ। उ.—नारद-साप भए जमलार्जुन, तिनकौं अब जु उधारौं—१०-३४२।

उधारौ—क्रि. स. [सं. उद्धारण, हि. उधारना] उद्धार करो, मुक्त करो। उ.—(क) संतत दीन, महा अपराधी, काहैं सूरज कूर बिसारौ? सोकहि नाम रह्यौ प्रभु तेरौ, बनमाली, भगवान, उधारौ—१-१७२। (ख) प्रभु मेरे मोसौ पतित उधारौ—१-१७८। (ग) नाथ सकौ तौ मोहि उधारौ—१-१३१।

उधार्यौ—क्रि. स. [हि. उधारना] उद्धारा, मुक्त किया, रक्षा की। उ.—(क) संकट तैं प्रह्लाद उधार्यौ, हरिनाकसिपु-उदर नख फारी—१-२२। (ख) धरनी-धर विधि बेद उधार्यौ मधु सों सत्रु हयौ—२२६४।

उधेड़ना—क्रि. स. [सं. उद्धरण=उखाड़ना] (१) अलग करना, उचाड़ना। (२) सिलाई खोलना। (३) बिखराना।

उधेड़बुन—संज्ञा पुं. [हिं. उधेड़ना + बुनना] (१) सोच-विचार, ऊहापोह। (२) युक्ति सोचना।

उनंत—वि. [रा. उन्नयन] झुका हुआ।

उन—सर्व. [हि. 'उस' का बहु.] उन्होंने। उ.—उन

तौ करी पाछिले की गति, गुन तोरयौ बिच धार—१–१७५।

उनइ—क्रि. अ. [हि. उनवना] **छा जाना, घिरकर, उमड़कर**। उ.—आजु घन स्याम की अनुहारि। उनइ आए साँवरे ते सजनी देखि रूप की आरि—२८२६।

उनई—क्रि. अ. [हि. उनवना] **घिरी, छा गयी, उमड़ी**। उ.—माया देखत ही जु गई। ... । सुत-सतान-स्वजन-बनिता-रति, घन समान उनई। राखे सूर पवन पाखंड हति, करी जो प्रीति नई—१–५०।

उनईस—वि. [हि. उन्नीस] **बीस से एक कम**। उ.—जपत अठारहो भेद उनईस नहि बीसहू बिसो ते सुखहि पैहै—१२७८।

उनचास—वि. [स. एकोनपंचाशत; पा. एकोनपंचास, उनपंचास] **पचास से एक कम**।

उनतीस—वि. [स. एकोनत्रिंशत, पा. एकुंतीसा, उन्तीसा] **तीस से एक कम**।

उनतै—सर्व. [हिं. 'उस' का बहु. 'उन' + तै (प्रत्य.)] **उनसे**।

उनदा—वि. [सं. उन्निद्र] **नींद से भरा, उनींदा**।

उनदौहाँ—वि. [सं. उन्निद्र, हिं. उनीदा] **नींद से ऊँघता हुआ**।

उनमत—वि. [सं. उन्मत्त] **उन्मत्त, मतवाला**। उ—(क) निद्रा-बस जो कबहूँ सोवै। मिलि सो अविद्या सुधि-बुधि खोवै। उनमत ज्यो सुख-दुख नहि जानै। जागैं वहै रीति पुनि ठानै—४-१२। (ख) बहुरौ भरतहि दै करि राज। रिषभ ममत्व देह कौ त्याग। उनमत की ज्यौ विचरन लागे। असन-बसन की सुरतिहि त्यागे—५-२।

उनमत्त—वि. [सं. उन्मत्त] **मतवाला, मदांध**। उ.—माधौ जू, मन सबही बिधि पोंच। अति उनमत्त, निरंकुस, मैंगल, चितारहित, असोच—१-१०२।

उनमद—वि. [सं. उद्+मद] **उन्मत्त, मतवाला**।

उनमना—वि. [हि. अनमना] **उदास, खिन्न, उचाट चित्त का**।

उनमाथना—क्रि. स. [सं. उन्मथन] **मथना**।

उनमाथी—वि. [हि. उनमाथना] **मथनेवाला, बिलोनेवाला**।

उनमाद—संज्ञा पुं. [सं. उन्माद] **मतवालापन, पागलपन**। उ.—भानुतनन किसान ग्रह के रच्छपालक आप। मद्ध ठाढो होत नंदनंदन कर उनमाद—सा. ११६।

उनमान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अनुमान, ध्यान, समझ**। उ.—(क) कहिबे मैं न कछू सक राखी। बुधि बिबेक उनमान आपने मुख आई सो भाखी—३४६६। (ख) सुनि स्रवन उनमान करति हौ निगम नेति यह लखनि लखी री—२११३। (२) **अटकल**।

संज्ञा पुं. [सं. उद्+मान] (१) **नाप, थाह, परिमाण**। उ.—आगम निगम नेति करि गायौ, सिव उनमान न पायौ। सूरदास बालक रसलीला यह अभिलाष बढायौ। (२) **शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता**।

वि.—**तुल्य, समान**। उ.—(क) तुव नासापुट गात मुक्ताफल अधर बिंब उनमान। गंजाफल सबके सिर धारत प्रकटी मीन प्रमान। (ख) उरग-इंदु उनमान सुभग भुज पानि पदुम आयुध राजै—१-६६।

उनमानना—क्रि. स. [हि. उनमान] **अनुमान करना, सोचना, समझना**।

उनमीलत—वि.—[सं. उन्मीलित] **स्पष्ट, प्रकट, खुला हुआ**। उ.—बाँसुरी तें जान मोहो परो ना सुत सोह। सूर उनमीलत निहारो कहैं का मति भोह—सा. ७७।

संज्ञा पुं.—**एक काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं की बहुत अधिक समानता हो, पर केवल थोड़ी बात का ही उनमें भेद दिखायी दे**।

उनमुना—वि. [सं. अन्यमनस्क, हि. अनमना] **मौन चुप**।

उनमुनी—संज्ञा स्त्री. [सं. उन्मनी] **हठयोग की एक**

मुद्रा जिसमें भौं को ऊपर चढ़ाते और दृष्टि को नाक की नोक पर गडाते हैं।

उनमूलना—क्रि. स. [सं. उन्मूलन] उखाड़ना।

उनमेखना—क्रि. स. [सं. उन्मेष](१) आँख खुलना। (२) खिलना, फूलना।

उनमेद—संज्ञा पुं. [सं. उद्+मेद=चरबी] पहली वर्षा के पश्चात जल में उत्पन्न जहरीला फेन जिससे मछलियाँ मर जाती है, माँजा। उ.—इंद्री-स्वाद बिबस निसि बासर आपु अपुनपौ हारयौ। जल उनमेद मीन ज्यौं बपुरो पाँव कुल्हारो मार्यौ।

उनय—क्रि. अ. [हि. उनवना] झुकती है, लटक रही है।

उनयो—क्रि. अ. [हि. उनवना] छाये, घिर आये। उ—(क) आजु सखी अरुनोदय मेरे नैनन धोख भयौ। की हरि आजु पंथ यहि गौने कीधौं स्याम जलद उनयो—१६२८। (ख) नेक मोहि मुसुकात जानि मनमोहन मन सुख आन्यौ। मानो दव द्रुम जरत आस भयो उनयो अंबर पान्यो—२२७५।

उनरत—क्रि. अ. [हिं. उनरना] उठता है, उभडता है।

उनरना—क्रि. अ. [सं. उन्नरण] उठना, उभडना।

उनरी—क्रि. अ. [हि. उनरना] उमड़ी, उमड-उमड़ कर आयी।

उनरोगी—क्रि. अ. [हि. उनरना] उठोगी, उमडोगी, झुकोगी, प्रवृत्त होगी।

उनवत—क्रि. अ. [हि. उनवना] घिरकर, चारो ओर छा जाती है।

उनवना—क्रि. अ. [सं. उन्नमन] (१) झुकना,लटकना। (२) छा जाना, घिर आना। (३) ऊपर गिरना, टूट पड़ना।

उनवर—वि. [सं. ऊन=कम] कम, तुच्छ।

उनवा—क्रि. अ. [हि. उनवना] टूट पडा, ऊपर आ पड़ा।

उनवान—संज्ञा पुं. [सं. अनुमान] सोच, ध्यान, समझ।

उनसठ—वि. [सं. एकोनषष्ठि, प्रा. एकुन्नसट्ठि, उनसट्ठि] पचास और नौ।

उनहार—वि. [सं. अनुसार प्रा. अनुहार] समान, तुल्य, सदृश। उ.—नैनन निपट कठिन ब्रत ठानी।...। समुझि समुझि उनहार स्याम को अति सुन्दर बर सारंगपानी। सूरदास ए मोहि रहे अति हरि मूरति मन मोँझ समानी—३०३७।

उनहारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. उनहार] समानता, एकरूपता।

वि.—समान, सदृश। उ. तामै एक छबीलो सारंग अध सारंग उनहारि—सा. उ. २।

उनहीं—सर्व. ['उस' का बहु.] उन्हीं।

उनाना—क्रि. स. [सं. उन्नमन] (१) झुकाना। (२) प्रेरित या प्रवृत्त करना। (३) सुनना, ध्यान देना (४) आज्ञा मानकर काम करना।

उनि—सर्व. [हि. उन] उन्होंने। उ.—कह्यौ, सरमिष्ठा सुत कहँ पाए ? उनि कह्यौ, रिषि किरपा तैं जाए—९१७४।

उनिहारि—सज्ञा स्त्री. [सं. अनुसार, प्रा. अनुहारि] समानता, एकरूपता।

उनिहारी—वि. [सं. अनुसार, प्रा. अनुहार, हि. उनहार] सदृश, समान। उ.—तब चिंतामनि चितै चित्त इक बुधि बिचारी। बालक बच्छ बनाइ रचे वेही उनिहारी—४९२।

उनिहारे—संज्ञा स्त्री. [स. अनुसार, प्रा. अनुहारि, हि. उनहार] समानता, एकरूपता।

उनींदा—वि. [सं. उन्निद्र] नींद से भरा हुआ, ऊँघता हुआ।

उनींदे—वि. बहु. [हि. उनींदा] नींद से भरे हुए, ऊँघते हुए। उ.—(क) बछरा-बृंद घेरि आगै करि जन-जन संग बजाए। जनु बन कमल सरोवर तजिकै, मधुप उनींदे आए—४३२। (ख) स्याम उनींदे जानि, मातु रचि सेज बिछाई। तापर पौढ़े लाल अतिहि मन हरष बढ़ाई—४३७।

उनै—सर्व. सवि. [हि. उन] उनसे, उनको।

क्रि.अ [सं. उन्नमन,हि. उनवना] उमड़ उमड़ कर, घिरकर, चारों ओर छाकर। उ.—उनै घन बरषत चव उर सरित सलिल भरी—२८१४।

उन्नत—वि. [सं] (१) ऊँचा, ऊपर उठा हुआ। उ.—(क) गोविंद कोपि चक्र कर लीन्हों।……। कछुक अंग तैं उड़त पीतपट, उन्नत बाहु बिसाल—१-२७३। (ख) आवहु बेगि सकल दुहुँ दिसि तैं कत डोलत अकुलाने। सुनि मृदु बचन देखि उन्नत कर, हरषि सबै समुहाने-५०३। (२) बड़ा हुआ। (३) श्रेष्ठ, बड़ा।

क्रि. वि.—ऊपर की ओर। उ.—हुतासन ध्वज उमँगि उन्नत चलेउ हरि दिसि वाउ—२७१५।

उन्नति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) ऊँचाई, चढ़ाव। (२) वृद्धि, बढ़ती।

उन्नाय—संज्ञा पु. [सं.] (१) ऊपर ले जाना, उठाना। (२) सोच-विचार।

उन्नायक—वि. [सं.] (१) ऊपर उठानेवाला। (२) बढ़ानेवाला।

उन्निद्र—वि. [सं.](१) निद्रा रहित। (२) जिसे निद्रा न आयी हो। (३) खिला हुआ, फूला हुआ।

उन्नैना—क्रि. अ. [सं. उन्नयन] झुकना।

उन्मत्त—वि. [सं.] (१) मतवाला, मदांध। उ.-ते दिन बिसरि गए इहाँ आए। अति उन्मत्त मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए—१-३२०। (२) जो आपे में न हो, बेसुध। (३) पागल, बावला, मतवाला।

उन्मत्तता—संज्ञा स्त्री. [सं.] मतवालापन।

उन्मनी—संज्ञा स्त्री. [सं.) हठयोग की एक मुद्रा जिसमें दृष्टि को नाक की नोक पर गड़ाते और भौंह को ऊपर चढ़ाते हैं

उन्माद—संज्ञा पुं. [सं.] (१)पागलपन। (२) एक संचारी भाव जिसमें वियोग, दुख आदि के कारण चित्त ठिकाने नहीं रहता।

उन्मादक—वि. [सं.] (१) पागल बनानेवाला। (२) नशा करनेवाला।

उन्मादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मतवाला करने की क्रिया। (२) कामदेव का एक बाण।

उन्मादी—वि. [सं. उन्मादिन्] उन्मत्त, पागल।

उन्मार्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुमार्ग। (२) बुरा आचरण।

उन्मार्गी—वि. [सं. उनमार्गिन्] बुरे आचरणवाला, कुमार्गी।

उन्मीलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नेत्र का खुलना। (२) खिलना, विकसित होना।

उन्मीलना—क्रि. स. [सं. उन्मीलन] खोलना।

उन्मीलित—वि. [सं.] खुला हुआ

संज्ञा पुं.—एक काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं की बहुत अधिक समानता वर्णित हो और अंतर केवल एक छोटी बात का रह जाय।

उन्मुख—वि. [सं.] (१) ऊपर मुँह करके ताकता हुआ। (२) उत्सुक। (३) तैयार, प्रस्तुत।

उन्मूलक—वि. [सं.] जड़ से नाश करनेवाला।

उन्मूलन—संज्ञा पुं. [सं.] जड़ से नाश करना।

उन्मेख—संज्ञा पुं. [उन्मेष] (१) आँख का खुलना। (२) फूल खिलना। (३) प्रकाश।

उन्मेष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आँख का खुलना। (२) खिलना। (३) थोड़ा प्रकाश।

उन्हानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. उन्हारि] समता, बराबरी।

उपंग—संज्ञा पुं. [सं. उपांग] (१) एक बाजा, नस तरंग। उ.—(क) उघटत स्याम नृत्यत नारि। धरे अधर उपंग उपजैं लेत हैं गिरिधारि—पृ. ३४६ (४५)। (ख) बीन मुरज उपंग मुरली झाँझ झालरि ताल। पढ़त होरी बोलि गारी निरखि कै ब्रजलाल—२४१५। (ग) डिमडिमी पतह ढोल डफ बीणा मृदंग उपंग चंग तार। गावत है प्रीति सहित श्रीदामा बाढ़्यौ है रंग अपार—२४४६ (२) ऊधव के पिता एक यादव।

उपँगसुत } संज्ञा पुं. [सं.] उपंग का पुत्र, ऊधव जो
उपंगसुत } श्री कृष्ण का सखा था। उ.—(क) हरि गोकुल की प्रीति चलाई। सुनहु उपँगसुत मोहि न बिसरत ब्रजनिवास सुखदाई। (ख) कहत हरि सुन उपँगसुत यह कहत हौं रसरीति—१६१६।

उपंत—वि. [सं. उत्पन्न, प्रा. उप्पन्न] उत्पन्न, पैदा, जन्मा।

उप—[सं] समीपता, सामर्थ्य, न्यूनता आदि अर्थों का द्योतक एक उपसर्ग।

उपकरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधन, सामग्री। (२) छत्र चँवर आदि राजचिह्न।

उपकरन—संज्ञा पुं. [सं. उपकरण] सामग्री, सामान।

उपकरना—क्रि. स. [सं उपकार] भलाई करना।

उपकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भलाई। (२) लाभ।

उपकारिनि—संज्ञा स्त्री. [सं. उपकारिणी] उपकार करनेवाली। उ.—तोसी नहीं और उपकारिनि यह बसुधा सब बुधि करि हेरी—२७५२।

उपकारी—वि. [सं. उपकारिन्] (१) भलाई करनेवाला। (२) लाभ पहुँचाने वाला।

उपकूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किनारा, तट। (२) किनारे या तट की भूमि।

उपक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कार्यारंभ। (२) भूमिका। (३) तैयारी।

उपक्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आरंभ, उठान। (२) तैयारी। (३) भूमिका।

उपक्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] भलाई।

उपखान—संज्ञा पुं. [सं. उपाख्यान] पुरानी कथा, पुराना वृत्तांत। उ.—मोसा बात सुनहु ब्रजनारि। एक उपखान चलत त्रिभुवन मे तुमसौं आजु उघारि—१०६९।

उपगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्राप्ति। (२) ज्ञान।

उपचय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वृद्धि, उन्नति। (२) संचय।

उपचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सेवा, पूजा। (२) चिकित्सा।

उपचरना—संज्ञा पुं. [सं. उपचरण] (१) पास जाना। (२) सेवा या पूजा करना।

उपचार—संज्ञा पुं. [सं.] चिकित्सा, दवा, इलाज। उ.—(क) जा कारन तुम यह बन सेयौ, सो तिय मदन-भुअगम खाई। · ·। ताहि कछू उपचार न लागत, कर मीड़ैं सहचरि पछिताई—७८८। (ख) दिसिअति कलिंदी अति कारी। अहो पथिक कहियो उन हरि सो भई बिरह-ज्वर जारी।······। तट बारू उपचार चूर जल परी प्रसेद पनारी—२७२८। (ग) आपुन को उपचार करौ कछु तब औरन सिख देहु। बड़ो रोग उपज्यौ है तुमको मौन सबारे लेहु—३०१३। (घ) आगम सुख उपचार बिरह ज्वर बासर ताप नसावते—२७३५। (२) सेवा। (३) व्यवहार, प्रयोग। (४) पूजा के सोलह अंग—आवाहन, आसन, अर्घपाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गंध (चंदन), पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा, वंदना। (५) खुशामद। (६) घूस।

उपचारना—क्रि. स. [सं. उपचार] (१) काम में लाना। (२) विधान करना।

उपचारे—क्रि. स. [हि. उपचारना] (१) चिकित्सा करे, इलाज करे। उ.—बिरही कहाँ लौ आपु सँभारे।······। सूरदास जाके सब अँग बिछुरे केहि बिधा उपचारे—३१८९। (२) विधान करे। उ.—घर घर ते आई ब्रज सुन्दरि मंगल काज सँवारे। हेम कलस सिर पर धरि पूरन काम मंत्र उपचारे। (३) काम मे लाये, व्यवहार करे।

उपचित—वि. [सं.] (१) बढ़ा हुआ। (२) संचित।

उपज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पत्ति, पैदावार। (२) नयी उक्ति, सूझ। (३) मनगढ़ंत। (४) गान में राग की निश्चित तानों के अतिरिक्त नयी तानें अपनी ओर से मिलाना। उ.—उर बनमाला सोहै सुन्दर बर गोपिन के संग गावै। लेत उपज नागर-नागरि संग बिच बिच तान सुनावै—पृ. ३५१-(७०)।

उपजत—क्रि. अ. [हि. उपजना] उत्पन्न होता है, पैदा होता है, मिलता है। उ.—मोहन के मुख ऊपर वारी। देखत नैन सबै सुख उपजत, बार बार तातैं बलिहारी—१-३०।

उपजति—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उपजना] पैदा होती है, उत्पन्न होती है। उ.—चितवत चलत अधिक रुचि उपजति, भँवर परति सब अंग—६२८।

उपजना—क्रि. अ. [सं. उपज] उगना, पैदा होना।

उपजाइ—क्रि. अ. [हि. उपजाना] (१) उत्पन्न करता है, पैदा करके। उ.—यह बर दै हरि कियौ उपाइ। नारद-मन संसय उपजाइ—१-२२६। (२) ध्यान में लगाकर। उ.—करौ जतन, न भजौ तुमकौ, कछुक

मन उपजाइ । सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ—१-४५ ।

उपजाई—क्रि. स. स्त्री. [हिं. 'उपजना' का स. रूप, 'उपजाना'] उत्पन्न की, पैदा की । उ.—अजहुँ लौं मन मगन काम सौं, बिरति नाहि उपजाई—१-१८७।

उपजाऊँ—क्रि. स. [हिं. उपजाना] उत्पन्न या पैदा करूँ । उ.—संकट परें जो सरन पुकारौं, तौ छत्री न कहाऊँ । जन्महि तैं तामस आराध्यौ, कैसैं हित उपजाऊँ—९-१३२ ।

उपजाऊ—वि. [हिं. उपज+आऊ (प्रत्य.)] जिसमें अच्छी उपज हो, उर्वरा ।

उपजाए—क्रि. स. [हिं. उपजाना ('उपजना' का स. रूप)] (१) उत्पन्न किये, पैदा किये । उ.—गो सुत अरु नर-नारि मिले अति हेत लाइ गई । प्रेम सहित वे मिलत हैं जे उपजाए आजु—४३७ । (२) प्रदान किया, दिया । उ.—गिरि कर धारि इंद्र-मद मर्यौ, दासनि सुख उपजाए—१-२७ ।

उपजाना—क्रि. स. [हिं. 'उपजना' का सक.] उत्पन्न करना ।

उपजाया—क्रि. स. भूत. [हिं. उपजाना] उत्पन्न किया, रचा । उ.—पंचतत्व तैं जग उपजाया—१०-३ ।

उपजायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. 'उपजना' का स. रूप 'उपजाना'] उत्पन्न किया, पैदा किया । उ.—नर-तन, सिंह-बदन, बपु कीन्हौ, जन लगि भेष बनायौ । निज जन दुखी जानि भय तैं अति, रिपु हति, सुख उपजायौ—१-१६० ।

उपजावत—क्रि. स. [हिं. 'उपजना' का स. रूप 'उपजाना'] उत्पन्न करता है, पैदा करता है, स्थिति-विशेष उपस्थित करता है । उ.—(क) मन्त्री काम-क्रोध निज, दोऊ अपनी-अपनी रीति । दुबिधा-दुंद रहै निसि-बासर, उपजावत बिपरीति—१-१४१ । (ख) नँदनँदन बिनु कपट कथा एकत कहि रुचि उपजावत—२६८६ ।

उपजावहु—क्रि. स. [हिं. उपजाना] उत्पन्न करो, पैदा करो । उ.—तारी देहु आपने कर की परम प्रीति उपजावहु—१०-१७९ ।

उपजावै—क्रि. स. [हिं. उपजना का स. रूप उपजाना] उत्पन्न करता है । उ.—(क) परम स्वाद सबही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै—१-२ । (ख) पुरुष वीर्य सौं तिय उपजावै—३-१३ । (ग) मन मे रुचि उपजावै, भावै, त्रिभुवन के उजियारे—४१९ ।

उपजि—क्रि. अ. [सं. उपज, हिं. उपजना] उत्पन्न होकर, पैदा होकर । उ.—उपजि परयौ, सिसु कर्म-पुन्य-फल, समुद-सीप ज्यौं लाल—१०-१३८ ।

मुहा—उपजि परी—सामने आयी, ज्ञात हुई, जान पड़ी । उ.—तनु आत्मा समर्पित तुम कहँ पाछे उपजि परी यह बात—१० उ.-११ ।

उपजीं—क्रि. अ. बहु. [हिं. उपजना] जन्मीं, पैदा हुई । उ.—दच्छ के उपजी पुत्री सात—४-३ ।

उपजी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. उपजना] उत्पन्न हुई, पैदा हुई । (क) भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन विषया मैं दीनौं—१-६५ । उ.—(ख) काढ़ि काढ़ि थाक्यौ दुस्सासन, हाथनि उपजी लाज—१-२५५ । (ग) विषय-विकार दवानल उपजी, मोह-ब्यारि लई —१-२९६ । (घ) सूरदास मोहन मुख निरखत उपजी सकल तन काम गुँभी—१४४६ ।

उपजे—क्रि. अ. बहु. [हिं. उपजना] (१) उत्पन्न हुए, जन्मे, पैदा हुए । उ.—दस सुत मनु के उपजे और । भयौ इच्छवाकु सबनि सिरमौर—९-२ । (२) उपजने पर, उत्पन्न होने पर । उ.—समुझि न परत तुम्हारी ऊधो । ज्यौं त्रिदोष उपजे जक लागत बोलत बचन न सूधो—३०१३ ।

उपजैं—संज्ञा पुं. [सं. उपज] गाने में राग की निश्चित तानों के अतिरिक्त नयी तानें मिलाना । उ.—धरि अधार उमंग उपजैं लेत हैं गिरिधारि—पृ. ३४६ (४५) ।

उपजै—क्रि. अ. [हिं. उपजना] उपजता है, उत्पन्न होता है । उ.—(क) जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति—१-१२६ । (ख) प्रेम-कथा अनुदिन सुनै (रे) तऊ न उपजै ज्ञान—१-३२५ । (ग) ज्ञानी-संगति उपजै ज्ञान—३-१३ ।

उपजैहै—क्रि. स. [हिं उपजाना] उत्पन्न करेगा। उ.—बान सखी सुत है पुत्री के मदन बहुत उपजैहै —सा. ८१।

उपजौ—क्रि. अ. [हिं. उपजना] उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ। उ.—अब मेरी राखौ लाज मुरारी। संकट मैं इक संकट उपजौ, कहै मिरग सौ नारी—१-२२१।

उपज्यौ—क्रि. अ. [हि. उपजना] उत्पन्न किया हुआ। जन्मा, पैदा हुआ। उ.- (क) गनिका उपज्यौ पूत सो कौन कौ कहावै २-६। (ख) बड़ो रोग उपज्यौ है तुमको मौन सवारे लेहु—३०१३।

उपटना—क्रि. अ. [सं. उत्पट=पट के ऊपर अथवा उत्पतन+ऊपर उठना] (१) चिन्ह बनना, निशान पड़ना। (२) उखड़ना।

उपटाना—क्रि. अ. [हि. 'उपटना' का प्रे०] उबटन लगवाना।

क्रि. स. [सं. उत्पाटन] उखाड़ना।

उपटाय—क्रि. स. [हि. उपटाना] उखाड़कर, तोड़कर। उ.—द्विरद कौ दंत उपटाय (उपठाय) तुम लेत हौ उहै बल आज काहे न सँभारयौ—२६०२।

उपटारना—क्रि. स. [सं. उत्पटन] उठाना, हटाना।

उपटारि—क्रि. स. [हि. उपटारना] उठाकर, हटाकर। उ.—कोकिल हरि को बोल सुनाव। मधुबन तैं उपटारि (उपठारि) स्याम को यहि ब्रज लै करि आव —२८५१।

उपठाय—क्रि. स. [स. उत्पाटन, हिं. उपटाना] उखाड़ कर। उ. द्विरद को दंत उपठाय (उपटाय) तुम लेत हौ उहै बल आज काहे न सँभारयौ—२६०२।

उपठारि—क्रि. स. [सं. उत्पटन, हि. उपटारना] उठाकर, हटाकर। उ.—कोकिल हरि को बोल सुनाव। मधुबन से उपठारि (उपटारि) स्याम को यहि ब्रज लै करि आव—२८५१।

उपदंस—संज्ञा पुं. [सं. उपदंश] मद्य की ऊपरी वस्तु, चाट। उ.—राधिका हरि अतिथि तुम्हारे। अधर सुधा उपदंस सीक सुचि बिधु पूरन मुख बास सँचारे।

उपदेश—संज्ञा पुं. [सं] (१) हित की बात, शिक्षा। (२) दीक्षा, गुरुमंत्र।

उपदेशना—क्रि. स. [सं. उपदेश] (१) शिक्षा देना। (२) दीक्षा देना।

उपदेस—संज्ञा पुं. [सं उपदेश] शिक्षा। उ.—सतगुरु हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवारयौ—१-३३६।

उपदेसत—क्रि. स. [सं. उपदेश, हि उपदेशना] सिखाते हैं, शिक्षा देते हैं। उ.—(क) गोविन्द-भजन करौ इहि बार। संकर पारबती उपदेसत, तारक मंत्र लिख्यौ स्रुति-द्वार—२-३। (ख) जद्यपि अलि उपदेसत ऊधो पूरन ज्ञान बखानि। चित चुभि रही मदन मोहन की जीवन मृदु मुसुकानि—३२१४।

उपदेसना—क्रि. स. [सं. उपदेश+ना (प्रत्य.)] शिक्षा देना।

उपदेसैं—संज्ञा पुं. [हि. उपदेशना] उपदेश देने पर, उपदेशों से। उ.—जैसै अंधौ अंध कूप मैं गनत न खाल-पनार। तैसेहि सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि गे कै बार—१-८४।

उपदेसौं—क्रि. अ. [सं. उपदेश, हि. उपदेशना] उपदेश या शिक्षा दूँ, समझाऊँ। उ. - अब मैं याकौ दृढ़ देखौ। लखि बिस्वास, बहुरि उपदेसौं - ४-६।

उपदेस्यौ—क्रि. स. [हि. उपदेशना] शिक्षा दी, सिखलाया। उ.—तुम हमको उपदेस्यौ धर्म। ताको कछू न पायौ मर्म—१८१२।

उपद्रव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उधम, गड़बड़। उ.—इहाँ सिव-गननि उपद्रव कियौ—४-५। (२) उत्पात, हलचल, विप्लव।

उपधरना—क्रि. अ. [सं. उपधरण=अपनी ओर आकर्षित करना] अपनाना, शरण मे लेना।

उपधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सहारे की चीज। (२) तकिया, गेंडुआ। (३) प्रेम।

उपनंद—संज्ञा पुं. [स.] ब्रजाधिप नंद के छोटे भाई।

उपनना—क्रि. अ. [हि. उपजना] पैदा होना।

उपनय—संज्ञा पुं. [सं.] पास ले जाना।

उपनयन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पास ले जाना। (२) यज्ञोपवीत संस्कार।

उपना—क्रि. अ. [सं. उत्पन्न] पैदा होना।

उपनियाँ—क्रि. अ. [हि. उपनना] पैदा हुई, उपजी, उत्पन्न हुई, जन्मी। उ.—कुटिल भृकुटि, मुख की

निघि आनन, कल कपोल की छबि न उपनियाँ —१०-१०६ ।

उपनिषद्—संज्ञा पुं. [सं.] ब्राह्मण ग्रंथों के वे अंतिम भाग जिनमें आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध निरूपण मिलता है। इनकी संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है। कोई इन्हें १८ मानता है तो कोई १०८।

उपपत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मेल मिलाना, चरितार्थ होना। (२) युक्ति।

उपप्लव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्पात, हलचल। (२) विघ्न, बाधा।

उपबन—संज्ञा पुं. [सं. उपवन] (१) बाग, बगीचा। (२) छोटे-मोटे जंगल।

उपभोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वस्तु के व्यवहार का आनन्द। (२) सुख या विलास की वस्तु।

उपमा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सादृश्य, समानता, तुलना, मिलान। उ.—(क) सूरदास-प्रभु भक्त-बछल हैं, उपमा कौ न बियौ-१-३८। (ख) परम सुसील सुलच्छन जोरी, बिधि की रची न होइ। काकी तिनकौ उपमा दीजै, देह धरें धौ कोइ—९-४५। (ग) अजिर पद-प्रतिबिंब राजत चलत उपमा-पुंज। प्रति चरन मनु हेम बसुधा, देति आसन कंज-१०-२१८। (२) एक अलंकार जिसमें दो भिन्न वस्तुओं में समान धर्म बताया जाय।

उपमाइ—संज्ञा स्त्री. [सं.] उपमा, सादृश्य, तुलना, पटतर। उ.—मुक्तमाल बिसाल उर पर, कछु कहौं उपमाइ। मनौ तारा-गननि बेष्ठित गगन निसि रह्यौ छाइ —१०-२३४।

उपमान—संज्ञा पुं. [सं.] वह वस्तु जिस से उपमा दी जाय। उ.—प्रथम डार उपमान कहा मुख बैठी मंत्र सु डारो—सा. २०।

उपमेय—संज्ञा पुं. [सं.] वह वस्तु जिसकी उपमा दी जाय। उ.—(क) तीन दस कर एक दोऊ आप ही में दौर। पंच को उपमान लीनो दाव आपुन तौर—सा. १०१। (ख) भामिन आजु भवन में बैठी। मानिक निपुन बनाय नीकन में धनु उपमेय उमेठी—सा. ११२

उपयुक्त—वि. [सं.] ठीक, उचित।

उपयोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रयोग, व्यवहार। (२) योग्यता। (३) आवश्यकता।

उपर—क्रि. वि. [सं. उपरि, हिं. ऊपर] पर, ऊपर। उ.—(क) नैन कमल-दल बिसाल, प्रीति-बापिका मराल, मदन ललित बदन उपर कोटि वारि डारे—१०-२०५। (ख) सूर प्रभु नाम सुनि मदन तन बल भयो अंग प्रति छबि उपर रमा दासी —१८९४।

उपरना—संज्ञा पुं. [हिं. ऊपर+ना (प्रत्य.)] ओढ़ना, दुपट्टा, चद्दर। उ.—(क) पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहै (हो)—१-४४। (ख) लियो उपरना छीनि दूरि डारनि अटकायो—११२४।

क्रि. स. [सं. उत्पन्न] उखड़ना।

उपरफट—वि. [सं. उपरि+स्फुट] ऊपरी, इधर-उधर का, व्यर्थ का, निष्प्रयोजन। उ.—बाहँ तुम्हारी नैकु न छाँड़ौं, महर खीझिहैं हमकौं। मेरी बाहँ छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातैं। सूर स्याम नागर नागरि सौं करत प्रेम की घातैं—६८१।

उपरफट्ट—वि. [सं. उपरि + स्फुट] (१) ऊपर का, अलग का। (२) व्यर्थ का, निष्प्रयोजन।

उपरांत—क्रि. वि. [सं.] अनंतर, बाद।

उपराग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रंग। (२) वासना, विलास की इच्छा। (३) चन्द्र या सूर्य-ग्रहण। उ.—बिनु परवहि उपराग आजु हरि तुम है चलन कह्यौ। को जानै उहि राहु रमापति कत है सोध लह्यौ—२५२७।

उपरागा—संज्ञा पुं. [सं. उपराग] चन्द्र या सूर्यग्रहण।

उपराज—संज्ञा स्त्री. [हिं. उपज] पैदावार।

उपराजना—क्रि. स. [सं. उपार्जन] (१) पैदा करना, उपजाना। (२) बनाना, रचना। (३) उपार्जन करना।

उपराजा—क्रि. स. [हिं. उपराजना] रचा, बनाया।

उपराजी—क्रि. स. [हिं. उपराजना] पैदा की, उत्पन्न की। उ.—बाँधी सुरति सुहाग सबन को हरि मिलि प्रीति उपराजी—३०६४।

उपराजै—क्रि. स. [हिं. उपराजना] (१) उत्पन्न करे। (२) उपार्जन करे।

उँपराना—क्रि. अ. [सं. उपरि] (१) प्रकट होना। (२) उतराना।
क्रि. स.—उठाना, ऊपर करना।

उपराम—संज्ञा पुं. [सं.] ( ) त्याग, विरक्ति। (२) आराम, विश्राम। (३) छुटकारा।

उपराला—संज्ञा पुं. [हिं. ऊपर+ ला (प्रत्य.)] सहायता, रक्षा।

उपरावटा—वि. [सं उपरि+आवर्त्त] गर्व से सिर ऊँचा किये हुआ, अकडता हुआ।

उपराहना—क्रि. स. [देश.] बडाई करना।

उपराही—क्रि. वि. [हि. ऊपर] ऊपर।
वि.—श्रेष्ठ, बढकर।

उपरि—क्रि. वि. [स] ऊपर।

उपरी-उपरा—संज्ञा पुं. [हि ऊपर] (१) एक वस्तु के लिए कई आदमियों का प्रयत्न। (२) होड, स्पर्द्धा, प्रतियोगिता।

उपरैना—सज्ञा पुं. [हि. ऊपर+ना (प्रत्य.) दुपट्टा, चद्दर। उ.—(क) सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद उर, भुज चारि धरे—१०-८। (ख) तब रिस धरि सोई उत मुख करि झुके झाँक्यो उपरैना माथ—२७३६।

उपरैनी—सज्ञा स्त्री. [सं. उत् + परणी] ओढनी।

उपरोध—संज्ञा पु. [स.] (१) रुकावट, अटकाव। (२) ढकना, आड।

उपरौना—संज्ञा पुं. [हि. उपरना] दुपट्टा, चादर।

उपल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पत्थर। उ.—हिम के उपल सलाई अंत ते याके जुगुत प्रकासो—सा. १०५। (२) ओला। (३) मेघ।

उपलक्ष्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संकेत। (२) उद्देश्य।

उपलै—संज्ञा पुं. [स. उपल] पत्थर, उपल। उ.—इहि बिधि उपलै तरत पात ज्यौं, जदपि सैल अति भारत। बुद्धि न सकति सेतु रचना रचि, राम-प्रताप बिचारत—६-१२३।

उपवन—संज्ञा पुं. [सं.] बाग, फुलवारी। उ.—उपवन बन्यो चहूँधा पुर के अति ही मोको भावत—२५५९।

उपवना—क्रि. अ. [सं. उप + यमन] उड़ जाना, लोप हो जाना।
क्रि. अ. [सं. उदय] उगना, उदय होना।

उपवास—संज्ञा पुं. [सं.] भोजन न करना।

उपवीत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जनेऊ। (२) यज्ञोपवीत संस्कार।

उपशम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वासना को दबाना, इंद्रियों को वश में करना। (२) निवारण करना, दूर करना।

उपसंहार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समाप्ति। (२) पुस्तक का अंतिम अध्याय। (३) सार, सारांश।

उपसुद—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जो सुंद का छोटा भाई था। ये दोनों परस्पर युद्ध करके एक दूसरे के हाथ से मारे गये थे।

उपस्थान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सामने आना। (२) खडे होकर स्तुति या पूजा करना। (३) पूजा का स्थान। (४) सभा।

उपस्थित—वि. [सं.] (१) सामने या पास आया हुआ। (२) विद्यमान, मौजूद।

उपहार—संज्ञा पुं. [सं.] भेंट, नजराना। उ.—(क) सुन्दर कर आनन समीप, अति राजत रहिं आकार। जलरुह मनौ बैर बिधु सौं तजि मिलत लए उपहार—३८३। (ख) आये गोप भेंट लै लै के भूषन-बसन सोहाए। नाना बिधि उपहार दूध दधि आगे धरि सिर नाए।

उपहास—संज्ञा पुं [सं] (१) हँसी, ठट्ठा। (२) निंदा, बुराई। उ.—(क) निंदा जग उपहास करत, मग बंदीगन जस गावत। हठ, अन्याय, अधर्म सूर नित नौबत द्वार बजावत—१-१४१। (ख) सूरदास स्वामी तिहुँ पुर के, जग-उपहास डराइ—९-१६१। (ग) घेरि राखे हमहि नहि बूझे तुमहिं जगत में कहा उपहास तैहौ—२६०५। (घ) हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ। .... । गुरुजन कानि अग्नि चहुँदिसि नभ तरनि ताप बिनु देखे। पिवत धूम उपहास जहाँ तहँ अपयस स्रवन अलेखे—३०१४।

उपहासी—संज्ञा स्त्री. [सं. उपहास] (१) हँसी। (२) निंदा।

उपही—संज्ञा पुं. [हि. ऊपरा] अपरिचित या अजनबी व्यक्ति।

उपांग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंग का भाग। (२) तिलक, टीका। (३) एक प्राचीन बाजा।

उपाइ—संज्ञा पु. [सं. उपाय] (१) युक्ति, साधन, उपाय। उ.—(क) अबकी बार मनुष्य-देह धरि, कियौ न कछू उपाइ—१-१०५। (ख) यह बर दै हरि कियौ उपाइ। नारद मन-ससय उपजाइ—१-२२६। (२) शत्रु पर विजय पाने का साधन या युक्ति। उ.—जब तैं जन्म लियौ ब्रज-भीतर तब तैं यहै उपाइ। सूर स्याम के बल-प्रताप तैं, बन-बन चारत गाइ—५०८।

क्रि. स. [सं. उत्पन्न, पा. उप्पन्न, हिं. उपाना] उत्पन्न की, उपजायी। उ.—सकल जीव जल-थल के स्वामी चींटी दई उपाइ। सूरदास प्रभु देखि ग्वालिनी, भुज पकरे दोउ आइ—१०-२७८।

उपाई—संज्ञा पुं. [सं. उपाय] उपाय, युक्ति, साधन। उ.—(क) गुरु-हत्या मौतैं ह्वै आई। कह्यौ सो छूटै कौन उपाई—१-२६१। (ख) पृथ्वी हित नित करैं उपाई—१२-३।

क्रि. स. [सं. उत्पन्न, प्रा. उप्पन्न, हि. उपाना] (१) उत्पन्न की। उ.—(क) सूरदास सुरपति रिस पाई। कीड़ी तनु ज्यों पाँख उपाई—१०४१। (ख) ब्रह्मा मन सो भली न भाई। सूर सृष्टि तब और उपाई—३-७। (२) संपादन की, की। उ.—(क) तबहि स्याम इक युक्ति उपाई—३८३। (ख) सुने जदुनाथ इह बात तब पथिक सौं धर्मसुत के हृदय यह उपाई—१० उ.-५०। (ग) प्रीति तिनकी सुमुरि भय अनुकूल हरि सत्यभामा, हृदय यह उपाई—१० उ.-३१।

उपाउ—संज्ञा पुं. [सं. उपाय] युक्ति,तदबीर। उ.—सखी मिल करहु कछू उपाउ—सा. उ.-४०।

उपाऊँ—क्रि. स. [हि. उपाना] उत्पन्न करूँ, पैदा करूँ। उ.—(क) अब मैं उनकौं ज्ञान सुनाऊँ। जिहि तिहि बिधि बैराग्य उपाऊँ—१-२८४। (ख) जैसी तान तुम्हारे मुख की तैसिय मधुर उपाऊँ—पृ. ३११। (ग) सुनहु सूर प्यारी हृदय रस बिरह उपाऊँ—पृ. ३१२।

उपाए—क्रि. स. [हि. उपाना] उत्पन्न किये। उ.—तीनि पुत्र तिन और उपाए। दच्छिन राज करन सो पठाए—६-२।

उपाख्यान—संज्ञा पुं.[सं.] (१) प्राचीन कथा। (२) वृत्तांत। (३) कथा के अंतर्गत प्रासंगिक कथा।

उपाटत—क्रि. स. [हि. उपाटना] उखाड़ता है, नष्ट करता है, नोचता है। उ.—जन के उपजत दुख किन काटत? जैसे प्रथम अषाढ आँजु तृन, खेतिहर निरखि उपाटत—१-१०७।

उपाटना—क्रि. स. [सं. उत्पाटन] उखाड़ना।

उपाटि—क्रि. स. [हि. उपाटना] उखाड़ कर। उ.—तरुवर तब इक उपाटि हनुमत कर लीन्हौ—६-६६।

उपाटी—क्रि. स. [हि. उपाटना] उखाड़ या खोद ली। उ.—जोजन बिस्तार सिला पवन-सुत उपाटी—६-६६।

उपाती—संज्ञा स्त्री. [सं. उत्पत्ति] जन्म, उपज।

उपादान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रहण,स्वीकार। (२) ज्ञान, बोध। (३) इंद्रियनिग्रह।

उपादेय—वि. [सं.] (१) स्वीकार करने योग्य। (२) उत्तम, श्रेष्ठ। (३) उपयोगी।

उपाधा—संज्ञा पुं. [सं. उपाधि] उपद्रव, उत्पात। उ.—संगति रहति सदा पिय प्यारी क्रीड़त करत उपाधा। कोक कला वितपन्न भई है कान्ह रूप तनु आधा—१४३७।

उपाधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) छल, कपट। (२) कर्तव्य का विचार, धर्मचिंता। (३) प्रपंच, माया, झंझट। उ.—(क) मन-बच-कर्म और नहि जानत, सुमिरत और सुमिरावत। मिथ्याबाद-उपाधि-रहित ह्वै, बिमल-बिमल जस गावत—२-१७। उ.—(ख) क्रम-क्रम क्रम सों पुनि करै समाधि। सूर स्याम भजि मिटै उपाधि—२-२१। (४) प्रतिष्ठासूचक पद। (५) उपद्रव, उत्पात।

उपाधी—वि. [सं. उपाधिन्] उत्पात करनेवाला, उपद्रवी।

उपानत्—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जूता, पनही। (२) खड़ाऊँ।

उपानह—संज्ञा पु. [सं.] जूता।

उपाना—क्रि. स. [सं. उत्पन्न, पा. उप्पन्न] (१) पैदा करना, उपजाना। (२) विचार सूझना, सोचना। (३) करना।

उपाय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधन, युक्ति। (२) पास पहुँचना, निकट आना।

उपायन—संज्ञा पुं. [सं.] भेंट, उपहार।

उपाया—क्रि. स. [हिं. उपाना] उत्पन्न किया, रचा, बनाया। उ.—तुम्हारी माया जगत उपाया—१० उ.-१२३।

उपायौ—क्रि. स. [हि. उपाना] (१) किया, संपादन किया। उ.—(क) ता रानी सौ नृप-हित भयौ। और तियनि कौ मन अति तयौ। तिन सबहिनि मिलि मंत्र उपायौ। नृप त-कुँवरि कौं जहर पियायौ—६-५। (ख) धर्मपुत्र जब जज्ञ उपायौ द्विज मुख ह्वै पन लीन्हौ—१-२६। (२) उत्पन्न किया। उ.—(क) तिन प्रथमहि महतत्व उपायौ। तातैं अहंकार प्रगटायौ—३-१३। (ख) तातैं कीने और ब्रह्म-नाल उपायौ—४३७।

उपारत—क्रि. स. [हि. उपारना, उपाटना] उखाड़ते समय, उखाड़ने में। उ.—मंदराचल उपारत भयौ स्रम बहुत, बहुरि लै चलन कौ जब उठायौ—८-८।

उपारना—क्रि. स. [सं. उत्पाटन हि. उपाटना] उखाड़ना।

उपारि—क्रि. स. [हि. उपाटना, उपारना] उखाड़ कर, अलग करके। उ.—(क) स्वर्ग-पताल माहिं गम ताकौ, व हियै कहा बनाइ। केतिक लंक उपारि बाम कर, लै आवै उचकाइ—९-७४। (ख) कहौ तौ सैल उपारि पेड़ि तै, दै सुमेरु सौ मारौं—६-१०७। (ग) कंध उपारि डारिहौ भूतल सूर सकल सुख पावत—६-१३३।

उपारी—क्रि. स. [हि उपाटना, उपारना] उखाड़ ली। उ.—(क) सिव ह्वै क्रोध इक जटा उपारी। बीरभद्र उपज्यौ बलभारी—४-५। (ख) क्रुद्ध होइ इक जटा उपारी—६-५। (ग) पटक्यो भूमि फेरि नहिं मटक्यो लीन्हे दंत उपारी—२५६४।

उपारे—क्रि. स. [हि. उपारना, उपाटना] उखाड़ लिये। उ.—रजक धनुष जोधा हति दंतगज उपारे—२६०१।

उपारौं—क्रि. स. [हि. उपारना, उपाटना] उखाड़ूँ, नोचूँ, तोड़ूँ। उ.—(क) जारौं लंक छेदि दस मस्तक, सुर संकोच निवारौं। श्रीरघुनाथ-प्रताप-चरन करि, डर तै भुजा उपारौं—९-१३२। (ख) प्रबल कुवलिया दंत उपारौं—११६१।

उपारौ—क्रि. स. [हि उपाटना] उखाड लो, (किसी वस्तु से) अलग कर लो। उ.—गउ चटाइ, मम त्वचा उपारौ। हाड़नि कौ तुम बज्र सँवारौ—६-५।

उपार्जन—संज्ञा पुं. [सं.] पैदा करना, प्राप्त करना।

उपार्यौ—क्रि. स. [सं.उत्पाटन, हि. उपाटना, उपारना] उखाड़ लिया, नोच-खसोट लिया। उ.—बीरभद्र तब दच्छहि मार्यौ। अरु भृगु रिषि कौ केस उपार्यौ—४-५।

उपालंभ—संज्ञा पुं. [सं.] उलाहना।

उपाव—संज्ञा पुं. [सं. उपाय] उपाय, साधन, युक्ति। उ.—(क) अति उनमत्त मोह-माया-बस, नहिं कछु बात बिचारौ। करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ—१-१५२। (ख) कहौ पितु, मोसौ सोइ सतिभाव। जातै दुरजोधन-दल जीतौ, किहि बिधि करौं उपाव—१-२७५।

उपावै—क्रि. स. [हि. उपाना]उत्पन्न करें, रचे, बनावे। उ.—बहुरो ब्रह्मा सृष्टि उपावैं—१२-४।

उपास—संज्ञा पुं. [सं. उपवास] भोजन न करना, लंघन।

उपासक—वि. [सं] भक्त, सेवक।

उपासन—संज्ञा पुं. [सं.] सेवा, पूजा, आराधना। उ.—जौ मन कबहुँक हरि कौ जाँचै। आन प्रसंग-उपासन छाँडै, मन-बच-क्रम अपनै उर साँचै—२-११।

उपासना—संज्ञा स्त्री. [सं. उपासन] आराधना, पूजा।
क्रि. स.—पूजा-सेवा करना, भजना।
क्रि. अ. [सं. उपवास] निराहार रहना।

उपासी—वि. [सं. उपासिन्] सेवक, भक्त। उ.—(क) नाम गोपाल जाति कुल गोपक गोप गोपाल उपासी —३३१४। (ख) हम ब्रज बाल गोपाल उपासी —३४४२।

उपासे—क्रि. स. [हि. उपासना] भजे, सेवा की।

उपास्य—वि. [सं.] पूजा-सेवा के योग्य, पूज्य, सेव्य, आराध्य।

उपेंद्र—संज्ञा पुं. [सं. उप+इंद्र] वामन, विष्णु, कृष्ण।

उपेक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चित्त का हटना, विरक्ति। (२) घृणा, तिरस्कार।

उपै—क्रि. अ. [सं. उप+यमन, हिं उपवना] लोप होना, उड़ जाता है, विलीन होता है।

उपैना—वि. [सं. उ + पल्लव] खुला हुआ, नग्न।

क्रि. अ. [देश.] उड़ना, लोप हो जाना।

उपैनी—वि. स्त्री. [हि. उपैना] खुली हुई, नंगी, आच्छादन रहित। जय जय जय माधव-बेनी। जगहित प्रगट करी करुनामय, अगतिनि कौं गति दैनी। जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप, संग सजी अघ-सैनी। जनु ता लगि तरवारि त्रिविक्रय, धरि धरि कोप उपैनी—६-११।

उपैहौं—क्रि. स. [सं. उत्पन्न, पा. उप्पन्न, हि. उपाना] करूँगा, संपादन करूँगा। उ.—स्याम तुम्हारी कुसल जानि एक मंत्र उपैहौं—६३३(४)।

उफड़ना—क्रि. अ. [हि. उफनना] उबलना, उफान खाना।

उफनत—क्रि. अ. [सं. उत्+फेन, हि. उफनना] उबलता है, उफनता है। उ. - (क) उफनत छीर जननि करि व्याकुल इहि बिधि भुजा छुड़ाई—१०-३४२। (ख) एक दुहनी दूध जावत को सिरावत जाहि। एक उफनत ही चलीं उठि धरयौ नही उतारि—पृ. ३३६ (८४)। (ग) उतसहकंठा हरि सो बढ़ी। उफनत दूध न धरयौ उतारि। सीझो थूली चूल्हे दारि—१८०३।

उफनना—क्रि. अ. [सं उत्+फेन] (१) उबलना, उफान आना। (२) अंकित होना, चिह्न पड़ना।

उफनात—क्रि. अ. [हिं. उफनाना] (१) उबलता है, फेन उठता है। (२) उमड़ता है, हिलोरें मारता है।

उफनाना—क्रि. अ. [सं.उत्+फेन] (१) आँच या गरमी से फेना उठना। (२) हिलोरा मारना, उमडना।

उफनि—क्रि. अ. [हि. उफनना] उबलकर, उफान आकर फेना उठ कर, छिटक कर। उ.—छलकति तक्र उफनि अँग आवत नहि जानति तेहि कालहि सो—११८०।

उफान—संज्ञा पुं. [हि. उफनना] उबाल, फेना उठना।

उबट—संज्ञा पुं. [सं. उद्वाट] ऊबडखाबड़ मार्ग।

वि.—ऊँचा नीचा, ऊबड़खाबड़।

उबटन—संज्ञा पुं. [सं. उद्वर्त्तन, पा. उव्वटन] बटन, अभ्यंग। उ.—क्यौं हूँ जतन जतन करि पाए। तन उबटन तेल लगाए—१०-१८३।

उबटना—संज्ञा पुं. [हि. उबटन] सुगन्धित लेप, बटना। उ.—एक दुश्मत ते उठि चली।......। लेत उबटना त्यागो दूरि। भागन पाई जीवन मूरि।

क्रि. अ.—बटना मलना, उबटन लगाना।

उबटनो—संज्ञा पुं. [हि. उबटन] बटना, उबटन। उ.—तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते—२७०७।

उबटनौ—संज्ञा पु [हि. उबटन] उबटन, बटना, अभ्यंग। उ.—(क) तब महरि बाहँ गहि आनै। लै तेल उबटनौ सानै—१०-१८३। (ख) केसरि कौ उबटनौ बनाऊँ रचि रचि मैल छुड़ाऊँ—१०-१८५।

उबटि—क्रि. अ [हि. उबटना] बटना मलकर, उबटन लगाकर। उ.—(क) जननी उबटि न्हवाइ कै (सिसु क्रम सौं लीन्हे गोद—१०-४२। (ख) जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौ, पट-भूषन पहराइ—१०-८९। (ग) इक उबटि खौरि सिंगारि सखिअन कुँअरि चोरी आनियो—पृ. ३४८ (५८-१)।

उबरते—क्रि. अ. [हि. उबरना] मुक्त होते, बचते, छुटकारा पाते। उ.—यह कुमाया जो तबही वरते। तौ कत इन ये जिवत आजु लौं या गोकुल के लोग उबरते—२७३८।

उबरन—क्रि. अ. [हि. उबरना] उद्धार पाना, मुक्त होना। छुटकारा या निस्तार पाना। उ.—सुनि याके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो)। बहुत कहाँ लौ बरनिये,पुरुष न उबरन पावै (हो)—१-४४।

संज्ञा, स्त्री—रक्षा, बचाव, मुक्ति। उ.—बड़े भाग्य

है महर महरिके। लै गयौ पीठि चढ़ाइ असुर इक, कहा कहौ उबरन या हरि के—६०७।

उबरना—क्रि. स. [सं. उद्वारण, पा. उब्बारन] (१) मुक्त होना, छूटना। (२) बच रहना, बाकी बचना।

उबरा—वि. [हि. उबरना] (१) बचा हुआ। (२) जिसका उद्धार हुआ हो।

उबरिबो—क्रि. अ. [हि. उबरना] छुटकारा पाना, बच सकना। उ.—मिलहु लोकपति छाँड़ि कै हरि होरी है। नाहि उबरिबो निदान अहो हरि होरी है —२४१५।

उबरिहौ—क्रि. अ. [हि. उबरना] उद्धार, मुक्ति या छुटकारा पाओगे। उ.—उनकैं क्रोध भस्म ह्वै जैहौ, करौ न सीता चाउ। तब तुम काकी सरन उबरिहौ, सो बलि मोहि बताउ—९-७८।

उबरी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उबरना] मुक्त हुई, उद्धार हुआ, रक्षा हुई, बची। उ.—(क) सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी। सुमिरत पट कौ कोट बढ़यौ तब, दुखसागर उबरी—१-१६। (ख) सूरदास प्रभु सों यों कहियो केला पोष सँग उबरी बेरि—३२५८। (ग) जाति स्वभाव मिटै नहि सजनी अंतत उबरी कुबरी—३१८८।

वि. स्त्री.—(१) मुक्त, जिसका उद्धार हुआ हो। (२) बची हुई, शेष।

संज्ञा स्त्री. [सं. विवर, हि. ओबरी] कोठरी, छोटा कमरा। उ.—बिलग मति मानहु ऊधो प्यारे। वह मथुरा काजरि की उबरी जे आवै ते कारे —३१७५।

उबरे—क्रि. अ. [सं. उद्वारण, पा. उब्बारण, हि. उबरना] बच गये, मुक्त हुए। उ.—(क) बड़े भाग्य हैं नंद महर के, बड़ भागिनि नदरानी। सूर स्याम उर ऊपर उबरे, यह सब घर-घर जानी—१०-५३। (ख) तात कहि तब स्याम दौरे, महर लियौ अँकवारि। कैसैं उबरे बृच्छतर तैं सूर है बलिहारी —३८७।

उबरैं—क्रि. अ. [हि. उबरना] बच जायँ, मुक्त रहें, निस्तार पा जायँ। उ.—कैसहुँ ये बालक दोउ उबरैं, पुनि पुनि सोचति परी खभारें—५६५।

उबरै—क्रि. अ. [हि. उबरना] (१) उद्धार पा सकता है, मुक्त हो सकता है, छूट सकता है, निस्तार पा सकता है। उ.—(क) सूरदास भगवंत-भजन करि,सरन गए उबरै—१-३७। (ख) इहि कलिकाल-ब्याल-मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै—१-११७। (२) रक्षित रहेगा, बच जायगा, छुटकारा पा जायगा। उ.—(क) रे मन, राम सौं करि हेत। हरि-भजन की बारि करि लै, उबरै तेरौ खेत—१-३११। (ख) सुनत धुनि सब ग्वाल डरपे अब न उबरै स्याम। हमहि बरजत गयौ, देखौ, किए कैसे काम—४२७।

उबरो—क्रि. अ. [हि. उबरना] (१) मुक्त हुआ, छूटा। (२) बाकी रहा, शेष रहा। उ.—भली करी हरि माखन खायौ। इहौ मान लीन्ही अपने सिर उबरो सो ढरकायौ—११२८।

उबरौगे—क्रि. अ. [हि. उबरना] निस्तार पाओगे, छूटोगे, बचोगे, उद्धार पाओगे। उ.—अपनौ पिंड पोषिबे कारन, कोटि सहस जिय मारे। इन पापनि तैं क्यौ उबरौगे, दामनगीर तुम्हारे—१-३३४।

उबर्‌यौ—क्रि. अ. [हि. उबरना] (१) मुक्त हुआ, रक्षित, रहा, उद्धार या निस्तार पाया। उ.—(क) गाए सूर कौन नहि उबर्‌यौ, हरि परिपालन पन रे—१-६६। (ख) उबर्‌यौ स्याम, महरि बड़भागी। बहुत दूर तैं आइ पर्‌यौ धर, धौं कहुँ चोट न लागी —१-७९। (२) जीवित बचा, बाकी रहा। उ.—मारे मल्ल एक नहि उबर्‌यौ—२६४३ (३) काम न आया, बाकी बचा, शेष रहा। उ.—(क) फोरि भाँड़ दधि माखन खायौ, उबर्‌यौ सो डार्‌यौ रिस करिकै—१०-३१८। (ख) माखन खाइ, खवायौ ग्वालनि, जो उबर्‌यौ सो दियौ लुढाई—१०-३०३।

उबलना—क्रि. अ. [सं उद् + वलन = जाना] (१) उफनना। (२) उमड़ना।

उबहना—क्रि. स. [सं. उद्वहनी, पा. उब्बहन = ऊपर उठना] (१) शस्त्र उठाना, शस्त्र खींचना। (२) पानी उलीचना।

वि. [सं. उपानह] बिना जूते का, नंगे पैर।

क्रि. अ. [सं. उद्वहन] ऊपर उठना।

उबहने—वि. [हि. उबहना] बिना जूता पहने।

उबहे—क्रि. स. [हिं. उबहना] शस्त्र उठाया।

उबाँट—संज्ञा स्त्री. [सं. उद्वात] उलटी, वमन, कै।

उबाना—वि. [हिं. उबहना] नंगे पैर।

उबार—संज्ञा पुं. [सं. उद्धारण, हि. उद्धार] उद्धार, निस्तार छुटकारा, बचाव, रक्षा। उ. (क) अब उबार नहिं दीसत कतहूँ सरन राखि को लेइ—५२८। (ख) यासों मेरो नहीं उबार। मोहि मारि मारै परिवार —५८५। (ग) झरझराति भहराति लपट अति, देखियत नहीं उबार—५९३।

उबारन—संज्ञा पुं. [हि. उबारना] उबारने वाले, उद्धार-कर्ता। उ.—संत-उबारन, असुर-सँहारन दूरि करन दुख-दंदा—१०-१६२।

उबारना—क्रि. स. [सं. उद्धारण] उद्धार करना, रक्षा करना, मुक्त करना।

उबारा—संज्ञा पुं. [हि. उबार] उद्धार, छुटकारा।

उबारि—क्रि. स. [हिं. उबारना] उद्धार या मुक्त करके, रक्षा या विस्तार करके। उ.—करि बल-बिगत उबारि दुष्ट दैं, ग्राह ग्रसत बैकुंठ दियौ—१-२६।

उबारी—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार किया, रक्षा की, मुक्त किया, बचाया। उ.—द्रुपद-सुता जब प्रगट पुकारी। गहत चीर हरि-नाम उबारी—१-२८।

उबारे—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार किया, रक्षा की, मुक्त करे, छुड़ाये। उ.—(क) लाखागृह तैं जरत पांडु-सुत बुधि-बल नाथ, उबारे—१-१०। (ख) तुम्हारी कृपा बिनु कौन उबारे—१-२५७।

उबारैं—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार करें, छुटकारा दिलाएँ, बचाएँ। उ.—जाइ मिलि अंध दसकन्ध, गहि दंत तृन, तौ भलैं मृत्यु-मुख तैं उबारैं—६-१२६।

उबारै—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धार करे, मुक्ति दे, छुटकारा दे। उ.—दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान—१-९७।

उबारौं—क्रि. स. [हि. उबारना] रक्षा करूँ, बचाऊँ। उ.—कंस बंस कौ नास करत है, कहँ लौं जीव उबारौं—१०-४।

उबारौ—क्रि. स. [हि. उबारना] उद्धारो, छुड़ाओ, निस्तारो, मुक्त करो। उ.—अब मोहिं मज्जत क्यौं न उबारौ। दीनबन्धु, करुनामय, स्वामी, जन के दुःख निवारौ—१-२०६।

उबारयौ—क्रि. स. [हिं उबारना] मुक्त किया, उद्धार किया, रक्षा की। उ.—(क) सरन गए को को न उबारयौ। जब जब भीर परी संतनि कौ, चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयौ—१-१४। (ख) ततकालहि तब प्रगट भए हरि, राजा जीव उबारयौ—१-१०६।

उबाल—संज्ञा पुं. [हि. उबलना] (१) उफान। (२) जोश, क्षोभ, झुँझलाहट।

उबासी—संज्ञा स्त्री. [स. उश्वास] जँभाई।

उबाहना—क्रि. स. [हि. उबहना] हथियार उठाना।

उबीठना—क्रि. स. [स. अव, पा. ओ + स. इष्ट, पा. इट्ठ = ओइट्ठ] अरुचि हो जाना, मन भर जाना। क्रि. अ.—ऊबना, घबराना।

उबीठे—क्रि. स. [हि. उबीठना] अरुचिकर हुए, न भाये। उ.—सुठि मोती लाड़ू मीठे। वे खात न कबहुँ उबीठे—१०-१८३।

उबीधना—क्रि. अ. [सं. उद्विद्ध] (१) फँसना। (२) गड़ना।

उबीधा—वि. [हि. उबीधना] (१) धँसा हुआ, गड़ा हुआ। (२) काँटों से युक्त।

उबेना—वि. [हि. उ = नहीं + स. उपानह = जूता] नंगे पैर, बिना जूते का।

उभइ—वि. [स. उभय] दोनों।

उभटना—क्रि. अ. [हि. उभरना] अभिमान करना।

उभड़ना—क्रि. अ. [स. उद्भिदन, अथवा उद्भरण, प्रा. उब्भरण] (१) प्रकट होना, उत्पन्न होना। (२) बढ़ना, अधिक होना।

उभय—वि. [स] दोनों।

उभरौंहाँ—वि. [हि. उभार + औहाँ (प्रत्य.)] उभरा हुआ।

उभाड़—संज्ञा पुं. [हिं. उभड़ना] (१) उठना (२) ओज, वृद्धि।

उभाना—क्रि. अ. [हि. अभुआना] हाथ पैर पटकना और सिर हिलाना जिससे सिर पर भूत आना समझा जाता है।

उभिटना—क्रि. अ. [हिं. उबीठना] हिचकना, ठिठकना।

उभिटे—क्रि. अ. [हिं. उभिटना] ठिठके, हिचके।

उभै—वि. [सं. उभय] दोनों। उ.—मनु उभै अंभोज-भाजन, लेत सुधा भराइ—६२७।

उमँग, उमंग—संज्ञा स्त्री. [सं. उद्=ऊपर+मंग=चलना, हि. उमंग] (१) उल्लास, मौज, आनंद। उ.—(क) उमँगो ब्रजनारि सुभग, कान्ह बरष-गाँठि-उमँग, चहति बरष बरषनि—१०-६६। (ख) बसे जाय आनंद उमँग सौ गैयाँ सुखद चरावैं। (२) उभाड़, उभड़ना। (३) अधिकता, पूर्णता।

उमँगना—क्रि. अ. [हि. उमंग+ना (प्रत्य.)] (१) उमड़ना, बढ़ चलना। (२) हुलसना, आनद में होना।

उमँगि—क्रि. अ. [हिं. उमगना] (१) सोल्लास, हुलास-सहित, जोश में आकर। उ.—(क) भ्रात-मुख निरखि राम बिलखाने। मुंडित केस-सीस, बिह्वल दोउ, उमँगि कंठ लपटाने—९-५२। (ख) आनंद भरी जसोदा उमँगि अंग न माति, आनंदित भई गोपी गावति चहर के—१०-३०। उमड़ कर, ऊपर उठकर। उ.—भरत गात सीतल है आयौ, नैन उमँगि जल ढारे। सूरदास प्रभु दई पाँवरी, अवध पुरी पग धारे—९-५४।

उमंगी—संज्ञा स्त्री. [हि. उमंग] (१) मौज, उल्लास, आनंद। (२) उभाड़। (३) अधिकता, पूर्णता।

वि.—अधिक, बहुत, ज्यादा, अपार। उ.—पारथ तिय कुरुराज सभा मे बोलि करन चहै नंगी। स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बढ़्यौ बसन उमंगी—१-२१।

उमँगी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. उमंग+ना (प्रत्य.)] उभड़ने लगी, उमड़ी।

वि. स्त्री.—उमड़ी हुई, उमड़ कर प्रवाहित होती हुई। उ.—उमँगी प्रेम-नदी-छबि पावैं। नंद नंदन-सागर कौ धावैं—१०-३२।

उमँगे—क्रि. अ. [हिं. उमंग+ना (प्रत्य)] (१) उमड़ने लगे, उमड़ चले, बह चले। उ.—सूरदास उमँगे दोउ नैना, सिंधु-प्रवाह बह्यौ—१-२४७। (२) आनंदित होकर, हुलास से भरकर। उ.—उमँगे लोग नगर के निरखत, अति सुख सबहिनि पाइ—९-२६।

उमँगै—क्रि. अ. [हि. उमंग+ना (प्रत्य.)=उमगना] उमड़े, उभड़े, उमड़ कर बह चले। उ.—उमँगै प्रेम नैन-मग ह्वैके, कापै रोक्यौ जात री—१०-१३६।

उमग—संज्ञा स्त्री. [हि. उमंग] (१) आनंद, उल्लास। (२) अधिकता।

उमगन—संज्ञा स्त्री. [हिं. उमंग] आनंद, उल्लास।

उमगना—क्रि अ. [हि. उमंग+ना] (१) उमड़ना। (२) आनंदित होना।

उमचना—क्रि. अ. [सं. उन्मञ्च = ऊपर उठना] (१) तलुए को जोर देकर किसी वस्तु को दबाना, हुमचना। (२) चौंकना, चौकन्ना होना।

उमचि—क्रि. अ. [हिं. उमचना] चौंककर, चौकन्ना होकर। उ.—चकृत भई बिचार करत यह बिसरि गई सुधि गात। उमचि जात तबही सब सकुचति बहुरि मगन है जाति। सूर स्याम सौं कहौं कहा यह कहत न बनत लजाति—११९०।

उमड़—संज्ञा स्त्री. [सं. उन्मंडन्] (१) बाढ़, बढ़ाव। उ.—फिरि फिरि उझकि झाँकत बाल। बह्नि-रिपु की उमड़ देखत करत कोटिन ख्याल—सा. ३४। (२) छाजन, घिराव। (३) धावा। उठान।

उमड़ना—क्रि. अ. [हि. उमंग] (१) द्रव पदार्थ के अधिक होने से बह चलना। (२) उठकर फैलना, घेरना। (३) आवेशयुक्त होना, क्षुब्ध होना।

उमड़ि—क्रि. अ. [हि उमड़ना] (द्रव की बहुतायत के कारण) ऊपर उठकर, उतराकर। उ.—हा सीता, सीता कहि सियपति, उमड़ि नयन जल भरि-भरि ढारत—९६२।

उमड़ी—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] (१) द्रव पदार्थ अधिक भर जाने से बह चली। (२) आवेश में भर गयी। (३) छा गयी, घेर लिया।

उमड़े—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] फैलकर, चारों ओर

छा कर, घिरकर। उ.—अति आनंद भरे गुन गावत उमड़े फिरत अहीर—९२०।

उमड़ै—क्रि. अ [हि. उमंग] उतराकर बह चलता है। उ.—सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै, सूखै, खेह उड़ाइ—१०-२६५।

उमड़यौ—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] (१) भर आया, उतरा कर बह चला (२) उठकर फैला, छाया, घेरा। उ.—अब हौं कौन कौ मुख हेरौं ? रिपु-सैना-समूह-जल उमड़यौ, काहि साथ लै फेरौं—९-१४६।

उमदना—क्रि. अ. [स. उन्मद] (१) उमंग में भरना। (२) उमड़ना।

उमदात—क्रि. अ. [हि. उमदाना] मतवाला होता है, उन्मत्त होता है।

उमदाना—क्रि. अ. [स. उन्मद, हि. उमदना] (१) मतवाला होना, उमंग में भरना। (२) आवेशयुक्त होना।

उमद्—क्रि. अ. [हि. उमदना] उमड़ते हैं।

उमराव—सं. पुं. [अ. उमरा] प्रतिष्ठित व्यक्ति, सरदार, दरबारी। उ.—असुरपति अति ही गर्व धरयौ। ''''''''। महा महा जो सुभट दैत्यबल बैठे सब उमराव। तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो मो सम्मुख को आव—२३७७।

उमहना—क्रि. अ. [स. उन्मंथन, प्रा. उम्महन अथवा स. उद् + मह = उभड़ना] (१) (द्रव पदार्थ की अधिकता के कारण) बहना, उमड़ना। (२) घेरना, छा जाना। (३) आवेशयुक्त होना।

उमहायो—क्रि. अ. [हि. उमड़ना] द्रव पदार्थ की अधिकता से) बह चला, उमड़ा। उ.—नहि स्रुति सेस महेस प्रजापति जो रस गोपिन गायौ। कथा गंग लागी मोहि तेरी उहि रस सिंधु उमहायौ—३४६०।

उमही—क्रि. अ. [हि. उमहना] (१) उमंग में भर गयी, आवेशयुक्त हो गयी। उ.-(क) सिर मटुकी मुख मौन गही। भ्रमि-भ्रमि बिबस भई नव ग्वालिन नवल कान के रस उमही—१२१३। (२) उमड़ पड़ी है। उ.—पालागौं तुमहीं बूझत हौं तुम पर बुधि उमही—३३७०।

उमहे—क्रि. अ. [हि. उमहना] छा गये, घेर लिया। उ.—सघन बिमान गगन भरि रहे। कौतुक देखन अम्मर उमहे—१८१६।

उमहै—क्रि. अ. [हि. उमहना] उमंग में आती है,आवेश युक्त हो जाती है। उ. (क) पहिले अग्नि सुनत चन्दन सी सती बहुत उमहै। समाचार ताते अरु सीरे पाछे जाइ लहै—२७१३।

उमह्यो, उमह्यौ—क्रि. अ. [हि. उमहना] (१) छा गये, एकत्र हुए। उ. (क) अनद अति सै भयौ घर-घर, नृत्य ठाँवहि-ठाँव। नंद-द्वारै भेद लै लै उमह्यौ गोकुल गाँव—१०-२६। (ख) उमह्यौ मानुष घोष यों रंग भीजी ग्वालिन—२४०५। (२) उमंगयुक्त हुआ, उमड पड़ा। उ.—मदन गुपाल मिलन मन उमह्यौ कौन बसै इह यदपि सुदेस। ३२२५। (३) उमड पड़ा, उतराकर बह चला—उ.—तौलौ भार तरग महँ उदधि सखी लोचन उमह्यौ—३४७०।

उमा—संज्ञा स्त्री. [स.] शिव की स्त्री, पार्वती।

उमाकना—क्रि. अ. [स. उ = नहीं + मंक = जाना] नष्ट करना।

उमाकिनी—वि. स्त्री. [हि. उमाकना] खोद कर फेंक देनेवाली।

उमागुरु—संज्ञा पुं. [स.] पार्वती के पिता हिमाचल।

उमाचना—क्रि. स. [स. उन्मंचना] (१) ऊपर उठाना। (२) निकालना।

उमाची—क्रि. स. [हि. उमाचना] निकाली है।

उमाधव—संज्ञा पुं. [स.] पार्वती के पति, शिव।

उमापति—संज्ञा पुं. [स.] महादेव, शंकर, शिव। उ.—यहै कहहि पति देहु उमापति गिरिधर नन्द-कुमार—७६६।

उमाह—संज्ञा पुं. [स. उद् + माह=उमगाना, उत्साहित करना] उत्साह, उमंग।

उमाहना—क्रि. अ. [हि. उमहना] (१) उमड़ना (२) उमंग में आना।

क्रि. स.—वेग से बढ़ाना।

उमाहल—वि. [हि. उमाह] उमङ्गयुक्त, उत्साहित। उ.—ब्रज घर घर अति होत कोलाहल। ग्वाल फिरत उमँगे जहँ तहँ सब अति आनन्द भरे जु उमाहल।

उमेठन—संज्ञा स्त्री. [सं. उद्वेष्ठन] ऐंठन, **बल, मरोड़**।

उमेठी—वि. [हिं. उमेठना] (१) **ऐंठी हुई, अप्रसन्न**। उ.—भामिनि आजु भवन में बैठी। मानिक निपुन बनाय नीकन मे धनु उपमेय उमेठी–सा. ११२। (२) **इतराती हुई, गर्व भरी**। उ.—अंगदान बल कौं दे बैठी। मन्दिर आजु आपने राधा अन्तर प्रेम उमेठी—सा १०० ।

उमेल—संज्ञा पुं. [सं. उन्मीलन] **वर्णन**।

उमेलना—क्रि. स. [सं. उन्मीलन] (१) **खोलना, प्रकट, करना**। (२) **वर्णन करना**।

उये—क्रि. अ. [सं. उद्गमन, पा. उग्गवन, हि. उगना] **उदय हुए, प्रकटे, उगे**। उ.—नंदनंदन मुख देखौ माई। अग-अंग छबि मनहु उये रवि,ससि अरु समर लजाई—६२६ ।

उयौ—क्रि. अ. [हिं. उदयन, उअना] **उदय हुआ, उगा**।

उरग, उरंगम—संज्ञा पुं. [सं.] **साँप**।

उर—संज्ञा पुं. [सं. उरस्] (१) **वक्षस्थल, छाती**। उ.—(क) भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर बोले बचन सकल सुखदाई—१-३। (ख) दनुज दरयौ उर दरि सुरसाँई—१-६ ।

मुहा.—उर आनना या लाना—**छाती से लगाना, आलिंगन करना**। लियो उर लाई—**छाती से लगा लिया**। उ.—महाराज कहि श्री मुख लियो उर लाई—२६१६।

(२) **हृदय, मन, चित्त**।

मुहा.—उर आनना या धरना—**ध्यान करना, विचारना**। उर धरना—**ध्यान मे रखना**। उर धरी—**मन में सोचा, निश्चय किया**। उ.—सदा सहाय करी दासनि की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी—१-१६०।

उरई—संज्ञा स्त्री. [सं. उशीर] **खस**।

उरकना—क्रि. अ. [हि. रुकना] **ठहरना**।

उरग—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) **साँप**।

मुहा.—भई रीति हठि उरग छछूँदर—**साँप छछूँदर की गति होना, दुबिधा या असमंजस में पड़ना**। उ.—जब वह सुरवि होति है बात। सुनौ मधुप या वेदन कीरति मन जानै कै गात। रहत नही अतर अति राखे कहत नही कहि जात। भईरीति हठि उरग छछूँदरि छाँडै बनै न खात—३१२७।

(२) **वेणी, चोटी, (क्योंकि इसकी उपमा साँप= उरग से दी जाती है।)** उ.—हरि उर मोहनि बेलि लसी। तापर उरग ग्रसित तब सोभित पूरन अस ससी—सा. उ. २५।

उरग इंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] **सर्पराज, वासुकी**। उ.—उरग-इद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजै—१-६६।

उरगना- क्रि. स [सं. ऊरीकरण] **मानना, स्वीकारना**।

उरगाद—संज्ञा पुं. [सं.] **गरुड़**।

उरगारि—संज्ञा पुं. [सं. उरग + अरि] **साँप का शत्रु, गरुड़**।

उरगिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. उरगी, हि. उरगिनी] **सर्पिणी, नागिनी**। उ.—सूर-प्रभु के बचन सुनत, उरगिनी कह्यौ, जाहि अब क्यौं न, मति भई भरनी—५५१।

उरज—संज्ञा पुं. [सं. उरोज] **कुच, स्तन**। उ.—(क) दै-दै दगा बुलाइ भवन मै भुज भरि भेटति उरज कठोरी—१०-३०५। (ख) उरज भँवरी भँवर मानों मीन मनि की कांति—१४१६।

उरजात—संज्ञा पुं. [सं. उरस् + जात] **कुच, स्तन**।

उरझना—क्रि. अ. [हि. उलझना] **फँसना, अटकना**।

उरझाई—क्रि. अ. [हि. उलझना] **उलझकर, गुँथकर, फँसकर**। उ.—मन चुभि रही माधुरी मूरति अंग अंग उरझाई—३३१७।

उरझाना—क्रि. स. [हि. उलझना] **फँसाना, अटकाना**।

उरझानो—क्रि. स. [हिं. उलझना] **उलझ गया, फँसा, लिप्त हुआ**। उ.—नवकिसोर मोहन मृदु मूरति तासों मन उरझानो—३०६४।

उरझि—क्रि. अ. [हि. उलझना] **फँसकर, अटककर, उलझकर**। उ.—पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार—१-९९।

उरझ्यौ—क्रि. अ. भूत. [हि. उलझना] (१) उलझी, फँसी, अटकी। उ.—मोह्यौ जाई कनक-कामिनि-रस ममता-मोह बढाई। जिह्वा-स्वाद मीन ज्यौं उरझ्यौं, सूझी नहीं फँदाई—१-१४७। (२) काम में फँस गया, लिप्त हुआ, लगा रहा। उ.—बात-चक्र-बासना प्रकृति मिलि, तन तृन तुच्छ गह्यौ। उरझ्यौ बिबस कर्म-निरअंतर, भ्रमि सुख-सरनि चह्यौ—१-१६२।

उरझे—क्रि. अ. [हि. उलझना] लिपटे, उलझ गये। उ.—उरझे संग अंग अंग प्रति बिरह बेलि की नाईं—२८२१।

उरद—संज्ञा पुं. [सं. ऋद्ध, पा. उद्ध] एक अनाज। उ.—मूँग मसूर उरद चनदारी। कनक-फटक धरि फटकि पछारी—३९६।

उरध—क्रि. वि. [सं ऊर्द्ध्व] ऊपर, ऊपर की ओर।

उरधारना—क्रि. स. [हि. उधाड़ना] बिखराना, छितराना।

उरधारी—वि. [हि. उधड़ना, उरधारना] बिखरी हुई। उ.—उरधारी लटैं छूटी आनन पर भीजीं फुलेलन सों आली सँग केलि।

उरबसी—संज्ञा स्त्री. [सं. उर्वशी] उर्वशी नाम की अप्सरा।

उरमत—क्रि. अ. [हि. उरमना] लटकता है।

उरमना—क्रि. अ. [सं. अवलंबन, प्रा. ओलंबन] लटकना।

उरमाई—क्रि. स. [हि. उरमाना] लटकाया।

उरमाना—क्रि. स. [हि. उरमना] लटकाना।

उरला—वि. [हि. विरल] विरला, निराला।

उरविज—संज्ञा पुं. [सं. उर्वी = पृथ्वी + ज = उत्पन्न] मंगल ग्रह।

उरवी—संज्ञा स्त्री. [सं. उर्वी] पृथ्वी।

उरहन—संज्ञा पुं. [हि. उरहना, उलाहना] उलाहना। उ.-(क) उरहन दिन देउँ काहि, काहै तू इतौ रिसाइ। नाहीं ब्रजबास, सास, ऐस बिधि मेरौ—१०-२७६। (ख) ग्वालिनि उरहन कै मिस आई। नंदनंदन तन-मन हरि-लीन्हौ, बिनु देखे छिन रह्यौ न जाइ—१०-३०३। (ग) वृथा ब्रज की नारि नित प्रति देइ उरहन आन—सा. ११४।

उरहने—संज्ञा पु. [हिं. उरहना] उलाहना। उ.—आवति सूर उरहने कैं मिस, देखि कुँवर मुसुकानी—१०-३११।

उरहनो, उरहनौ—संज्ञा पुं. [हि. उरहना, उलाहना] उलाहना। उ.—नैननि झुकी सुमन मै हँसी नागरि उरहनौ देत रुचि अधिक बाढ़ी—१०-३०७।

उरस—वि. [सं. कुरस] फीका, नीरस। उ.—तू कहि भोजन कर्यौ कहा री। बेसन मिले उरस मैदा सों अति कोमल पूरी है भारी।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) छाती, वक्षस्थल। (२) हृदय, चित्त।

उरसना—क्रि. अ. [हि. उड़सना] ऊपर नीचे करना, हिलाना। उ.—जसुदा मदन-गुपाल सोवावै। ...। स्वाँस उदर उरसति (उससित) यौं मानो दुग्ध-सिंधु छबि पावै—१०-६५।

उरसिज—संज्ञा पुं. [सं.] स्तन।

उरस्क—संज्ञा पुं. [सं] वक्षस्थल, छाती।

उरहना—संज्ञा पुं. [सं. उपालंभ या अवलंभन, पा. ओलंभन, हि. उलाहना] उलाहना।

उराना—क्रि. अ. [हि. ओर + आना (प्रत्य.)] समाप्त होना।

उरारा—वि. [सं. उरु] विस्तृत, विशाल।

उराव—संज्ञा पुं. [सं. उरस + आव] चाव, उमंग, चाह। उ.—जे पद-कमल सुरसरी परसे तिहूँ भुवन जस छाव। सूरस्याम पदकमल परसिहौं मन अति बढ़्यौ उराव—२४८४।

उराहना—संज्ञा पुं. [सं. उपालंभ,] उलाहना।

उराहनौ—संज्ञा पुं. [हि. उलाहना] उलाहना। उ.—(क) आँखै भरि लीनी उराहनौ देन लाग्यौ। तेरौ री सुवन मेरी, मुरली लै भाग्यौ।—१०-२८४। (ख) अब न देहि उराहनो जसुमतिहि आगे जाइ—२७५६।

उरोज—संज्ञा पुं. [सं.] कुच, स्तन, छाती।

उरिन—वि. [सं. उऋण] ऋण से मुक्त।

उरु—वि. [सं.] (१) लंबा-चौड़ा। (२) विशाल, बड़ा।

संज्ञा पुं. [सं. ऊरु] जाँघ।

उरुक्रम—वि. [सं.] (१) बली। (२) लंबे डग भरने वाला।

संज्ञा पुं.—(१) वामन अवतार। (२) सूर्य।

उरेह—संज्ञा पुं. [सं. उल्लेख] चित्रकारी।

उरेहना—क्रि. स. [सं. उल्लेखन] (१) चित्र आदि खींचना, लिखना। (२) रँगना।

उर्मिला—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊर्मिला] सीताजी की छोटी बहन जो लक्ष्मण को ब्याही थीं।

उर्वरा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उपजाऊ भूमि। (२) पृथ्वी।

वि.—उपजाऊ।

उर्वशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अप्सरा।

उर्वी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

उलंघना उलँघना—क्रि. स. [सं. उल्लंघन] (१) नाँघना, फाँदना, उल्लंघन करना। उ.—वसुधा त्रिपद करत नहिं आलस तिनहिं कठिन भयो देहरी उलंघना—१०-११३। (२) न मानना, अवहेलना करना।

उलँघि—क्रि. स. [हि. उलंघना] नाँघना, फाँदना, पार करना। उ.—कबहुँक तीनि पैग भुव नापत, कबहुँक देहरि उलँघि न जानी—१०-१४४।

उलँघी—क्रि. स. स्त्री. [हि. उलंघना] नाँघी, फाँदी, उल्लंघन की। उ.—घर आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत। गिरि-गिरि परत, जात नहिं उलँघी, अति स्रम होत नँघावत—१०-१२५।

उलझन—संज्ञा पुं. [सं. अवरुंधन, या ओरुज्झन] (१) अटकाव। (२) बाधा। (३) समस्या, चिंता।

उलझना—क्रि. अ. [हिं. उलझन] (१) फँसना, अटकना। (२) लिपटना। (३) गुथ जाना। (४) लीन होना, रत होना। (५) प्रेम करना। (६) लड़ना, झगड़ना। विवाद करना। (७) कठिनाई में फँसना। (८) रुक जाना।

उलझाना—क्रि. स. [हि. उलझना] (१) फँसाना, अटका देना। (२) अटकाये रखना।

क्रि. अ.—उलझना, फँसना।

उलझाव—संज्ञा पुं. [हि. उलझना] (१) अटकाव। (२) झंझट। (३) समस्या, चक्कर।

उलझौंहाँ—वि. [हि. उलझना] (१) अटकानेवाला। (२) लुभाने वाला।

उलटना—क्रि. अ. [सं. उल्लोंठन] (१) औंधा होना, पलटना। (२) घूमना, पीछे मुड़ना। (३) उमड़ पड़ना, उमड़ आना। (४) अस्तव्यस्त हो जाना। (५) कुछ का कुछ हो जाना। (६) क्रुद्ध होना। (७) नष्ट होना। (८) अचेत होना, बेहोश होना। (९) इतराना।

क्रि. स.—(१) औंधा करना। (२) अस्तव्यस्त करना। (३) बात दोहराना। (४) खोद डालना। (५) नष्ट करना। (६) रटना, जपना।

उलटहु—क्रि. अ. [हि. उलटना] लौट आओ, पलट आओ, वापस आजाओ। उ.—अब हलधर उलटहु काह तुम धावहु ग्वाल जोरि—२४४६ (३)।

उलटाइ—क्रि. स. [हि. उलटाना] उलटाकर, चित करते, पेट के बल से पीठ के बल लिटा कर। उ.—महरि मुदित उलटाइ कै, मुख चूमन लागी—१०-६८।

उलटाना—क्रि स. [हि. उलटना] (१) पीछे फेरना। (२) कुछ का कुछ कहना या करना।

उलटावहु—क्रि. स. [हि. उलटाना] पलटाओ, लौटाओ, पीछे फेरो। उ. - बिहारीलाल आवहु आई छाक। भई अबार, गाइ बहुरावहु, उलटावहु दै हाँक—४६४।

उलटि—क्रि. अ. [हि. उलटना] (१) लौटकर, उलट कर, वापस आकर, पीछे मुड़कर, घूमकर। उ.—(क) उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चल्यौ सिर झारी—१-२२१। (ख) जैसे सरिता मिलै सिंधु कौ उलटि प्रवाह न आवैहो—२८०४। (ग) हम रुचिकरी सूर के प्रभु सौं दूजे मन न सुहाइ। उलटि जाहि अपने पुर माहीं बादिहि करत लराई—३११०। (घ) जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि न उलटि जगत मैं नाचै—२-११। (२) ऊपर-नीचे होकर, उलट पलट कर। उ.—नृत्यत उलटि गए अँग भूषण बिथुरी अलक बाँधौ सँवारि—पृ. ३५२ (८४)। (३) ऊपर से नीचे गिर कर। उ.—ससि-सन्मुख जो धूरि उड़ावै, उलटि ताहि कै मुख परै—१-२३४।

उलटी—वि. [हि. उलटना] (१) औंधा, ऊपर का नीचे। (२) क्रम-विरुद्ध, इधर का उधर। (३) अनुचित, अंडबंड, अयुक्त। उ.–(क) इंद्री अजित,बुद्धि बिषया रत, मन की दिन-दिन उलटी चाल—१-१२७। (ख) हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहि—११८१। (ग) अब समीर पावक सम लागत सब ब्रज उलटी चाल–३१५५। (४) असमान, विरुद्ध, विपरीत।

क्रि. वि.—लौटकर,पीछे की ओर पलटकर। उ.—जमुना उलटी धार चली बहि पवन थकित मुनि बेनु—पृ.३४७ (५३)।

मुहा.—उलटी परी–आशा के विरुद्ध हुआ, दूसरे को हानि पहुँचाने के प्रयत्न में स्वयं हानि उठायी या स्वयं नीचा देखा। उ.—अंबरीष को साप देन गयौ बहुरि पठायौ ताकौ। उलटी गाढ़ परी दुर्बासै दहत सुदरसन जाकौं—१-११३। उलटी-पलटी–भली-बुरी, उचित-अनुचित। उ.—तब उलटी पलटी फबी जब सिसु रहे कन्हाई। अब उहि कछु धोखैं करौ तौ छिनक माँह पति जाई—१०१०। उलटी-पुलटी—अंडबंड, बिना ठीक-ठिकाने। उ.—तुमहि उलटी कहौ तुमहि पुलटी कहौ, तुमहि रिस करति मै कछु न जानौ।

उलटे—वि. [हि. उलटना, उलटा] (१) औंधे,पट, पेट के बल। उ.—(क) हँसे तात मुख हेरि कै, करि पग-चतुराई। किलकि झटकि उलटे परे, देवनि-मुनिराई १०–६६। (ख) स्याम उलटे परे देखे, बढ़ी सोभा लहरि—१०–६७। (२) पीछे करके, पीठ की ओर मोड़ कर। उ.—पलना पौढ़ाई जिन्हैं बिकट बाउ बाटै। उलटे भुज बाँधि तिन्हैं लकुट लिए डाँटै—३४८।

उलटोइ—वि. सवि. [हि. उलटा + ही (प्रत्य.)] विपरीत, अयुक्त, अनुचित, विरुद्ध। उ.—उलटोइ ज्ञान सकल उपदेसत सुनि सुनि हृदय जरै—३३११।

उलटौ—वि. [हि. उलटा] उलटा, पट, पेट के बल। उ.—एक पाख त्रय मास कौ मेरौ भयौ कन्हाई। पटकि रान उलटौ परयौ, मै करौ बधाई—१०–६८।

उलटयौ—क्रि. स. [हि. उलटना] उलटा हो गया, पीछे की ओर चला। उ.—अति थकित भयौ समीर। उलट्यौ जु जमुना-नीर—६२३।

उलथना—क्रि. अ. [सं. उत्थलन] ऊपर-नीचे होना। उलटना।

क्रि. स.—उलट-पुलट करना।

उलद—संज्ञा स्त्री. [हि. उलदना] वर्षा की झड़ी।

उलदत—क्रि. स. [हि. उलदना] गिराता है, लौटाता है, बरसाता है।

उलदना—क्रि. स. [हि. उलटना] गिराना, बरसाना।

उलमना—क्रि. अ. [सं. अवलंबन, पा. ओलंबन = लटकना] लटकना, झुकना।

उलसना—क्रि. म. [सं. उल्लसन] सोहना, शोभित होना।

उलहना—क्रि. स. [सं. उल्लंभन] (१) निकलना, उगना। (२) हुलसना, प्रसन्न होना।

संज्ञा पुं. [हि. उलाहना] उलाहना।

उलाहना—संज्ञा पुं. [सं. उपालंभन, प्रा. उवाहन] शिकायत, गिला।

क्रि. स.—(१) गिला करना। (२) दोष देना।

उलीचना—क्रि. स. [सं. उल्लुंचन] पानी फेंकना या उछालना।

उलीचै—क्रि. स [हि उलीचना] उलीचती है, पानी फेंकती है। उ.—चिरिया कहा समुद उलीचै—१-२३४।

उलूक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उल्लू चिड़िया। (२) इंद्र।

संज्ञा पुं. [सं. उल्का] लौ, लुक।

उलूखल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ओखली। (२) खल, खरल।

उलेड़ना—क्रि. स. [हि. उडेलना] ढरकाना, एक पात्र से दूसरे में ढालना।

उलेड़े—क्रि. स. [हि. उडेलना] उँड़ेले, ढरकाये। उ.—गारी होरी देत दिवावत। ब्रज में फिरत गोपिकन गावत। रुकि गए बाहन नारे पैंड़े। नव केसर के माट उलेड़े।

उलेल—संज्ञा स्त्री. [हि. कुलेल] उमंग, जोश। वि.—अल्हड, बेपरवाह।

उल्लंघन—संज्ञा पुं. [सं] (१) लाँघना। (२) पालन न करना, नीति-विरुद्ध आचरण।

उल्का—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रकाश, तेज। (२) लुक, लौ। (३) दिया, दीपक।

उलकापात—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तारा टूटना। (२) उत्पात, विघ्न।

उल्लसन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हर्ष करना। (२) रोमांच।

उल्लापन—संज्ञा पुं. [सं.] खुशामद, ठकुरसुहाती।

उल्लास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) झलक, प्रकाश। (२) हर्ष, उत्साह। उ.—हो चाहे तासो सब सीखब रसबस रिझवो कान। जागि उठी सुन सूर स्याम संग का उल्लास बखान—सा.—६८। (३) एक अलंकार जिसमें एक के गुण-दोष से दूसरे में गुण-दोष आना वर्णित हो।

उल्लासना—क्रि. स. [सं. उल्लासन] प्रकट करना, प्रकाशित करना।

उल्लिखित—वि. [सं.] (१) लिखा हुआ। (२) खोदा हुआ। (३) चित्रित।

उल्लेख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लिखना, लेख। (२) वर्णन, चर्चा। (३) एक अलंकार जिसमें एक वस्तु या व्यक्ति का अनेक रूपों में दिखायी पड़ना वर्णित हो। उ.—मुरली मधुर बजावहु मुख ते रुख जनि अनतै फेरो। सूरज प्रभु उल्लेख सबन को हौ पर पतनी हेरो—सा. ८।

उवत—क्रि. अ. [हि. उवना] उगता है, उदय होता है। उ.—अथवत आये गृह बहुरि उवत भान उठौ प्राननाथ महाजान मनि जानकी—१६०६।

उवना—क्रि. अ. [हि. उगना] उत्पन्न होना।

उवनि—संज्ञा स्त्री. [हि. उवना] उदय, प्रकाश।

उशीर—संज्ञा पुं. [सं.] खस।

उषा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रभात, ब्रह्मबेला। (२) सूर्योदय की लालिमा। (३) बाणासुर की पुत्री जो अनिरुद्ध को ब्याही थी।

उषाकाल—संज्ञा पुं. [सं.] भोर, प्रभात।

उष्णता—संज्ञा स्त्री. [सं.] गरमी, ताप।

उष्णीष—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पगड़ी। (२) मुकुट।

उष्न—वि. [सं. उष्ण] तप्त, गरम। उ.—धर बिधंसि नल करत किरपि हल, बारि बीज बिथरै। सहि सन्मुख तउ सीत उष्न कौं सोई सुफल करै—१-११७। संज्ञा पुं.—ग्रीष्म ऋतु।

उस—सर्व. [हि. वह] 'वह' का विभक्तियुक्त रूप।

उसरना—क्रि. अ. [सं. उद्+सरण = जाना] (१) दूर होना, चले जाना। (२) बीतना। (३) याद न रहना।

उसरे—क्रि. अ. [हि. उसरना] बीतने पर, बीतती है। उ.—सघन कुंज ते उठे भोर ही स्याम घरे। जलद नवीन मिली मानो दामिनी बरषि निसा उसरे।

उससत—क्रि. स. [हि. उससना] खिसकता है, हट जाता है। उ.—गोरे गात उससत जो असित पट और प्रगट पहिचानै। नैन निकट ताटंक की सोभा मंडल कविन बखानै।

उससना—क्रि. स. [सं. उत्+ सरण] (१) खिसकना, हट जाना। (२) साँस लेना।

उससित—क्रि. स. [हि. उससना] साँस लेकर, दम लेकर, साँस से फूलकर। उ.—स्वास उदर उससित यौ मानौ दुग्ध सिंधु छबि पावै—१०-६५।

उसारना—क्रि. स. [सं. उद् + सरण] (१) हटाना। (२) उखाड़ना।

उसारौ—क्रि. स.[हि. उसारना] खोदना, तैयार करना, बनाना। उ.—नवग्रह परे रहै पाटी-तर, कूपहिं काल उसारौ। सो रावन रघुनाथ छिनक मैं, कियौ गीध कौ चारौ—९-१५६।

उसालना—क्रि. स. [सं. उत्+शालन] (१) उखाड़ना। (२) हटाना (३) भगाना।

उसास—संज्ञा. स्त्री. [सं. उत्+ श्वास] लंबी साँस, ऊपर को चढ़ती हुई साँस। उ.—(क) गई सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुर-बॉस। सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि भरि लेत उसास—६-४१। (ख) लेति उसास नयन जल भरि भरि, धुकि सो परै धरि धरनी। सूर सोच जिय पोच निसाचर, रामनाम

की सरनी—६-७३ । (ग) त्रिजटी बचन सुनत वैदेही अति दुख लेति उसास—६-८३ ।

उसासी—संज्ञा स्त्री. [हि. उसास] (१) ठंडी साँस, लंबी साँस । उ.—कबहुँक आगे कबहुँक पाछे पग पग भरत उसासी—१८१२ । (२) अवकाश, छुट्टी ।

उहँई—क्रि. वि. [हि. वहाँ + ई=ही] वहाँ ही, वहीं । उ.—सूरस्याम सुन्दर रस अटके हैं मनो उहँइ छए री—सा. उ. ७ ।

उहवाँ—क्रि. वि. [हि. वहाँ] वहाँ, उस जगह ।

उहाँ—क्रि. वि. [हि. वहाँ] वहाँ । उ.—उहाँ जाइ कुरु-पति बल-जोग । दियौ छाँड़ि तन कौ संजोग—१-२८४ ।

उहि—सर्व. [हि. वही] उसे, उन्हें । उ.-(क) दच्छ तुम्हारौ मरम न पायौ जैसौ कियौ सो तैसो पायौ । अब उहि चाहियै फेरि जिवायौ—४ ५ । (ख) एक बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री । ····· । कहत सुन्यौ नंद कौ यह बारौ, कछु पढ़ि कै तुरतहि उहि झारी—६६७ ।

उहीं—सर्व. [हि. वही] वही, उसी । उ.—जसुमति बाल बिनोद जानि जिय, उहीं ठौर लै आई—१०-१५७ ।

उहै—सर्व. [हि. वही] वही । उ.—फन-फन-निरतत नँद-नंदन । ··· । उहै काछनी कटि, पीताबर, सीस मुकुट अति सोहत—५६५ ।

ऊ

ऊ—देवनागरी वर्णमाला का छठा अक्षर । ओष्ठ्य वर्ण ।

ऊँघ—संज्ञा स्त्री. [सं. अवाङ्=नीचे मुँह] उँघाई, झपकी ।

ऊँघना—क्रि. अ. [हि. ऊँघ] झपकी लेना, नींद में झूमना ।

ऊँच—वि. [सं. उच्च] (१) ऊँचा, ऊपर उठा हुआ । (२) बड़ा, श्रेष्ठ, उत्तम । उ.—अंबरीष, प्रह्लाद, नृपति बलि, महा ऊँच पदवी तिन पाई—१-२४ । (३) कुलीन, उत्तम कुल का ।

यौ.—ऊँच-नीच-(१) छोटा-बड़ा । उ.—ऊँच-नीच हरि गिनत न दोइ—९-२ । (२) भला-बुरा ।

ऊँचा—वि. [सं. उच्च] (१) ऊपर उठा हुआ । (२) श्रेष्ठ, बड़ा । (३) जोर का, तेज ।

ऊँचाई—संज्ञा स्त्री. [हि. ऊँचा + ई (प्रत्य.)] (१) ऊपर की ओर का विस्तार, उठान । (२) बड़ाई, श्रेष्ठता ।

ऊँची—वि. [हि. ऊँचा] तेज, तीव्र । उ.—स्रवन सुनाइ गारि दै गावति ऊँची तानि लेति प्रिय गोरी—२४४८ (२) ।

ऊँचे, ऊँचै—क्रि. वि. [हि. ऊँचा] (१) ऊँचे पर, ऊपर की ओर । (२) जोर से, जोर देकर । उ.—सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवारयौ । हरि भजि, बिलँब छाँड़ि सूरज सठ, ऊँचे टेरि पुकारयौ—१-३३६ । (३) लंबे, बड़े, देर तक खिंचनेवाले । उ.—उर ऊँचे उसाँस तृणावर्त तिहि सुख सकल उड़ाइ दिये—३०७३ ।

ऊँचो—वि. [हि. ऊँचा] ऊँचा, ऊपरी ।

क्रि. वि.—ऊपर की ओर । उ.—भूसुतत्रिय तलफत सफरी भो बार हीन तन हेगे । 'सूरज' चितै नीच जल ऊँचो लयौ बिचित्र बसेरौ—सा.४२ ।

ऊँछ—संज्ञा पुं. [देश.] एक राग का नाम । उ.—ऊँछ अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन ।। करत बिहार मधुर केदारो सकल सुरन सुख दीन ।

ऊँट—संज्ञा पुं. [सं. उष्ट्र, पा. उट्ट] एक ऊँचा चौपाया जो रेगिस्तानों में सर्वत्र होता है और जिसके बिना वहाँ के निवासियों का काम कदाचित् चल ही नहीं सकता । भारी बोझ लादने के यह काम आता है । कवियों ने ऐसे लोगों की उपमा इससे दी है जो नीरस जीवन का भार भर ढोया करते है, कोई सार्थक काम नहीं करते । उ.—सूरदास भगवंत भजन-बिनु मनौ ऊँट बृष-भैंसौ—२-१४ ।

ऊँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कुंड] तहखाना ।

वि.—गहरा, गम्भीर ।

ऊ—संज्ञा पुं.—(१) महादेव । (२) चंद्रमा ।

अव्य.—भी ।

सर्व.—वह ।

ऊअना—क्रि. अ. [सं. उदयन, हिं. उगना] उगना, उदय होना ।

ऊश्रा—क्रि. अ. [हिं ऊअना] उगा, उदित हुआ।

ऊआबाई—वि. [हि. आव, बाव। सं. वायु=हवा] अंडबंड, निरर्थक, व्यर्थ। उ.—जनम गँवायौ ऊआबाई। भजे न चरन-कमल जदुपति के, रह्यौ बिलोकत छाई—१-३२८।

ऊक—संज्ञा पुं. [सं. उल्का] (१) टूटता तारा, उल्का। (२) आँच, ताप, ताव। उ.—हृदय जरत है दावानल ज्यो कठिन बिरह की ऊक।

ऊकना—क्रि. अ. [हि. चूकना का अनु.] चूकना, भूल जाना।

क्र. स.—छोड़ जाना।

क्रि. स. [सं. उल्का, हि. ऊक] जलाना, भस्म करना।

ऊख—संज्ञा पुं. [सं. इक्षु] ईख, गन्ना। उ.—हरि-स्वरूप सब घट यौ जान्यौ। ऊख माहि ज्यौ रस है सान्यौ—३-१३।

संज्ञा पुं. [सं. उष्ण] गर्मी, ताप।

वि.—गरम, तप्त।

ऊखम—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊष्म] गरमी, तपन।

ऊखल—संज्ञा पुं. [सं. उलूखल] (१) ओखली, काँडी, हावन। (२) एक तरह का पत्थर।

ऊखा—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊष्मा] आग, ताप। उ.—और दिनन ते आजु दहो हम ऊखा ल्याई। देखत ज्योति बिलास दई मुख बचन डिठाई—११४१।

संज्ञा स्त्री. [सं उषा.] प्रात.काल, उषाकाल।

ऊगत—क्रि. अ. [हि. उगना] उदय होकर, उदय होते होते। उ.—मानिक मध्य पास चहुँ मोती पंगति पंगति झलक सिंदूर। रेग्यो जनु तम तट तारागन ऊगत घेरयौ सूर—१८९६।

ऊगना—क्रि. अ. [हि. उगना] उदय होना, निकलना।

ऊज—संज्ञा पुं. [सं. उद्धन] उपद्रव, ऊधम।

ऊजड़—वि. [हि. उजड़ना] उजड़ा हुआ, सूनसान, बिना बसा हुआ।

ऊजर—वि. [हि. उजला] सफेद, उजला।

वि. [हि. उजडना] उजाड़, बिना बसा हुआ। उ.—ज्यो ऊजर खेरे के देवन को पूजै को मानै। त्यों हम बिनु गोपाल भए ऊधो कठिन प्रीति को जानै—३३०९।

ऊजरा—वि. [हि. उजला] सफेद, उजला।

ऊटना—क्रि. अ. [हि. औटना=खलबलाना] (१) उत्साहित होना, उमंग मे आना। (२) सोच-विचार करना।

ऊटपटाँग—वि. [हि. ऊँट + पर + टाँग] (१) बेढंगा, बेमेल, टेढ़ा-मेढ़ा। (२) व्यर्थ, निरर्थक।

ऊड़ना—क्रि. स. [सं. ऊढ] विचार करना।

ऊढ़ना—क्रि. अ. [सं. ऊह = संदेह पर विचार] सोच-विचार करना, अटकल लगाना।

ऊढ़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विवाहिता स्त्री। (२) वह परकीया नायिका जो पति को छोड कर किसी अन्य से प्रेम करे।

ऊत—वि. [सं. अपुत्र] (१) जिसके पुत्र न हो, निपूता। (२) उजड्ड।

ऊतर—संज्ञा पुं. [सं. उत्तर] (१) उत्तर, जबाब। (२) बहाना।

ऊतला—वि. [हि. उतावला] चंचल, तेज।

ऊतिम—वि. [सं. उत्तम] अच्छा, श्रेष्ठ।

ऊदा—वि. [अ. ऊद अथवा फा. वबूद] बैंगनी रंग का।

ऊधम—संज्ञा पुं. [सं. उद्धम= ध्वनित] उपद्रव, उत्पात, हल्ला-गुल्ला।

ऊधमी—वि. [हिं. ऊधम] उत्पाती, उपद्रवी।

ऊधव, ऊधो—संज्ञा पुं. [सं. उद्धव] श्रीकृष्ण के सखा एक यादव जिन्हें ज्ञान का गर्व था और जो गोपियों को ज्ञानोपदेश देने गये थे।

ऊन—संज्ञा पुं. [सं. ऊर्ण] (१) भेड़ बकरी के रोएँ जिन से गरम कपड़े बनते है। (२) दुख, ग्लानि।

वि. [सं.] (१) कम, थोड़ा। (२) तुच्छ, हीन।

ऊनता—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊन] (१) कमी, घटी। (२) हीनता, तुच्छता।

ऊना—वि. [सं. ऊन] (१) कम। (२) हीन।

ऊनी—संज्ञा स्त्री. [सं. ऊन] उदासी, ग्लानि।

ऊनो, ऊनौ—वि. [सं. ऊन] (१) कम, थोडा। (२) तुच्छ, हीन।

ऊपर—क्रि. वि. [सं. उपरि] (१) ऊँचाई पर। (२) आधार पर, सहारे पर। उ.—(क) भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर बोले बचन सकल सुखदाई—१-३। (ख) —मेरे हेत दुखी तू होत। वै अधर्म तो ऊपर होत —१-२९०। (ग) तुव ऊपर प्रसन्न मैं भयौ--९-३। (घ) दूत पठाइ देहु ब्रज ऊपर नन्दहिं अति डरपावहु —५२२। (३) प्रकट में, प्रत्यक्ष में। (४) अतिरिक्त, पर।

मुहा.—ऊपर (से)—इसके अतिरिक्त, इस के साथ-साथ। उ.—जय अरु विजय वर्म कह कीन्हौ, ब्रह्म सराप दिवायौ। असुर-जोनि ता ऊपर दीन्ही धर्म-उच्छेद करायौ—१-१०४। ऊपर ऊपर—बिना किसी को बताये या जताये।

ऊपरी—वि. [हि. ऊपर] (१) ऊपरी। (२) बाहरी, दिखाऊ।

ऊब—संज्ञा स्त्री. [हि. ऊभ=हौसला, उमग] उत्साह, उमंग। उ.—नंदनंदन लै गए हमारी अब ब्रज कुल की ऊब। सूरस्याम तजि और सूझे ज्यों खेरे की दूब —३३६१।

संज्ञा स्त्री. [हि. ऊबना] घबराहट, उद्वेग।

ऊबट—संज्ञा पुं. [सं. उद् = बुरा + वर्त्म, प्रा. वट्ट=मार्ग] अटपट रास्ता, कुमार्ग।

वि.—ऊँचा-नीचा।

ऊबड़-खाबड़—वि. [अनु.] जो समतल न हो, ऊँचा-नीचा, अटपट।

ऊबना—क्रि. अ. [सं. उद्वेजन, पा. उब्बिजन, पु. हिं. उबियाना] उकताना, घबराना।

ऊबर—संज्ञा पुं. [हि. उबरना] उबरने का भाव या क्रिया।

वि.— बचा हुआ, शेष।

ऊबरना—क्रि. अ. [हि. उबरना] उबरना।

ऊबरी—क्रि. अ. [हि. उबरना] मुक्त हुई, बच गयी, छुटकारा पा गयी। उ.—बडी करबर टरी, साँप सौं ऊबरी, बात कै कहत तोहि लगति जरनी—६६८।

ऊभ—वि. [हि. ऊभना=खड़ा होना] ऊँचा, उठा हुआ।

संज्ञा स्त्री. [हि. ऊब] (१) उद्वेग, घबराहट। (२) हौसला, उमंग। (३) उमस, गरमी।

ऊभचूभ—संज्ञा स्त्री. [हि. ऊभ] पानी में डूबना-उतराना।

ऊभट—संज्ञा पुं. [हिं. ऊबड़, ऊबट] ऊबड़-खाबड मार्ग, कुमार्ग।

वि.—ऊँचा-नीचा, अटपटा।

ऊभना—क्रि. अ. [सं. उद्भवन = ऊपर होना] उठना, खड़ा होना।

क्रि. अ.— [हि. ऊबना] घबराना, उकताना।

ऊभीं—क्रि. अ. [हि. ऊभना] उठीं, उमड पड़ीं, खड़ी हुईं। उ.—करुना करति मँदोदरि रानी। चौदहसहस सुन्दरी ऊभी (उमरी) उठै न कंत महा अभिमानी —९-१६०।

ऊमक—संज्ञा स्त्री. [सं. उमंग] झोक, उठान, झपेटा, वेग।

ऊमना—क्रि. अ. [देश.] उमड़ना, उमगाना।

ऊमर, ऊमरि—संज्ञा पु. [सं. उदुंबर] गूलर।

ऊमस—संज्ञा स्त्री. [हि. उमस] गरमी, उमस।

ऊर—संज्ञा पुं. [देश.] ओर, सीमा।

ऊरज—संज्ञा पुं. [हि. उरोज, उरज] स्तन, कुच। उ.—चारु कपोल पीक कहाँ लागी ऊरज पत्र लिखाई —२१२९।

वि. [सं. ऊर्ज] बली, शक्तिशाली।

संज्ञा पु. बल, शक्ति।

ऊरध—वि. [सं. ऊर्द्ध्व] (१) ऊँचा, ऊपर का। उ.—(क) ऊरध स्वाँस चरन गति थाक्यो, नैनन नीर न रहाइ—२६५०। (ख) परी रहत ना नहत कबहू कछु भरि भरि ऊरध श्वाँस—सा०-२६। (२) खड़ा।

क्रि. वि.—ऊपर, ऊपर की ओर। उ.—अदभुत राम नाम के अंक।······। मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग, जाकैं बल उड़ि ऊरध जात—१-९०।

ऊरधरेता—वि. [सं. ऊर्द्धवरेता] इंद्रियों को वश में रखनेवाला, ब्रह्मचारी।

संज्ञा पुं.—योगी।

ऊरु—संज्ञा पु. [सं.] जानु, जंघा।

ऊर्ज—वि. [सं.] बली।

संज्ञा पुं.—(१) बल। (२) एक काव्यालंकार

जिसमें सहायकों के न रहने पर भी उत्तम बने रहने या घमंड न करने का वर्णन रहता है।

ऊर्जस्वल, ऊर्जस्वित, ऊर्जस्वी—वि. [सं.] (१) बली, शक्तिशाली। (२) प्रतापी, ओजयुक्त।

ऊर्जित—वि. [सं. ऊर्ज] बली, शक्तिशाली।

ऊर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] ऊन।

ऊर्ध्व—वि. [सं. उद्ध्व] (१) ऊँची, ऊपर की। उ.—वहा पुरान जु पढे अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूँटै—२-१६। (२) खड़ा।

क्रि. वि.—ऊपर की ओर।

ऊर्ध्वगामी—वि. [सं.] (१) ऊपर की ओर जानेवाला। (२) मुक्त।

ऊर्ध्वद्वार—संज्ञा पुं. [सं.] दसवाँ द्वार, ब्रह्मरंध्र।

ऊर्ध्वबाहु—संज्ञा पुं. [सं.] भुजा उठाये रहकर तप करनेवाले तपस्वी।

ऊर्ध्वरेता—वि. [सं.] इन्द्रियों को वश में रखनेवाला, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय।

संज्ञा पुं.—(१) शिव। (२) भीष्म। (३) हनुमान (४) योगी।

ऊर्मि, ऊर्मी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लहर, तरंग। (२) पीड़ा, दुख।

ऊर्मिमाली—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र।

ऊषा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) प्रभात। (२) पौ फटने की लाली। (३) बाणासुर की कन्या जो अनिरुद्ध को ब्याही थी।

ऊषाकाल—संज्ञा पुं. [सं.] प्रातःकाल।

ऊषापति—संज्ञा पु. [सं.] श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध।

ऊष्म—संज्ञा पुं. [सं.] गरमी, तपन।

वि.—गरम।

ऊष्मवर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] श, ष, स और ह।

ऊसर—संज्ञा पुं. [सं. ऊषर] वह भूमि जिसमें रेह की अधिकता के कारण कुछ न जमें। उ.—(क) एक अंश पृथ्वी कौ दयौ। ऊसर तामै तातै भयौ—६-५। (ख) या ब्रज कौ बसिबौ हम छाँड्यौ सो अपनै जिय जानी। सूरदास ऊसर की बरषा थोरे जल उतरानी—१०-३३७।

ऊह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विचार, अनुमान। (२) तर्क।

अव्य.—दुख या आश्चर्यसूचक शब्द।

ऊहा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोच-विचार। (२) तर्क-वितर्क।

ऊहापोह—संज्ञा पुं. [सं. ऊह + अपोह] तर्क-वितर्क, सोच-विचार।

ऋ

ऋ—देवनागरी वर्णमाला का सातवाँ स्वर। इसका उच्चारण स्थान मूर्द्धा है।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) देवताओं की माता अदिति। (२) बुराई, निंदा।

ऋक्—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वेदमंत्र। (२) ऋग्वेद।

ऋक्थ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धन। (२) सोना, स्वर्ण। (३) प्राप्त संपत्ति।

ऋक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भालू। (२) नक्षत्र।

ऋक्षपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भालुओं का नायक जांबवान। (२) नक्षत्रों का राजा चंद्रमा।

ऋग्वेद—संज्ञा पुं. [सं.] चार वेदों में एक।

ऋचा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेदमंत्र, स्तुति। उ.—ब्रज सुन्दरि नहिं नारि ऋचा स्रुति की सब आहि—१८६१।

ऋच्छ—संज्ञा पुं. [सं. ऋक्ष] (१) भालू। (२) नक्षत्र।

ऋच्छराज—संज्ञा पुं. [सं. ऋक्ष + राज] जांबवान। उ.—ऋच्छराज वह मनि तासो लै जाबवती को दीन्ही—१० उ.-२६।

ऋजु—वि. [सं.] (१) जो टेढ़ा न हो, सीधा। (२) जो कठिन न हो, सरल। (३) सरल स्वभाववाला। (४) अनुकूल, प्रसन्न।

ऋजुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सीधापन। (२) सुगमता। (३) सिधाई, सज्जनता।

ऋण—संज्ञा पुं. [सं.] उधार, कर्ज।

ऋणी—वि. [सं. ऋणिन्] (१) जिसने ऋण लिया हो। (२) उपकार माननेवाला।

ऋत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मोक्ष। (२) जल। (३) कर्मफल।

वि.—(१) दीप्त। (२) पूजित।

ऋतु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) प्रकृति की स्थिति के अनुसार वर्ष के विभाग। (२) यज्ञ। (३) रजोदर्शन के बाद का समय।

ऋतुचर्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] ऋतु के अनुसार खान-पान की व्यवस्था।

ऋतुराज—संज्ञा पुं. [सं.] वसन्त ऋतु।

ऋत्विज—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ करनेवाला।

ऋद्ध—वि. [सं.] संपन्न, समृद्ध।

ऋद्धि—संज्ञा स्त्री. [सं.] समृद्धि, बढ़ती।

ऋन—संज्ञा पुं. [सं. ऋण] (१) उधार, कर्ज। उ.—सबै क्रूर मोसौं ऋन चाहत कहौ कहा तिन दीजै—१-१९६। (२) ऋण, उपकार। उ. जौ पै नाहीं मानत प्रभु बचन ऋन। तौ का कहिए सूर स्याम सिन—३३९४।

ऋनिया—वि. [सं. ऋणी] ऋणी, देनदार।

ऋनी—वि. [सं. ऋणी] (१) जिसने ऋण लिया हो। (२) उपकार माननेवाला, उपकृत, अनुगृहीत। उ.—गर्भ देवकी के तन धरिहौ जसुमति को पय पीहौं। पूरब तप बहु कियो कष्ट करि इनको बहुत ऋनी हौं।—११८३।

ऋषभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैल। (२) राम की सेना का एक बंदर। (३) संगीत के सात स्वरों में से दूसरा।

ऋषभदेव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राजा नाभि के पुत्र जो विष्णु के चौबीस अवतारों में माने जाते है। (२) जैन धर्म के आदि तीर्थंकर।

ऋषभध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

ऋषि—संज्ञा पु. [सं.] (१) वेदमंत्रों का काश करनेवाला। (२) तत्वज्ञानी।

ए

ए—देवनागरी वर्णमाला का आठवाँ स्वर। 'अ' और 'इ' के संयोग से बना है। कंठ और तालु से इसका उच्चारण होता है।

ऍचपेंच—संज्ञा पुं. [फा. पेच] (१) उलझन। (२) दाँवपेच।

ऍंड़ा-बेंड़ा—वि. [हिं. बेड़ा] अंडबंड, उलटा सीधा।

ऍंडुआ—संज्ञा पुं. [हिं. ऐंडना] गेंडुरी, कुंडली, बिंडआ।

ए—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

अव्य.—एक अव्यय जिसका प्रयोग संबोधन के लिए किया जाता है।

सर्व. [सं. एषः] यह, ये। उ.—(क) छाँड़त छिन में ए जो सरीरहि गहि कै व्यथा जात हरि लैन—२७६८। (ख) लोचन लालच ते न टरै। हरि-मुख ए रंग सग मिधे दाधौ फिरैं जरै—२७७०।

एई—सर्व. सवि. [सं. एष. + हिं. ही] यह ही, ये ही। उ.—(क) अघा बका संहारन ऐई असुर सँहारन आए—२५८१। (ख) एई माधव जिन मधु मारे—२५६८।

एऊ—सर्व. सवि. [सं. एष. + हिं. ऊ (प्रत्य.)] यह भी, ये भी। उ.—ताहीं ते मोहन बिरहिनि को एऊ ढीठ करे—२८४१।

एकंग, एकंगी—वि. [हिं. एक + अंग] एक तरफ का, एक पक्ष का।

एकंत—वि. [सं. एकांत] जहाँ कोई न हो, सूना।

एकांत—वि. [सं.] (१) अत्यन्त, नितांत। (२) अलग, पृथक।

संज्ञा पुं. [सं.] निर्जन, एकांत। उ.—बैठि एकात जोहन लगे पंथ शिव, मोहिनी रूप कब दै दिखाई—८-१०।

एक वि. [सं.] (१) इकाइयों में सबसे पहली संख्या। (२) अकेला, अद्वितीय। उ.—प्रभु कौ देखौ एक सुभाई—१-८। (३) एक ही प्रकार का, समान, तुल्य।

मुहा.—एकटक लागि आशा रही—बहुत समय से आसरा बँधा था। उ.—जन्म ते एकटक लागि आसा रही बिषय बिष खात नहि तृप्ति मानी—१-११०। एक आँक (या अंक)—पक्की बात। एकटक—दृष्टि गड़ाकर। एकताक—समान, बराबर। उ.—सखन संग हरि जैंवत छाक। प्रेम सहित मैया दै पठयौ सबै बनाए हैं एक (इक) ताक—४६६। एकतार—(१) वि.—समान रूप-रंग-नाम का। (२) क्रि. वि.—सम भाव से। एक एक कर—अलग अलग, अकेले-अकेले। उ—आजु हौ एक-एक करि टरिहौं। कै तुमही कै हमहीं, माधौ, अपने भरोसे लरिहौं—१-१३४।

एकचक्र—संज्ञा पु. [सं.] (१) सूर्य का रथ जिसमें एक ही चक्र माना गया है। (२) सूर्य।

वि.—चक्रवर्ती।

एकचित—वि. [सं. एकचित्त] (१) स्थिर या एकाग्र मन का (२) समान विचार का।

एकछत्र—वि. [सं.] (१) अपने पूर्ण अधिकार से युक्त, निष्कंटक।
क्रि. वि.—प्रभुत्व के साथ।

एकज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शूद्र। (२) राजा।
वि. [सं. एक + एव, प्रा. ज्जेव] केवल एक, एक मात्र, अकेला।

एकटक—वि. [हि.] जो पलक न झपाये, अपलक।

एकठी—वि. [हि. इकट्ठा] एक स्थान पर, एक ठौर, एकत्र। उ.—इतहुँकी उतहुँकी सबै जुरी एकठी कहति राधा कहाँ जाति है री—१५२६।

एकत—क्रि. वि. [सं. एकत्र, प्रा. एक्त] एक जगह इकट्ठा, एकत्र।

एकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मेल, एका। (२) समानता।

एकतान—वि [सं] लीन, एकाग्रचित्त।

एकत्र—क्रि. वि. [सं.] इकट्ठा, एक जगह।

एकत्रित—वि. [सं.] जो इकट्ठा हुआ हो, जुटाया हुआ।

एकदंत—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।

एकदेशीय—संज्ञा पुं. [सं.] एकही स्थान या समय से संबंध रखनेवाला, जो सदा न घटे।

एकन, एकनि—सर्व. [सं. एक+हि. नि] किसी-किसी, कोई-कोई। उ.—एकनि कौ दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै (हो)। एकनि लै मंदिर चढै, एकनि बिरचि बिगोवै (हो)—१-४४।

एकनिष्ठ—वि. [सं.] एक ही पर श्रद्धा या निष्ठा रखनेवाला।

एकरस—वि. [सं.] एक ढंग का, सदा एक-सा रहने वाला, अपरिवर्तनीय। उ.—(क) सिसु, किसोर, बिरधौ तनु होइ। सदा एकरस आतम सोइ—७-२। (ख) अज-अनीह-अविरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी—१०-१७१।

एकरूप—वि. [सं.] (१) समान रूप-रंग का, एक सा, एक समान। (२) ज्यों का त्यों, जैसे का तैसा। उ.—एक रूप ऊधो फिरि आए हरि चरनन सिर नायौ।

एकरूपता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समानता। (२) सायुज्य मुक्ति जिसमें जीवात्मा परमात्मा से मिल जाता है।

एकल—वि. [हि. एक] (१) अकेला। (२) एकता। (३) बेजोड़।

एकला—वि. [हि. एक] अकेला।

एकलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव का एक नाम। (२) कुबेर।

एकसर—वि. [हि. एक+सर (प्रत्य.)] (१) अकेला। (२) एक पल्ले या पर्त का।

एकहिं—वि. [सं. एक+हि. ही (प्रत्य.)] केवल एक, एक ही। उ.—सूरदास, कंचन अरु काँचहि, एकहि धगा पिरोयौ—१-४३।

एकांगी—वि. [सं.] (१) एक ओर का, एकपक्षीय। (२) हठी।

एकांत—वि. [सं.] (१) अति, अत्यन्त। (२) अलग, अकेला।
संज्ञा पुं.—सूना स्थान।

एकांतिक—वि. [सं. एकांत] एक स्थान से सम्बन्ध रखनेवाला, एकदेशीय।

एका—संज्ञा पुं. [सं. एक] मिलकर रहना, एकता।

एकाएकी—क्रि. वि. [हि. एक] सहसा, अचानक।
वि. [सं. एकाकी] अकेला, एकाकी।

एकाकी—वि. [सं. एकाकिन्] अकेला।

एकाक्ष—वि. [सं.] एक आँख का, काना।
संज्ञा पुं.—(१) शुक्राचार्य। (२) कौआ।

एकाग्र—वि. [सं.] (१) एक ओर लगा हुआ। (२) एक ओर ध्यान रखनेवाला।

एकात्मता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक होना। (२) एकता।

एकादशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि। इस दिन वैष्णव मतावलम्बी व्रत रखते हैं।

एकादस—वि. [सं. एकादश] ग्यारह।
संज्ञा पुं.—(१) ग्यारह का संख्याबोधक अंक। (२) ग्यारहवीं राशि अर्थात् कुंभ। इससे अर्थ निकला उरोज, स्तन। उ.—नवमी छोड अवर नहिं ताकत दस निज राखैं साल। एकादस लै मिलो बेगहूँ

जानहु नवल रसाल—सा. २९ ।

एकादसी—संज्ञा स्त्री. [सं. एकादशी] प्रत्येक पक्ष की ग्यारहवीं तिथि । इस दिन वैष्णव लोग अनाहार अथवा फलाहार करते हैं। उ.—एकादसी करैं निराहार—६-५ ।

एकै—वि. [हि. एक] एकही, केवल एक, निश्चित रूप से यही। उ.— (क) एकै चीर हुतौ मेरे पर, सो इन हरन चह्यौ—१-२४७ । (ख) मेरै मात-पिता-पति-बंधू, एकै टेक हरी—१-२५४ ।

एको—वि. [हि. एक] एक भी। उ.—(क) सूरदास प्रभु बिनु ब्रज ऐसो एको पल न सुहाइ—२५३८। (ख) सूरस्याम देखत अनदेखत बनत न एको बीर —सा.८२ ।

एकौ—सर्व. [स. एक+हि. औ (प्रत्य.)] एक भी। उ.—माया देखत ही जु गई । ना हरि-हित, न तू-हित, इनमै एकौ तौ न भई—१-५० ।

एकौझा—वि. [हि. एक, अकेला] अकेला।

एड़ियनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [हि. एड़ी] ऐड़ियों को। उ.—नान्हीं एड़ियनि, फल बिब न पूजे—१०-१३४ ।

एड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. एड्डुक=हड्डी] पैर की गद्दी का पीछे की ओर निकला हुआ भाग।

एत—वि. [सं. इयत्] इतना (अधिक), इतनी (अधिक मात्रा का)। उ.—(क) कहि धौं री तोहि क्यौं करि आवै, सिसु पर तामस एत—३४६ ।

एतदर्थ—क्रि. वि. [सं.] इसके लिए।

वि.—इस काम के लिए बना हुआ।

एतद्देशीय—वि [सं.] इस देश का, इस देश से संबंधित ।

एता—वि. [हि. एत] इतना, ऐसा । उ.—तनक दधि कारन जसोदा एता कहा रिसाही ।

एतिक—वि. स्त्री. [हिं. एती = इतनी + एक] इतनी (अधिक), इस मात्रा की। उ.—जेतिक सैल-सुमेरु धरनि मै, भुज भरि आनि मिलाऊँ। सप्त समुद्र देउँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ—९-१०७ ।

एती—वि. स्त्री. [हि. एता] इतनी, ऐसी। (संख्या-वाचक) उ.—(क) एती करबर है हरी, देवनि करी सहाय। तब तै अब गाढी परी, मो कौ कछु न सुझाई —५८६। (ख) एती केती तुमरी उनकी कहत बनाइ बनाइ—३३२४ ।

एते—वि. [हि. एता] (१) इतने (अधिक, संख्यावाचक)। उ.—गोंउ बसत एते दिवसनि मै, आजु कान्ह मै देखे—१०-७३० । (२) इस मात्रा के। उ.—हौ तो कहत तिहारे हित की एते मो कत भरमत—३३८७।

क्रि. वि.—इतने पर भी, ऐसा होने पर भी। उ.—एते पर नहि तजत अचोडी कपटी कंस कुचाली —२५६७।

एतै—वि. [सं. इयत्] इस मात्रा का, इतना। उ.—(क) कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात—१-३१३। (ख) तनक दधि कारनै यसोदा, एतौ कहा रिसाही। (ग) सो सपूत परिवार चलावै एतो लोभी धूग इनही—पृ. ३२२ ।

एरी—अव्य. [सं. अयि, हि. हे, ऐ+री] एक संबोधन। उ.—(एरी) आनन्द सौं दधि मथति जसोदा, घमकि मथनियाँ घूमै—१०-१४७ ।

एला—संज्ञा स्त्री. [सं. एलाम्] इलायची ।

एवं—क्रि. वि. [सं.] ऐसा ही, इसी प्रकार ।

एव—अव्य. [सं.] (१) ही । (२) भी।

एवमस्तु—यौ. वा. [सं. एवं] ऐसा ही हो (शुभाशीर्वाद)। उ.—एवमस्तु निज मुख कह्यौ पूरन परमानंद —१८६१ ।

एषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] ( ) इच्छा। (२) छानबीन। (३) खोज।

एषणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] इच्छा।

एह, एहा—सर्व. [सं. एषः] यह, ये। उ.—भक्तनि हित तुम धारी देह। तरिहैं गाइ-गाइ गुन एह —७-२ ।

वि.—यह।

एहि—सर्व. [हि. एह + हि (प्रत्य)] यही।

वि.—यही, इसी। उ.—(क) एहि थर बनी

क्रीड़ा गज-मोचन और अनन्त कथा स्रुति गाई—१–६ । (ख) भूसुत आइगो एहि बेर—सा. ५४ ।

एहु—सर्व. [हिं. एह] यह । उ.—समय बिचारि मुद्रिका दीजौ, सुनौ मंत्र सुत एहु—९-७४ ।

एहो—अव्य. [हिं. हे, हो] हे, ऐ । (सम्बोधन शब्द) ।

ऐ

ऐ—देवनागरी वर्णमाला का नवाँ स्वर । कंठ और तालु से इसका उच्चारण होता है ।

ऐंचत—क्रि. स. [पुं. हिं. हींचना, हिं ऐंचना = खींचना] खींचता है । उ.—इत-उत देखि द्रौपदी टेरी । ऐंचत बसन, हँसत कौरव-सुत, त्रिभुवननाथ सरन हौ तेरी—१–२५१ ।

ऐंचति—क्रि स. [हिं. ऐंचना] खीचती है । उ.—अपनी रुचि जित ही जित ऐंचति इंद्रिय-कर्म-गटी । हौं तितही उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी—१–९८ ।

ऐंचना—क्रि. स. [हिं. खींचना, पू. हिं. हींचना] खींचना, तानना ।

ऐंचि—क्रि. स. [हिं. खीचना, ऐंचना] उखाड़ कर, खींचकर । उ.—(क) नीरहू तै न्यारौ कीनौ, चक्र नक्र-सीस छीनौ, देवकी के प्यारे लाल ऐंचि लाए थल मै—८–५ । (ख) नीलांबर पट ऐंचि लियो हरि मनु बादर ते चाँद उतारयौ—४०७ । (ग) गहि पटकि पुहुमि पर नेक नहिं मटकियो दंत मनु मृनाल से ऐंचि लीन्हे—२५९६ ।

ऐंछना—क्रि. स. [सं. उच्छन = चुनना] (१) साफ करना, झाड़ना । (२) बाल में कंघी करना ।

एंठ—संज्ञा पुं. [हिं. ऐंठन] (१) अकड़, ठसक । (२) गर्व, घमंड । (३) द्वेष, विरोध ।

ऐंठति—क्रि. अ. [हिं. ऐंठना] दर्राती हैं, सीधी तरह बात नहीं करती । उ. आँखियन तब ते बैर धरयौ । . .... । तब ही ते उन हमही भुलाई गयी उतही को धाई । अब तो तरकि तरकि ऐंठति हैं लेनी लेति बनाई ।

ऐंठन—संज्ञा स्त्री. [सं. आवेष्ठन] (१) घुमाव, लपेट, बल । (२) तनाव, खिंचाव ।

ऐंठना—क्रि. स. [हिं. ऐंठन] (१) बटना, घुमाव या बल देना । (२) धोखा देकर ले लेना ।

क्रि. अ.—(१) बल खाना, खिंचना । (२, अकड़ना । (३) घमण्ड करना, इतराना । (४) दर्राना ।

ऐंठि—क्रि. स. [हि.ऐंठना] बल या घुमाव देकर, बटकर। उ.—भुजा ऐंठि रज-अंग चढ़ायो—२६०६ ।

ऐंठी—क्रि. अ. [हिं. ऐंठना] तन गयी, खिंची, अकड़ी । उ.—चतुराई कहाँ गई बुद्धि कैसी भई चूक समुझे बिना भौंह ऐंठी—१८७१ ।

वि.—जिसने मान किया हो, जो अप्रसन्न हो ।

ऐंठे—वि. [हिं. ऐंठना] अभिमानी, गर्व भरे । उ.—बाएँ कर बाज-बाग दाहिन हैं बैठे । हाँकत हरि हाँक देत गरजत ज्यौ ऐंठे—१-२३ ।

ऐंठ्यो—क्रि.अ.[हि.ऐंठना]घमण्ड किया,अकड़ दिखायी। उ.—कुबलिया मल्ल मुष्टिक चानूर सो होउ तुम सजग कहि सबन ऐंठ्यो—२६६३ ।

ऐंड़—संज्ञा पुं. [हिं. ऐंठ] ठसक, गर्व, शान ।

ऐंड़त—क्रि. स. [हिं. ऐंड़ना] अँगड़ाई लेते हैं । उ.—ऐंड़त अंग जम्हात बदन भरि कहत सबै यह बानी —१८५४।

ऐंड़ना—क्रि. अ. [हिं. ऐंठना] (१) बल खाना । (२) अँगड़ाई लेना । (३) घमंड दिखाना ।

ऐंड़ात—कि. अ. [हिं. ऐंड़ना] (१) अँगड़ाई लेते हैं, बदन तोड़ते है । उ.—आलस हैं भरे नैन बैन अटपटात जात ऐंड़ात जम्हात जात अंग मोरि बहियाँ मेलि—१५८२ । (२) इठलाते हैं ।

ऐंड़ाना—क्रि. अ. [हिं. ऐंड़ना] (१) अँगड़ाई लेना । (२) ठसक दिखाना ।

ऐंड़ानी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. ऐंड़ाना] अँगड़ाई ली । उ.—बाँह उँचाइ जोरि जमुहानी ऐंड़ानी कमनीय कामिनी—२११७ ।

ऐंड़ावत—क्रि. अ. [हिं. ऐंड़ाना] अँगड़ाई लेते हैं । उ.—(क) खेलत तुम निसि अधिक गई, सुत नैननि नींद झँपाई । बदन जँभात, अंग ऐंड़ावत, जननि पलोटहि पाई—१०-२४२। (ख) कबहुँक बाँह जोरि ऐंड़ावत बहुत जम्हात खरे—१९७४ ।

ऐंड़ी—क्रि. अ. [हिं. ऐंड़ना] घमण्ड करके, इठलाकर । उ.—जिनसों कृपा करी नँदनंदन सो काहे न ऐंड़ी डोलै—३०६१ ।

ऐंड़ो, ऐंड़ौ—क्रि.अ.[हिं.ऐंठना, ऐंड़ना] इतराकर,घमण्ड करके। उ.—धन-जोबन-मद ऐंड़ौ ऐड़ौ, ताकत नारि पराई। लालच-लुब्ध स्वान-जूठनि ज्यौं, सोऊ हाथ न आई—१-३२८।

मुहा.—ऐंड़ो डोलै–इतराता फिरता है, अकड़ दिखाता घूमता है। उ.–जिन पर कृपा करी नँदनंदन सो ऐंड़ो काहे नहिं डोलै—३०९१।

ऐ—संज्ञा—पुं. [सं.] शिव।

अव्य. [सं.अयि या हिं. हे] सम्बोधन-सूचक अव्यय।

ऐक्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक होने का भाव। (२) एका, मेल।

ऐगुन—संज्ञा पुं [सं. अवगुण] दोष, बुराई।

ऐन—संज्ञा पुं. [सं. अयन] (१) गति, चाल। (२) मार्ग, राह। उ.—परम अनाथ, बिबेक नैन बिनु, निगम-ऐन क्यों पावै? पग-पग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै—१-४८। (३) स्थान। उ.—सोभा सिंधु समाइ कहाँ लौं हृदय साँकरे ऐन–२७६५। (४) अंश। उ.—गग-तरंग बिलोकत नैन।""। त्रिभुवन हार सिगार भगवती, सलिल चराचर जाके ऐन—९-१२। (५) निधि, राशि, भंडार। उ.-(क) निरखत अंग अधिक रुचि उपजी नख-सिख सुन्दरता कौ ऐन—७४२। (ख) हौं जल गई जमुना लेन। मदन रिस के आदि ते मिल मिली गुनगन ऐन—सा. ६६। (६, समय, काल। उ.—उर बाँध्यौ तन पुलकि पसीज्यौ, बिसरि गए सुख-चैन। ठाढ़ी ही जैसैं तैसैं झुकि, परी धरनि तिहि ऐन–७४६।

ऐनु—संज्ञा पुं. [सं. अयन, हिं. ऐन] (१) मार्ग, राह। उ.—त्रिबिध पवन जहँ बहत निसादिन सुभग-कुंज-घर-ऐनु। सूर स्याम निज धाम बिसारत, आवत यह सुख लैनु–४४८। (२) आश्रम,भवन। उ.—इहाँ रहहु जहँ जूठनि पावहु, ब्रजवासिनि कैं ऐनु। सूरदास ह्याँ की सरबरि नहिं, कल्पवृच्छ, सुर-धेनु–४९१। (३) अंश। उ.—आतपत्र मयूर चंद्रिका लसति है रवि ऐनु—२७५५। (४) भाग, प्राप्य वस्तु। उ.—रह न सकति मुरली मधु पीवत चाहत अपनो ऐनु—२३५५।

ऐनोखी—वि.[हिं.अनोखी] अनोखी,विचित्र। उ.–लीन्हे फिरति रूप त्रिभुवन को ऐनोखी बैनिजारिनि–१०४०।

ऐपन—संज्ञा वि. [सं. लेपन] (१) चावल और हल्दी से बना एक मांगलिक द्रव्य जिसका छापा पूजा के अवसर पर दीवार,कलश आदि पर लगाते हैं। (२) सुनहरी कांति। उ.—ऐपन की सी पूतरी (सब) सखियनि कियौ सिगार—१०-४०।

ऐबौ—क्रि. अ. [हि. आना] आना,आवेंगे। उ.—अंकम भरि भरि लेत सूर-प्रभु, काल्हि न इहिं पथ ऐबौ—७७६।

संज्ञा पुं. [हि. आना] आना, आने की क्रिया। उ.—(क) बनत नहीं जमुना को ऐबौ। सुन्दर स्याम घाट पर ठाढे, कहौ कौन विधि जैबो—७७६। (ख) सूरदास अब सोई करिए बहुरि गोकुलहिं ऐबो–३३७२।

ऐरापति—संज्ञा पुं. [सं. ऐरावत] ऐरावत हाथी। उ.—सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत। धवल बरन ऐरापति देख्यो उतरि गगन तैं धरनि धँसावत।

ऐरावत—संज्ञा पुं. [सं] इन्द्र का हाथी जो पूर्व दिशा का दिग्गज है।

ऐल—संज्ञा पुं. [सं.] पुरूरवा जो इला का पुत्र था।

संज्ञा पुं. [हि.अहिला] (१) बाढ़। (२) अधिकता। (३) शोरगुल, खलबली। (४) समूह।

संज्ञा पुं [देश] एक कँटीली लता जिसकी पत्तियाँ लगभग एक फीट लंबी होती हैं।

ऐलि—संज्ञा पुं. [देश. ऐल] एक कँटीली लता। उ—फूले बेल निवारी फूली एलि फूले मरुवी मोगरो सेवती फूल बेल सेवती संतन हित ही फूल डोल—२४०५।

ऐश्वर्य—संज्ञा पु. [सं.] (१) धन-संपत्ति। (२) अधिकार, प्रभुत्व।

ऐसनि—वि. [सं. ईदृश, हिं. ऐसा] ऐसे-ऐसे। उ.—तृनाबर्त से दूत पठाए। ता पाछै कामासुर धाए। बकी पठाइ दई पहिलैहीं। ऐसनि कौ बलवै सब लैहीं–५२१।

ऐसा—वि. [सं. ईदृश] इस प्रकार का।

ऐसियै—वि. सवि. [सं. ईदृश, हिं. ऐसा] ऐसाही, ऐसी। उ.—(क) ब्रह्मा कह्यौ, ऐसियै होइ–१७-२। (ख) लागे लैन नैन जल भरि भरि तब मैं कानि न तोरी। सूरदास प्रभु देत दिनहिं दिन ऐसियै लरिकसलोरी—१०-२८६।

सूर हमैं मारग जनि रोकहु घर तें लीजै ओग।
संज्ञा स्त्री. [हि. ओक] गोद।

ओघ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, ढेर। (२) बहाव, धारा। (३) संतोष, तुष्टि।

ओछत - क्रि. स. [हि. ओछना] बालों में कंघी करता है।

ओछना—क्रि. स. [हिं. ऊँछना] बाल सँवारना, कंघी करना।

ओछनि—वि. [हिं. ओछा + नि (प्रत्य.)] तुच्छ व्यक्ति, क्षुद्र मनुष्य, खोटे। उ.—ऐसे जनम-करम के ओछे ओछनि हूँ व्यौहारत—१-१२।

ओछा—वि. [सं. तुच्छ, प्रा. उच्छ] (१) क्षुद्र, नीच, खोटा। (२) छिछला, कम गहरा। (३) हलका।

ओछाई—संज्ञा स्त्री. [हि. ओछा] नीचता, छिछोरापन, क्षुद्रता। उ.—हमहि ओछाई भई जबहि तुमको प्रतिपाले। तुम पूरे सब भाँति मातु पितु संकट घाले —११३७।

ओछी—वि. स्त्री. [हिं. ओछा] क्षुद्र, तुच्छ, बुरी। उ.—ओछी बुद्धि जसोदा कीन्ही—३९१।

ओछे—वि. [हि. ओछा] जो गंभीर या उच्चाशय न हो, तुच्छ, क्षुद्र, छिछोरा, बुरा, खोटा। उ.—इन बातन कहुँ होति बड़ाई। ड.रत, खात देत नहि काहू ओछे घर निधि आई।

ओज—संज्ञा पुं. [स.] (१) तेज, प्रताप। (२) उजाला, प्रकाश। (३) काव्य का एक गुण जिससे सुननेवाले के चित्त में उत्साह उत्पन्न होता है।

ओजना—क्रि. स. [सं. अवरुंधन, प्रा. ओरुज्झन, हि. ओझल] (भार) ऊपर लेना, सहन करना।

ओजस्विता—संज्ञा स्त्री. [सं.] तेज, कांति, प्रभाव।

ओजस्वी—वि. [सं. ओजस्विन्] तेजयुक्त, प्रतापी, ओजपूर्ण।

ओझ, ओझर—संज्ञा पुं. [सं. उदर, हि. ओझर] (१) पेट। (२) आँत।

ओझा—संज्ञा पुं. [सं. उपाध्याय, प्रा. उवज्झाओ, उवज्झाय] (१) ब्राह्मणों की एक जाति। (२) भूत-प्रेत झाड़नेवाला।

ओट—संज्ञा स्त्री. [सं उट = घासफूस] (१) रोक, आड़, अंतर, व्यवधान, ओझल। उ.—(क) ना हरि-हित, ना तू हित, इनमें एकौ तौ न भई। ज्यौं मधु माखी सँचति निरन्तर, बन की ओट लई—१-५०। (ख) बसन ओट करि कोट बिसंभर, परन न दीन्हौं झाँको —१-११३। (ग) ममता-घटा मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारौ। बूड़त कतहुँ थाह नहि पावत, गुरुजन ओट अधारौ—१-२०६। (घ) पलक भरे की ओट न सहती अब लागे दिन जान—२७४७। (ङ) सगुन सुमेर प्रगट देखियत तुम तृन की ओट दुरावत—३११५। (च) ललना लै लै उछंग अधिक लोभ लागैं। निरखति निदति निमेष करत ओट आगैं—१०-६०। (छ) सूरदास प्रभु दुरत दुराये डुंगरनि ओट सुमेरु—४५८। (२) शरण, रक्षा। उ.—(क) बड़ी है राम नाम की ओट। सरन गये प्रभु काढि देत नहि करत कृपा कैं कोट—१-२३२। (ख) भागी जिय अपमान जानि जनु सकुचाने ओट लई—१७९१।

ओटना—क्रि. स. [सं. आवर्तन, पा. आवट्टन] (१) कपास के बिनौले अलग करना। (२) अपनी ही बात बार बार कहना। (२) स्वयं (आपत्ति, बात आदि) सहन करना।

ओड़न—संज्ञा पुं. [हि ओड़ना] (१) वार रोकने की वस्तु। (२) ढाल।

ओड़ना—क्रि. स. [हि. ओट] (१) रोकना, आड़ करना (२) सहन करना, झेलना। (३) फैलाना, पसारना। (४) धारण करना, पहनना।

ओड़हु—क्रि. स. [हि. ओड़ना] फैलाओ, पसारो। उ. —लेहु मातु, सहिदानि मुद्रिका, दई प्रीति करि नाथ। सावधान ह्वै सोक निवारहु, ओड़हु दच्छिन हाथ—६-८३।

ओड़ि—क्रि. स. [हि. ओड़ना] (अपने) ऊपर ले, स्वीकार कर, भागी बन जा, सहन कर। उ.—बोल्यौ नहीं, रह्यौ दुरि बानर, द्रुम मैं देहि छपाइ। कै अपराध ओड़ि तू मेरौ,कै तू देहि दिखाइ—९-८३।

ओड़िये—क्रि. स. [हि. ओड़ना] आड़ करो,रोको, सहो। उ.—ओड़िये नँदनंद जू के चलत ही दृगवान। राखिये दृग मद्ध दीजै अनत नाही जान—सा.१०७।

ओड़ै—क्रि. स. [हि. ओड़ना] **रोकता है, सहता है।** उ.—नृप भूषन कपि पितु गज पहिलो आस बचन की छोडै। तिथि नछत्र के हेतु सदाई महाविपति तन ओड़ै—सा. ४३।

ओढ़—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] **अपने ऊपर ले, भागी बने, सहन करे।** उ.—कै अपराध ओढ़ (ओढ़ि) अब मेरौ, कै तू देहि दिखाइ—९-८३।

ओढ़त—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] **ओढ़ता है, (वस्त्र से शरीर) ढकता है।** उ.—पीतांबर यह सिर तैं ओढ़त, अंचल दै मुसुकात—१०-३३८।

ओढ़न—संज्ञा स्त्री. [हि. ओढ़ना] **ओढ़ने की क्रिया।** उ.—डासन काँस कामरी ओढ़न बैठन गोप सभा की—२२७५।

ओढ़ना—क्रि.स. [सं.उपवेष्ठन,प्रा.ओवेड्ढन] **(१) किसी वस्त्र से ढकना (२) अपने सिर लेना, भागी बनना।**

संज्ञा पुं.—**ओढ़ने का कपड़ा।**

ओढ़नि, ओढ़नी—संज्ञा स्त्री. [हि. ओढ़ना] **स्त्रियों के ओढ़ने का वस्त्र, उपरैनी, चादर, फरिया।** उ.—(क) पीतांबर काकैं घर बिसरयौ, लाल ढिगनि की सारी आनी। ओढ़नि आनि दिखाई मोकौं, तरुनि नि की सिखई बुधि ठानी—६६५। (ख) सूरदास जसुमति सुत सौं कहै, पीत ओढ़नी कहाँ गँवाई—६६१।

ओढ़र—संज्ञा पुं. [हि. ओढ़ना] **बहाना, मिस।**

ओढ़ावा—क्रि. स. [हि. ओढ़ना, ओढ़ाना] **ढकना, आच्छादित करना।**

ओढ़िए—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] **देह ढकिए।**

मुहा.—**ओढ़िये पीठ—(अवसर और स्थिति के अनुकूल) काम कीजिए।** उ.—सूरदास के प्रिय प्यारी आपुहीं जाइ मनाइ लीजै जैसी बयारि बहै तैसी ओढ़िए जु पीठि—२०७५।

ओढ़े—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] **वस्त्र से) शरीर ढके, पहने हुए।** उ.—पियरी पिछौरी झीनी, और उपमा न भीनी, बालक दामिनि मानौ ओढ़े बारौ बारि-धर—१०-१५१।

ओढ़ैं—क्रि. स. [हि. ओढ़ना] **देह ढके।**

मुहा.—**ओढ़ै कि बिछावै—क्या करें, किस काम में लावें।** उ.—दुस्सह बचन हमें नहिं भावैं। जोग कथा ओढ़ैं कि बिछावैं।

ओढ़ौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओढ़ना] **ओढ़ने की चादर, ओढ़नी।**

ओत—संज्ञा स्त्री. [सं. अवधि] **(१) आराम, चैन। (२) आलस्य (३) मितव्ययता।**

संज्ञा स्त्री. [हि. आवत] **प्राप्ति, लाभ।**

संज्ञा पुं. [सं.] **ताने का सूत।**

वि.—**बुना हुआ, गुथा हुआ।**

ओत-प्रोत—वि. [सं.] **गुथा हुआ, बहुत मिला-जुला।**

ओता, ओतो, ओत्ता—वि. [हि उतना] **उतना।**

ओद—वि.[सं. उद = जल] **(१) गीला,तर, नम। (२) मग्न, निमग्न, लीन।** उ.—आनँदकंद, सकल सुख-दायक,निसि दिन रहत,केलि-रस-ओद—१०-११६।

संज्ञा पुं.—**नमी तरी।**

ओदन—संज्ञा पुं. [सं.] **पका हुआ चावल, भात।** उ.—(क) दधि ओदन दोना भरि दैहौं, अरु भाइन मैं थपिहौं—९ १६४। (ख) ओदन भोजन दै दधि काँवरि, भूख लगे तैं खैहौं—४१२। (ग) व्यंजन बर कर बर पर राखत, ओदन मधुर दह्यौ—४८६।

ओदर—संज्ञा पुं. [सं.उदर] **पेट।**

ओदरना—क्रि. अ. [हि. ओदारना] **(१) फटना। (२) गिर पडना, नष्ट होना।**

ओदा—वि. [सं. उद = जल] **गीला, नम।**

ओदारना—क्रि. स. [सं. अवदारण] **(१) फाड़ना। (२) गिराना, ढाना, नष्ट करना।**

ओदे—वि. [सं. उद् = जल] **गीले, नम, तर।** उ.—उत्तम बिधि सौं मुख पखरायौ, ओदे दसन अँगोछि—६०६।

ओधना—क्रि. अ. [सं. आबंधन] **(१) फँसना, उलझना। (२) काम में व्यस्त होना।**

ओधे—संज्ञा पुं. [सं. उपाध्याय] **स्वामी, अधिकारी।**

ओनंत—वि. [सं. अनुन्नत] **झुका हुआ, नत।**

ओनवना—क्रि. अ. [हि. उनवना] **(१) झुकना, नत होना। (२) घिर आना, उमडना।**

ओनाना—क्रि.स. [हि. उनाना] **कान लगाकर सुनना।**

ओप—संज्ञा. पुं. [हि. ओपना] (१) **चमक, दीप्ति, शोभा।** उ.—(क) सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यों अधिक ओप ओपी—३४८७। (ख) राधे तैं बहु लोभ करयौ। लावन रथ ता पति आभूषन आनन-ओप हरयौ—सा. उ.—१४। (२) **गौरव, सम्मान।** उ.—रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि प्रगटे भूतल महियाँ। आए ओप देन रघुकुल कौं, आनँदनिधि सब कहियाँ—६-१९।

ओपना—क्रि. स. [हि. ओप] **साफ करना, चमकाना, स्वच्छ करना।**

क्रि. अ.—**झलकना, चमकना।**

ओपनिवारी—वि. [हिं. ओप] **चमकनेवाली।**

ओपनी—संज्ञा स्त्री. [हि. ओप] **पत्थर या ईंट का टुकड़ा जिससे कोई वस्तु माँजी या (घिसकर) साफ की जाय।**

ओपी—क्रि. अ. स्त्री. [हि. ओपना] **झलकने लगी, चमकी।** उ.—जेती हती हरि के अवगुन की ते सबई तोपी। सूरदास प्रभु प्रेम हेम ज्यों अधिक ओप ओपी—३४८७।

ओबरी—संज्ञा स्त्री. [सं. विवर] **छोटा कमरा, कोठरी।** उ.—बिलग मति मानौ ऊधो प्यारे। वह मथुरा काजर की ओबरी (उबरी) जे आवैं ते कारे—३१७५।

ओभा—संज्ञा स्त्री. [हि. आभा] **कांति, चमक।** उ.—देखो री झलक कुंडल की ओभा—२६५२।

ओर—संज्ञा पुं. [सं. अवार = किनारा] (१) **अंत, सीमा, सिरा, छोर, किनारा।** उ.—सोभा-सिंधु अंग-अंगनि प्रति, बरनत नाहिंन ओर री—१०-१३९।

मुहा.—ओर (निबाह्यौ) निबाहे—**अंत तक कर्तव्य का पालन किया।** उ.—(क) और पतित आव्रत न आँखि-तर देखत अपनौ साज। तीनौं पन भरि ओर निबाह्यौ तऊ न आयौ बाज—१-९६। (ख) तीन्यौ पन मैं ओर निबाहे, इहै स्वाँग कौं काछै। सूरदास कौं यहै बड़ो दुख परत सबनि के पाछै—१-१३६। ओर आयो—**अंत निकट आ गया।**

(२) **आदि, आरम्भ।** उ.—हरि जू की आरती बनी। ......। नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर-असुर अनी। काल-कर्म गुन-ओर-अंत नहि, प्रभु इच्छा रचनी—२-२८।

संज्ञा स्त्री. [सं. अवार = किनारा] (१) **दिशा, तरफ।** (२) **पक्ष।** उ.—यादव बीर बराइ बटाई इक हलधर इक आपै ओर—१० उ.-६।

ओरती—संज्ञा स्त्री. [हि. ओलती] (१) **ढलुआ छप्पर के किनारे का वह भाग जहाँ से वर्षा का पानी नीचे गिरता है।** (२) **वह भाग जहाँ यह पानी गिरे।**

ओरमना—क्रि. अ. [सं. अवलंबन] **लटकना।**

ओरहना—संज्ञा पुं. [हिं. उरहना] **उलाहना।**

ओरा—संज्ञा पुं. [हि. ओला] **ओला, पत्थर।**

ओराना—क्रि. अ. [हि. ओर = अंत + आना] **चुक जाना, समाप्त होना।**

ओराहना—संज्ञा पुं. [हि. उराहना] **उलाहना।**

ओरी—संज्ञा स्त्री. [हि. ओलती] **छप्पर का वह भाग जहाँ से पानी नीचे गिरे।**

अव्य. [हि. ओ+री] **स्त्रियों के लिए संबोधन।**

सर्व. [हिं. ओर] **और कोई, दूसरी, अन्य।** उ.—यह उपदेस सुनहि ते ओरी—३३४५।

संज्ञा स्त्री. [हिं. ओर] (१) **ओर, दिशा, तरफ।** उ.—मनहुँ प्रचंड पवन बस पंकज गगन धूरि सोभित चहुँ ओरी—२४०४। (२) **पक्ष।**

ओरे—संज्ञा पुं. [हिं. ओला, ओरा] **ओला।** उ.—अपराधी मतिहीन नाथ हौं, चूक परी निज भोरे। हम कृत दोष छमौ करुनामय, ज्यौं भू परसत ओरे—४८८।

ओरै—संज्ञा पुं. [हि. ओर] **अंत, सिरा, छोर, किनारा।** उ.—कागद धरनि, करै द्रुम लेखनि, जल-सायर मसि घोरै। लिखै गनेस जनम भरि मम कृत, तऊ दोष नहि ओरै—१-१२५।

ओलंबा, ओलंभा—संज्ञा पुं. [सं. उपालंभ] **उलाहना।**

ओल—संज्ञा. स्त्री. [सं. क्रोड़] (१) **गोद।** (२) **आड़, ओट।** (३) **वह वस्तु या व्यक्ति जो कोई शर्त पूरी**

न होने तक किसी दूसरे के पास रहे या रखा जाय। उ.—बने बिसाल अति लोचन लोल। चितै चितै हरि चारु बिलोकनि मानौ माँगत हैं मन ओल—६३०। (४) शरण, रक्षा। (५) बहाना, मिस।

वि. [हिं. ओला] गीला, तर।

ओलती—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओलमना] (१) छप्पर का वह किनारा जहाँ से बरसा हुआ पानी नीचे गिरता है। (२) वह स्थान जहाँ यह पानी गिरता है।

ओलना—क्रि. स [हिं. ओल = आड़] (१) परदा करना, ओट या आड़ में करना। (२) सहन करना, अपने ऊपर लेना।

क्रि. स. [हिं. हूल] घुसाना, चुभाना।

ओलरन—क्रि. अ. [हिं. ओल, ओलना] सोना, लेटना।

ओलराना—क्रि. स. [हिं. ओल, ओलना] सुलाना, लिटाना।

ओला—संज्ञा पुं. [सं. उपल] मेह के जमे हुए पत्थर या गोले।

संज्ञा पुं. [हिं. ओल] (१) परदा, ओट। (२) भेद, रहस्य।

ओलिक—संज्ञा पुं. [हिं. ओल = आड़] ओट, परदा।

ओलियाना—क्रि. स. [हिं. ओल, ओला] गोद में भरना।

क्रि. स. [हिं. हूलना] घुसाना, प्रवेश कराना।

ओली—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओल] (१) गोद। (२) अंचल। (३) झोली।

मुहा.—ओली ओड़ना—आँचल पसार कर याचना करना।

ओलै—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रोड़, हिं. ओल] (१) गोद। (२) शरण, आश्रय। उ.—जाकै मीत नंदनंदन से, ढकि लइ पीत पटोलै। सूरदास ताकौं डर काकौ, हरि गिरिधर के ओलै १-२५६। (३) आड़, ओट। (४) जमानत-रूप में रखी हुई वस्तु या व्यक्ति।

ओल्यौ—संज्ञा पुं. [हिं. ओल] बहाना, मिस।

ओषधि, ओषधी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वनस्पति या जड़ी-बूटी जो दवा के काम की हो। (२) फलने के बाद सूखे हुए पौधे। (३) दवा।

ओषधीश—संज्ञा पुं. [सं. ओषधि + ईश] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

ओष्ठ—संज्ञा पुं. [सं.] होंठ, ओठ।

ओष्ठ्य—वि. [सं.] (१) ओठ का। (२) जिन (अक्षरों) का उच्चारण ओठ से हो। (उ ऊ प फ ब भ म ओष्ठ्य वर्ण हैं।)

ओस—संज्ञा स्त्री. [सं. अवश्याय, पा. उस्साव] हवा से मिली हुई भाप जो उससे अलग होकर गिर जाती है।

मुहा.—ओस का मोती—शीघ्र नष्ट हो जानेवाला।

ओसारा—संज्ञा पुं. [सं. उपशाला] (१) दालान। (२) छाजन, सायबान।

ओह—अव्य. [अनु.] दुख या आश्चर्यसूचक अव्यय।

ओहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. ओट] ओट, ओझल।

ओहार—संज्ञा पुं. [सं. अवधार] रथ या पालकी का परदा।

ओहि—सर्व. [हिं. वह] उसे। उ.—ठाढे बदत बात सब हलधर, माखन प्यारौ तोहि। ब्रज प्यारौ, जाकौ मोहि गारौ, छोरत काहे न ओहि—३७५।

औ

औ—देवनागरी वर्णमाला का ग्यारहवाँ स्वर जो अ और ओ के संयोग से बना है। इसका उच्चारण कंठ और ओष्ठ से होता है।

औंगा—वि. [हिं. औंगी] जो बोल न सके, गूँगा।

औंगी—संज्ञा स्त्री. [सं. अवाङ्] चुप्पी, गूँगापन।

औंघना—क्रि. अ. [सं. अवाङ्] अलसाना, झपकी लेना।

औंघाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. औंघना] झपकी, उँघाई, आलस्य।

औंघाना—क्रि. अ. [हिं. औंघना] ऊँघना, झपकी लेना।

औंछि—क्रि. स. [हिं पोछना, औंछना] पोंछकर, झाड़-पोंछकर, हाथ फेरकर। उ.—दोउ भैया कछु करौ कलेऊ, लई बलाइ कर औंछि—६०९।

औंजना—क्रि. अ. [सं. आवेजन=व्याकुल होना] ऊबना, अकुलाना, घबराना।

औंठ संज्ञा स्त्री. [सं. ओष्ठ, प्रा. ओट्ठ] उठा हुआ किनारा, बारी।

औंड़—संज्ञा पुं. [सं. कुंड=गड्ढा] गड्ढा खोदनेवाला, बेलदार।

औंड़ा—वि. [सं. कुंड] गहरा, गम्भीर।

वि. [हि. औंड़ना, उमड़ना] उमड़ता हुआ, चढ़ा या बढ़ा हुआ।

औंड़े—वि. [हि. औंड़ा] गहरा, गम्भीर।

वि. [हि. औंड़ना, उमड़ना] बढ़ा हुआ, चढ़ा हुआ। उ.—इन्द्री-स्वाद-बिबस निसि बासर, आपु अपुनपौ हारौ। जल औंड़े मैं चहुँ दिसि पैरयौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ—१-१५२।

औंदना—क्रि. अ. [सं. उन्माद या उद्विग्न] (१) उन्मत्त हो जाना। (२) घबराना, आकुल होना।

औंदाना—क्रि. अ. [सं. उद्वेलन] (१) ऊबना। (२) दम घुटने से घबराना।

औंधना—क्रि. अ. [हि. औंधा] उलट जाना।

क्रि. स.—उलटा कर देना।

औंधा—वि. [सं. अधोमुख] (१) उलटा, पेट के बल, पट। (२) जिस (पात्र) का मुँह नीचे हो। (३) नीचा।

औंधाना—क्रि. स. [हि. औंधा] (१) उलटना, पलट देना। (२) (पात्र का) मुख नीचे करके (द्रव आदि) गिराना। (३) नीचे लटकाना।

औ—अव्य. [सं. अपर, प्रा अवर, हि. और] और। उ.—मन बच-कर्म और नहि जानत सुमिरत औ सुमिरावत—२-१७।

संज्ञा पुं. [सं.] अनंत, शेष।

संज्ञा स्त्री.—पृथ्वी।

औकन—संज्ञा स्त्री. [देश.] राशि, ढेर।

औगत—संज्ञा स्त्री. [सं. अव + गति] दुर्दशा, दुर्गति।

वि. [हि. अवगत] जाना हुआ, विदित।

औगाहना—क्रि. अ. [सं. अवगाहना] (१) नहाना। (२) घुसना, धँसना, प्रवेश करना। (३) प्रसन्न होना।

क्रि. स.—(१) छानबीन करना। (२) गति उत्पन्न करना। (३) धारण करना। (४) सोचना-विचारना।

औगाह्यौ—क्रि, अ. [सं. अवगाहन हि. अवगाहना] ग्रहण किया, अपनाना सीखा, छानबीन की। उ.—सब आसन रेचक अरु पूरक कुंभक सीखे पाइ। बिनु गुरु निकट सँदेसन कैसे यह औगाह्यौ जाइ—३१३४।

औगुन—संज्ञा पुं. [सं. अवगुण] (१) दोष, दूषण। (२) अपराध, बुराई, खोटाई।

औगुनी—वि. [सं.अवगुणिन्] (१) निर्गुणी (२) दोषी।

औघट—संज्ञा पुं.—कठिन या दुर्गम मार्ग।

औघड़—संज्ञा पु.[सं. अघोर = भयानक] (१) अघोरी, अघोरपंथी। उ.—औघड़-असत कुचीलनि सौं मिलि, माया-जल मे तरतौं—१-२०३। (२) मनमौजी।

वि.—अटपट, उलटा-पलटा।

औघर—वि. [सं. अव + घट] (१) उलटा-पलटा, अंड बंड। (२) अनोखा, विचित्र। उ.—(क) बलिहारी वा रूप की लेति सुघर औ औघर तान दै सुम्भन आकर्षति प्रान। (ख) मोहन मुरली अधर धरी।…… । औघर तान बंधान सरस सुर अरु रस उमगि भरी।

औचक—क्रि. वि. [सं. अव + चक = भ्रांति] अचानक, एकाएक, सहसा। उ.—(क) यह सुनतहि जसुमति रिस मानी। कहौं [illegible]सयानी। खेलत हैं औचक हरि आए [illegible]बाँह पकरि बैठाए—३६१। (ख) ग[illegible] रवि तनया कैं तट, अंग लसति चन्दन की खौरी। औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी—६२७।

औचट—क्रि. वि. [सं. अ = नहीं+हि. उचटना=हटना] सकट, कठिनता, सँकरा। उ.—लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत-सँग, औचट गुनि गृह बन कौं—१-९।

क्रि. वि.(१) अचानक, अकस्मात। (२) भूल से, अनचीते में।

औचिंत—वि. [सं. अव = नहीं+ चिन्ता] निश्चिंत।

औचिती—संज्ञा स्त्री. [सं. औचित्य] उचित बात या रीति।

औचित्य—संज्ञा पुं. [सं.] उपयुक्तता।

औज—संज्ञा पुं. [सं. ओज] (१) तेज, बल। (२) प्रकाश।

औजक—क्रि. वि. [हि. औचक] अचानक, सहसा।

औजड़—वि. [सं. अव + जड़] उजड्ड, अनाड़ी।

औझड़, औझर—क्रि.वि. [सं. अव + हि. झड़ी] लगातार, निरंतर।

औटन—संज्ञा स्त्री. [हि. औटना] उबाल, ताव।

औटना—क्रि. स. [सं. आवर्तन, प्रा. आवट्टन] (१) किसी द्रव को आग पर खौलाना या गाढ़ा करना। (२) घूमना, भटकना। (३) तप करना।

औटाइ—क्रि. स. [हि. औटाना] औटा कर, खौला कर। उ.—रस लै लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई —१-६३।

औटाए—क्रि. स. [हि. औटाना] औटाने पर, खौलाने पर। उ.—फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तै खाँड न होई—१-६३।

औटाना—क्रि. स. [हि. औटना] आँच पर खौलाना या गाढ़ा करना।

औटि—क्रि. स. [हि. औटाना] औटाकर, खौला कर, गर्म करके। उ.—(क) आछौ दूध औटि धौरी कौ, लै आई रोहिनि महतारी—१०-२२७। (ख) ग्वाल सखा सबहीं पय अँचयौ। नीकैं औटि जसोदा रचयौ —३९६।

औट्यौ—क्रि. स. भूत. [हि. औटाना] औटाया, खौलाया। उ.—आछैं औट्यौ मेलि मिठाई, रुचि करि अँचवत क्यौ न नन्हैया—१०-२२९।

वि.—औटा हुआ, खौला हुआ, पका हुआ। उ.—औटायौ दूध, सद्य दधि, मधु, रुचि सौ खाहु लला रे—४२९।

औठपाय—संज्ञा पु. [सं. उत्पात] नटखटी, शरारत।

औढर—वि. [सं. अव + हि. ढार या ढाल] (१) मनमौजी। (२) शीघ्र ही या थोड़े ही में प्रसन्न हो जाने वाला।

औतरना—क्रि. अ. [हि. अवतरना] अवतार लेना।

औतरै—क्रि. अ. [सं. अवतार, हि. अवतरना] अवतार ले, जन्म ग्रहण करे। उ.—याकीं कोखि औतरै जो सुत, करै प्रान-परिहारा—१०-४।

औतार—संज्ञा पुं. [सं. अवतार] शरीर ग्रहण करना, जन्मना, सृष्टि, अवतार।

औत्सुक्य—संज्ञा पुं. [सं.] उत्सुकता, उत्कंठा।

औथरा, औथरो—वि. [सं. अवस्थल] उथला, छिछला।

औदकना—क्रि. अ. [हिं. उदकना] (१) कूदना। (२) चौंकना।

औदसा—संज्ञा स्त्री. [सं. अवदशा] बुरी दशा, दुख।

औदार्य—संज्ञा पुं. [सं.] उदार होने की क्रिया या भाव।

औद्योगिक—वि. [सं.] उद्योग-धन्धों से संबंधित।

औध—संज्ञा पुं. [सं. अवध] अवध, कौशल देश।

औध, औधि—संज्ञा स्त्री. [सं. अवधि] (१) समय, अवसर, काल। उ.—कहँ लगि समुझाऊँ सूरज सुनि, जाति मिलन की औधि टरी—८०६। (२) निर्धारित समय, मियाद। उ.—सिसिर बसन्त सरद गत सजनी बीती औधि करी—२८१४।

औधारना—क्रि. स. [हिं अवधारना] ग्रहण करना, धारण करना।

औनि—संज्ञा स्त्री. [सं. अवनि] भूमि, पृथ्वी।

औनिप—संज्ञा पुं. [सं. अवनि + प] पृथ्वी का पालक, राजा।

औम—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह तिथि जिसकी हानि हो गयी हो।

और—अव्य. [सं. अपर, प्रा. अवसर] एक संयोजक शब्द; दो शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को जोड़नेवाला शब्द। उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्रुति गाई—१-६।

वि. (१) दूसरा, अन्य, भिन्न। उ.—हरि सौ ठाकुर और न जन कौ—१-६। (२) कुछ। उ.—कानन सुनै आँखि नहि सूझै। कहै और और कछु बूझै—४-१२।

मुहा.—भई और की और (औरै)—विशेष परिवर्तन हो गया, भारी उलट-फेर हो गया, कुछ का कुछ हो गया। उ.—(क) कहत हे आगे जपिहैं राम। बीचहि भई और की औरै, परयौ काल सौं काम —१-५७। (ख) बीचहि भयी और की औरै, भयौ शत्रु को भायौ—६-१४६। (ग) हम सौ कहत और

की औरै इन बातनु मन भावहुगे—१६७८। (घ) अब ही और की और होत कछु लागै बारा—१० उ.-८ । और की औरई (औरै)—कुछ का कुछ। उ.—(क) कहति और की औरई मैं तुमहि दुरैहौ —२१०२ । (ख) तै अलि कहव और की औरै सुतिमति की उर लीनी—३३८० ।

(३)अधिक, ज्यादा।

औरस—वि. [सं.] जो संतान विवाहिता पत्नी से उत्पन्न हो। उ.—मैं हूँ अपनैं औरस पूतै बहुत दिननि मैं पायौ—१०-३३६ ।

औरसना—क्रि. अ. [सं. अव = बुरा + रस] नष्ट होना, उदासीन होना।

औरासा—वि. पुं. [हि. औरसना] विचित्र, बेढंगा।

औरासी—वि. [हि. औरसना] रुष्ट, उदासीन।

वि.—विचित्र, बेढंगा। उ.—बिसरो सूर बिरह दुख अपनो अब चली चाल औरासी—२८७७।

औरेब—संज्ञा पुं. [सं. अव = विरुद्ध या उलटी + रेव = गति] (१) तिरछी चाल । (२) चाल भरी बातें, छल-कपट की घात।

औरै—वि. सवि. [हि. और] और को, दूसरे को। उ.—कृपन, सूम, नहिं खाइ खवावै, खाइ मारि के औरै—१ १८६।

औरौ—वि. [हि. और] (१) और भी, अन्य, अनेक। उ.—(क) जो प्रभु अजामील कौं दीन्हो, सो पाटौ लिखि पाऊँ । तौ बिस्वास होइ मन मेरैं, औरौ पतित बुलाऊँ—१-१४६ । (ख) अबहिं निवछरौ समय, सुचित है, हम तौ निधरक कीजे। औरौ आइ निकसिहैं तातैं, आगै हैं सो लीजै—१-१६१ । (२) अन्य, दूसरा। उ.—औरौ दँडदाता कोउ आहि। हम सौ क्यों न बतावौ ताहि—६-४।

औलना—क्रि. अ. [हि. जलना] गरमी पड़ना, तप्त होना।

औपध—संज्ञा स्त्री. [सं.] रोग दूर करने वस्तु, दवा। उ.—बिन जानै कोउ औपध खाइ। ताकौ रोग सफल नसि जाइ—६-४।

औषधि, औषधी—संज्ञा स्त्री. [सं. औषध] दवा, औषधि। उ.—तुम दरसन इक बार मनोहर, यह औषधि इक सखी लखाई—७४८।

औसर—संज्ञा पुं. [सं. अवसर] समय, काल। उ. —(क) हरि सौ मीत न देख्यौ कोई। बिपति काल सुमिरत तिहि औसर आनि तिरीछौ होई—१-१०। (ख) गए न प्रान सूरता औसर नंद जतन करि रहे घनेरो—२५३२।

मुहा.—औसर हारयौ - मौका चूक गये। उ.— औसर हारयौ रे तै हारयौ। मानुष-जनम पाइ नर बौरे, हरि कौ भजन बिसारयौ—१-३३६।

औसान—संज्ञा [सं. अवसान] (१) अंत । (२) परिणाम। उ.—जेहि तन गोकुलनाथ भज्यौ । ऊधो हरि बिछुरत ते बिरहिनि सो तनु तबहि तज्यो। अब औसान घटत कहि कैसे उपजी मन परतीति।

संज्ञा पुं.—सुध-बुध, धैर्य। उ.—सुरसरि-सुवन रनभूमि आए। बान वर्षा लागे करन अति क्रोध है पार्थ औसान (अवसान) तब सब भुलाए —१-२७३ ।

औसाना—क्रि. स. [हि. औसना] फल पाल में रखकर पकाना।

औसि—क्रि. वि [सं. अवश्य] जरूर, अवश्य।

औसेर—सं. स्त्री. [सं. अवसेर=बाधक, हि. अवसेर] चिंता, व्यग्रता। उ.—गोपिन बैठि औसेर कीनो —२४३२ (४)

औहत—संज्ञा स्त्री. [सं. अपघात, अवहन = कुचलना, कूटना] दुर्गति, अपमृत्यु।

औहाती—वि. स्त्री. [सं. अहिवाती] सोहागिन, सौभाग्यवती।

प्रथम खड समाप्त।

